शाहआलम

सुरेन्द्र कान्त

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

सर्वाधिकार : सुरेन्द्र कान्त
मूल्य : चालीस रुपये
प्रथम संस्करण : 1986
प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी, जयपुर-302 003
मुद्रक : कमल प्रिंटर्स,
9/5866, गांधी नगर, दिल्ली-110 031

SHAHALAM
by Surendra Kant

Price : 40.00

'हुजूर, मजूर अली ख़िदमत मे आदाब बजाने के ख़्वाहा[1] हैं', एक कनीज[2] ने वली अहद[3] से शर्माते हुए प्रार्थना की। उसके गालो पर सुर्ख़ी दौड़ रही थी।

'मंज़ूर ! मंज़ूर अली ! अरे उसे भी इजाजत की जरूरत पेश आ गयी ! कहाँ है वह, जल्दी भेज !' शाहजादे की बात समाप्त भी न हुई थी कि जनाब मंज़ूर अली हुजूर में पेश थे। शाहजादे ने ताली बजायी, 'तखलिया !'[4] और सेविका अतर्ध्यान हो चुकी थी।

'कहो मियाँ मंज़ूर ! क्या ख़बर लाये ?'

'अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है किब्ला,[5] आज ऐसी नयामत हाथ लगी है कि जिसके सामने बहिश्त की हूरें भी पानी भरें। यक़ीन मानिये हुजूरे वाला…।'

'मंज़ूर !' शाहजादे ने बात काटते हुए कहा, 'तुम हरेक नयी चीज़ की इसी क़दर तारीफ करने के आदी हो गये हो ! गर्चे हम तुम्हारी पसद की दाद देते है, फिर भी हर छोकरी की तारीफ़ मे तुम जमीन आसमान के कुलाबे मिला देते हो !'

---

1. इच्छुक 2. सेविका 3. युवराज 4. एकात 5. श्रीमान

'आलीजाह, ख़ाकसार किसी काबिल नहीं, फिर भी उम्मीद करता है कि इस दफ़ा, इंशा अल्लाह, हुजूर को एक अजीबोगरीब लुत्फ़ हासिल होगा। एक खास लज्जत पायेंगे हुजूर इस बार !' मंजूर एक सांस में बोल गया।

'अच्छा, अच्छा, किस क़ौम की है ?'

'क़ौम ! हुजूर यह दर्याफ़्त फ़रमाइये कि किस मुल्क की है ! यह हसीना ईरान की है ईरान की।'

'ईरान की !

'जी हुजूर।'

यह शाहजादा, शाहशाह आलमगीर द्वितीय का पुत्र था और मुग़लिया तख़्त का वली अहद मानी युवराज भी। नाम था अली गौहर। वह कान्हा कनकी में, जो उत्तर प्रदेश में रामपुर के निकट एक स्थान था, डेरे लगाये हुए था।

घुप्प अँधेरी रात ! शाहजादे के तंबू एक-दो नहीं बीस-तीस। लगता था कान्हा कनकी में रातोंरात कई पहाड़ उग आये हों या हाथियों के झुंड के झुंड इकट्ठे हो गये हों—निस्तब्ध रजनी। शमादानों में अधिकांश शमाएँ बुझ चुकी थीं। कुछ मुग़ल सल्तनत के आख़िरी प्रकाश की तरह टिमटिमा रही थीं—निशक्त, निस्तेज ! लेकिन एक खेमा था जहाँ कई झाड़फ़ानूसों में लगी मोमबत्तियाँ, हरा, पीला, लाल, नीला मद्धिम-सा नशीला प्रकाश दे रही थीं। यह था शाहजादा अली गौहर का शयन कक्ष, जहाँ वह नये मेहमान की बेताबी से प्रतीक्षा कर रहा था। लौंडी ने सुराही से तूरानी शराब फिर डाली। सुनहरी प्याला फिर भर गया। एक हल्की सुरसुराहट हुई और अली गौहर ने निगाहें उठायीं तो उसकी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं। सेविका खिसक चुकी थी और उसके स्थान पर वहाँ खड़ी थी, ताज़े हरे पत्तों में लिपटी जुही की कली ! जैसे जुही बढ़ते-बढ़ते एक रूपसी हो गयी हो और अब चटखने ही वाली हो। एक क्षण दोनों मूर्तिवत एक-दूसरे को देखते रहे। हरी मख़मली ज़री की पोशाक में लिपटा संगमरमर जैसे कई-कई गोलाइयों में ढलकर हठात फिसल-फिसल पड़ना चाहता हो। तभी नवागतुका को सामान्य शिष्टाचार का ध्यान आया और ज़मीबोस किया ही

चाहती थी कि युवराज ने चीते की तरह झपटकर उसे अपने अंक में भर लिया। हरिण-शावक की तरह छटपटाती हुई भी वह उसके अंक में सुखानुभूति कर रही थी। थोड़े नाजो-अंदाज के बाद वह उसकी गोद में निढाल हो गयी और युवराज, जो अभी सुरा नही सौदर्य के कारण मदहोश था होश मे आया, 'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'जी, कनीज़ को निकहत कहते है।' और नरगिसी आँखें झुका ली।

'ओह कितना खुशनुमा नाम ! वाक़ई तुम निकहत हो, तभी तो सारा कमरा महक रहा है।'

'जी शुक्रिया आलीजाह, करम है हुज़ूर का।'

'उफ ओह, तुम तो रेख्ता जुबान से अच्छी तरह वाक़िफ हो, कब से हो हिंदोस्तान मे ?'

'जी, जब मैं नौ साल की थी, अपने अब्बा हुज़ूर के साथ हिंदोस्तान आयी थी, अब तकरीबन पाँच साल हो चुके।'

उसके शब्द-शब्द से मोती झड रहे थे—उसके दाँत नही मानो हजार-हजार मोतियो मे बँट-बँट जाने वाले मुक्ता-कोष हो। अली गौहर ने सिल-सिला जारी रखने के लिए और भी कई प्रश्न किये, कुछ प्रश्नों के उत्तर भी दिये लेकिन ज्यो-ज्यों देर हो रही थी त्यो-ही-त्यो उस पर रूप-सुरा और भी अधिक चढती जा रही थी। कई बार उसने रूपसी को वक्ष-स्थल से लगाकर बाहुओं मे कस लिया, जब-जब उसे कसता, युवराज के सर से पैर तक सिहरन दौड जाती। दो कठोर मासल स्तन उसके सीने से भिचकर अनूठा-सा सुकून देते उसे और उस पर एक उन्मुक्त सरूर चढता जाता। निकहत जो अभी तक केवल आत्मरक्षा का ही उपक्रम कर रही थी, कुछ पहल भी करने लगी और उसने युवराज के गले मे बाँहें डाल दी। युवराज ने उचित अवसर पा उसके चैती गुलाब से कपोलो पर एक के बाद एक कई चुबन जड दिये और अब बारी थी अधरो की। अवगुठन स्वतः हट रहे थे—निकहत पर भी सरूर ने असर किया—कुछ तनियाँ कुछ बटन-काज धीरे-धीरे एक-दूसरे से जुदा होते जा रहे थे और शाहजादा और निकहत पास, और पास। सुदरी के यौवन-कलश जब अपनी ओट मे से झाँके तो अली गौहर स्तब्ध रह गया। संगमरमरी गेंद मे से मानो गुलाब की छोटी-सी नवकलिका फूट

पड़ी हो। युवराज ने हथेलियाँ इन कलिकाओं पर टिका दोनों उरोजों को मुट्ठी में भरने का प्रयास किया कि 'उई अल्लाह !' पूरा खेमा निस्तब्धता में गूंज उठा। और फिर वे दोनों उस देश में पहुँच गये जहाँ कुछ देर के लिए मनुष्य समस्त सृष्टि से बेखबर हो जाता है। खेमे से जब-तब निकलती सीत्कार, सिसकारिएँ, फुसफुसाहटें अँधेरी रात के ठोस वातावरण को पिघला-कर तरल कर देती।

तभी खेमे के बाहर नंगी तलवार लिए पहरेदारों में से एक ने कहा, 'बड़े मियाँ क्या वक्त हुआ होगा ?'

'देखते नहीं वह सितारा, फजर की नमाज का वक्त हो गया।'

'ओफ्फ ओह !' कहकर दूसरे सिपाही ने डंके पर चोट मारी और फजर की नमाज की घोषणा कर दी। शाहजादा अली गौहर वली अहद, तख्ते हिंदोस्तान सब फिक्रें भुलाकर मानो परी देश में विचरण कर रहा था। इमादुलमुल्क, दिल्ली का किला—वहाँ सहे गये अपमान—यातनाएँ, नजीब की हवेली सब अतीत की गोद में सो गये, बिहार-बंगाल की विजय, हिंदुस्तान का शहंशाही तख्त, सब कुछ हेय था इस विजय के सामने। सब कुछ फीका था इस मस्ती के आगे—भोर की अजान सुनायी दी लेकिन जैसे नींद में मच्छरों की आवाज गुम हो जाती है, शाहजादे के कानों में अज़ान गुम हो गयी। और, और, एक बार और ! निकहत के मुँह से अचानक निकलती हल्की-हल्की आनंदपूर्ण पीड़ा की सीत्कारें अब चरम आनंद की सिसकारियों में परिवर्तित हो गयी थीं। सूर्य की प्रथम किरण फूटी और शाहजादे ने प्रणय की पूर्णाहुति दी तब कहीं दोनों की आँख लगी। जब नींद खुली तो सूर्य आसमान में सर पर चढ़ा हुआ था।

शाहजादे की एक नहीं हर रात्रि ऐसी ही रंगीली गुजरती—कभी गहरा रंग, कभी मामूली, कभी फीका फक्क। हर रोज मजूर नया-नया तोहफा तलाश करता और युवराज के हुजूर में पेश करता। हर रोज एक अनछुई अक्षत कली फूल के रूप में खिलती—देवता के सर पर चढ़ती और फिर आम आदमी का खिलौना बनकर मसली जाकर किसी गली-कूँचे में फेंक दी जाती और युवराज फिर योजना बनाने लगते बिहार या बंगाल की विजय की।

'ठक ! ठक !! ठक !!!' दिल्ली के कूचा बीबी गौहर का एक द्वार खट-खटाया जा रहा था। रात्रि के नौ बजे हैं, ठंड बढ़ती जा रही है—गली अंधेरे में सराबोर है। 'कौन है !' 'मैं रमजानी, बीबी दरवाजा खोलो !' 'रमज़ानी !' रशीदन बोल पड़ी, 'आज वापस कैसे ?' सात बजे जाने के बाद घर का नौकर रमज़ानी वापस नहीं आता था। इस घर में बचपन से पला, किशोर हुआ, और अब युवक था। पहले सीधा घर जाता था फिर कभी-कभी रास्ते में रुककर कुछ दोस्तों के साथ चरस में फूंक मारकर धुएँ में उड़ाना सीख गया था। बल्लीमारान में अब उसकी नियमित बैठक हो गयी थी। बुन्दे खाँ एक अच्छे व्यापारी थे, उन्हीं के बेटे दाउद खाँ के काम करता था। दाउद खाँ का रोज़गार अब काम चलाऊ रह गया था—दिल्ली में आये दिन दंगे-फसादों का बोलबाला था—कहीं क़त्ल हो जाता कानोंकान ख़बर न लगती—लाश देखकर हंगामा मचता और हरेक व्यक्ति अपनी जान व माल को छाती से लगाये अगली घड़ी का बेसब्री से इंतज़ार करता। दुकानें कभी सप्ताह में एक दिन, कभी एक दिन में दो घंटे भर ही खुली रहतीं—धंधा चौपट हो रहा था—लोग पुराने दिनों की याद करते। बुजुर्ग लोग बताते कि औरंगज़ेब या फर्रुख़सियर के ज़माने में मजाल क्या कि कोई सुख-चैन में ख़लल डाले। व्यापारी पुरानी पूंजी खा रहे थे। दाउद मियाँ का भी यही हाल था। बुजुर्गों का माल जब तक सलामत है खाये जाओ। अरे यह भी कोई सल्तनत है। शाहंशाह हैं कि अपनी जान तक से बेख़बर—यह क्या हिफ़ाज़त करेंगे रिआया की ? कोई राज है न राजा, हुकूमत है ना बादशाह ! जो जिसके जी ने चाहा लूट ले गया, जिसकी लाठी उसकी भैंस। किसी औरत की इस्मत और इज्ज़त ख़ैर नहीं—किसी घर में माल व असबाब महफ़ूज़ नहीं।

रमज़ानी की आवाज़ सुनकर रशीदन ने दरवाज़ा खोला और दिये की रोशनी में देखा तो चीख़ निकल पड़ी। रमज़ानी के साथ 8-10 मुस्टंडे नंगी तलवारों या खुखरी से लैस थे। एक ने रशीदन का झोंटा पकड़ा और दूसरे ने उसके मुंह पर कसकर हाथ रख दिया और रमज़ानी रास्ता दिखाता सीधा ऊपर पहुँचा जहाँ दाउद मियाँ हुक्के की नै मुंह में दबाये रज़ाई ओढ़े पलंग पर पड़े थे। एक खुखरी पेट की आँतों का जायज़ा लेते हुए मय आँतों

के बाहर आ गयी—ठीक से चीख़ भी न निकल पायी। रशीदन की माँ रमज़ानी का आना और रशीदन की चीख़ सुनकर बावर्चीख़ाने से निकली तो आँखें फटी-की-फटी रह गयीं—बरबस एक चीख़ निकली 'कमीनो!' और किसी ने पीछे से ऐसा वार किया कि गर्दन धड़ का साथ छोड़ गयी और सर ज़मीन पर लोट गया। रशीदन हत्यारों के हाथों में छटपटा रही थी कि उसे लेकर क़ातिल सीधे दादी माँ के कमरे में घुसने लगे—दादी माँ पहले से ही टोह में थी—देहलीज़ में पैर रखते ही कल्लू ख़ाँ के सर में वह घुमा के लोहे का मूसल दे मारा कि खोपड़ी दो हिस्सों में बँट गयी और लगी गरियाने—'हरामज़ादो, कमीन के बच्चे रमज़ानी!!' इस बुढ़िया का क़त्ल करने का उनका कोई इरादा नहीं था लेकिन ज़्यादा फुड़फुड़ करती मुर्ग़ी फ़िज़ूल ही अपनी जान गँवा बैठती है। उसने रमज़ानी की तरफ़ मूसल उठाया ही था कि झटके से उसकी बाँह भूलुंठित हो गयी और दूसरा वार गर्दन पर होना लाज़िमी था ही।

एक हत्यारा रशीदन के मुँह में कपड़ा ठूँसकर उसे क़ाबू में किये था और बाक़ी रमज़ानी के साथ तिजूरियों, बक्सों और अलमारियों को ज़र व ज़ेवर के वज़न से हल्का कर रहे थे—क़रीब दो लाख का माल निकला मुंजियों के घर से। फिर रशीदन को घसीटते हुए बाहर निकले और दिल्ली के घुप्प अँधेरे में समा गये। कल्लू ख़ाँ की लाश की किसी बंदे को परवा न थी। अड़ोस-पड़ोस वालों को कानोंकान ख़बर न मिली—लगी भी होगी तो कौन किसी के फटे में पाँव देकर आफ़त मोल ले। ख़ुद की जान सलामत तो जहाँ सलामत। सुबह उठकर कुछ मनचलों ने मकान का दरवाज़ा चौपट खुला देखा तो अंदर जाकर जायज़ा लिया। एक नहीं चार-चार लाशें! और उस दिन तो नहीं उस रात को बचा-खुचा माल बर्तन, कपड़े, चूल्हा, चलनी, चम्मच सब चौपट हो गया—पूरी तौर से नदारद। ऐसी थी दिल्ली उस वक़्त। कोई धनीधोरी नहीं रिआया का! फिर एक बला नहीं क़दम-क़दम पर बलाएँ। कभी अब्दाली कभी सिंधिया, कभी होलकर तो कभी रुहेले। लगता था हिंदुस्तान की इस पुरातन राजधानी से गिन-गिनकर बदला ले रहे थे सब लोग। इतने वैभव का उपभोग जो कर चुकी थी वह। अब नत-मस्तक जैसे प्रायश्चित कर रही हो।

सलाइयाँ फेर दी गयी। अब राजमाता की बारी थी। उसे भी तुरंत अंधा कर दिया गया।

तभी तो मीर तकी मीर जो बहुत उच्च कोटि के शायर हुए हैं, यह सब देख-सुनकर बहुत दुखी हुए और उन्होंने लिख डाला एक शेर :

शहाँ कि कहले जवाहिर थी ख़ाके पा जिनकी,
उन्हीं की आँखों में फिरती सलाइयाँ देखीं।

यह थी जीवनचर्या शाही परिवार की। जलते रहो बत्ती की तरह और पिघल-पिघलकर, गल-गलकर राख में परिणत हो जाओ।

आलमगीर द्वितीय भी अपवाद कैसे होता! उसे भी कई बार भूखा रहना पड़ा। महल की बेगमें भी भूख से तड़प-तड़प उठतीं। साहब महल बेगम मलका-ए-ज़मानी, शाहजादी खैरुन्निसा सभी तो परेशान थीं!

'चलो जहन्नुम में जाये नकाब और पर्दा! पेट में आग लग रही है और हम हैं कि बुत की तरह बैठे हैं पर्दानशी बने हुए!' साहब महल ने कहा।

'दादी जान, मैं भी तो यही कह रही हूँ! तैमूरिया तवारीख़ में ऐसा वाकया तो कभी नहीं हुआ होगा कि शाही अहलो इयाल[1] भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर जान दे दे।' शाहज़ादी खैरुन्निसा थी।

शाहजादी करामतुन्निसा ने कहा, 'मेरा तो दम घुट रहा है दादी जान, जो भी होगा देखा जायेगा! हम लोग बाहर तो निकलें।' दादी जान ने स्वीकृति दे दी। मरता क्या न करता!

सारा हरम किले के सदर दरवाजे पर पहुंचा लेकिन वहाँ ताले पड़े थे'''टस से मस नहीं हुआ फाटक। इमादुलमुल्क का आदेश जो था।

सब-की-सब सर पकड़कर वापस आयीं और हरम में जाकर बैठ गयीं। ऐसी दुख भरी दास्तान थी लाल क़िले की उन दिनों।

एक दिन जब आकवत खाँ से यह नहीं देखा गया कि शाहज़ादा अली गौहर भूख-प्यास से व्याकुल है तो वह गुप्त रूप से खैरातख़ाने से एक बाल्टी भर के शोरबा ले आया और वली अहद को पेश किया।

---

1. परिवार

'नही आकबत, नही, हम पेट भर लें और सारा हरम भूखा मरे, यह नही हो सकता, जाओ बेगमात और बच्चों में तकसीम कर दो इसे।' अली गौहर ने कहा था।

यह समय था अठारहवी शताब्दी का मध्य। शाहज़ादा अली गौहर कान्हा कनकी मे ठहरा हुआ था।

औरंगज़ेब के बाद दिल्ली के सिंहासन की डाँवाडोल स्थिति ने शाही खानदान को तरह-तरह के कष्ट झेलने पर विवश कर दिया था। यह शाहज़ादा भी उन्ही में से एक था। इमादुलमुल्क के अत्याचारो से तंग आकर शाहंशाह ने युवराज को दिल्ली छोड़कर अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करने की सलाह दी थी क्योंकि उन दिनो दिल्ली खून की प्यासी थी। किसी भी दिन शाहजादों के खून की अपेक्षा की जा सकती थी। आँखो मे आँसू लिए शाहजादा अपनी प्यारी दिल्ली को मुड़-मुड़कर तब तक देखता रहा, जब तक कि उसका आखिरी झोपड़ा भी उसकी आँखो से ओझल नही हो गया। बेसहारा अली गौहर नजीबाबाद की तरफ़ चला। यहाँ नजीबुद्दौला ने अपनी रियासत बना ली थी। उसने शाहजादे का आदर-सत्कार किया और करीब आठ माह तक अपने यहाँ रखकर उसे यथासंभव आराम पहुँचाया। आराम क्या, आठ माह बाद शाहज़ादा मीठे तथा कड़वे अनुभवों की झोली भरे एक दिन नजीब के सम्मुख विदाई का प्रस्ताव लेकर आ खड़ा हुआ। नजीबुद्दौला ने उसे ससम्मान विदाई दी। शाहजादे का इरादा था कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा की विजय कर टूटे मुगल साम्राज्य मे फिर से जोड़-गाँठ लगायी जाये।

अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी हिंद रूपी हिरन को अजगर की तरह धीरे-धीरे उदरस्थ करने के लिए प्रयत्नशील थी। बंगाल-बिहार पर उसने दब-दबा जमा लिया था। राजा-रईस और नवाबों के व्यक्तिगत झगड़ों में टाँग अड़ाकर कंपनी के अधिकारी अपना वर्चस्व स्थापित कर रहे थे। ये धूर्त किंतु कार्यकुशल एवं क्रियाशील थे। वे हिंदुस्तानियों की कमज़ोरियों से भली-भाँति परिचित हो गये थे। धनलोलुपता और फूट परवान चढ़ी थी। हिंद

में एक नहीं अनेक राजा और नवाब थे। अनगिनत जागीरदार और ज़मींदार थे। एक ओर से जनता का खून चूसते तो दूसरी ओर आपस में ही मर-खपकर अशक्त होते जा रहे थे। अंग्रेज़ी व्यौपारी कंपनी इन अवसरों का पूरा-पूरा लाभ उठा रही थी और देश की जड़ें खोखली होती जा रही थी।

शाहज़ादा अली गोहर जब इस तरह की खबरें सुनता तो उसकी धमनियों में बहादुर बाबर और महान अकबर का खून खौलने लगता। वह एकांत में घटों मसूबे बनाता रहता। इन्हीं मसूबों को पूरा करने के विचार से वह नजीबाबाद से पूर्व प्रदेशों में पहुँचने के लिए रवाना हुआ था। उसे आशा थी कि रुहेला नवाब सैयद सादुल्ला खाँ, रईस आँवला (रामपुर) उनको नक़द व जिंस से कुछ मदद करेगा, वह मुरादाबाद की ओर से चलकर आँवला और बरेली के मध्य कान्हा कनकी में ठहरा था। वली अहद के आगमन का समाचार आँवला पहुँचने से पूर्व ही दिल्ली से शाहज़ादा के कट्टर विरोधी इमादुलमुल्क का संदेश पहुँच चुका था कि उसे किसी तरह का सम्मान या सहायता न दी जाये। अतः नवाब सादुल्ला खाँ ने शाहज़ादे से मिलना उचित नहीं समझा। आख़िरकार शाहज़ादे ने खुद अपनी क़लम से एक ख़त लिखा कि 'माबदौलत कान्हा कनकी में ख़ेमेज़न हैं, तुम आकर हमसे मुलाकात करो और सबूत अपनी वफ़ादारी और फ़र्माबर्दारी का दो।' लेकिन नवाब ने करवट भी नहीं लिया।

शाहज़ादे के हरम व पल्टन का इतना व्यय था कि वह स्वयं को निर्धन अनुभव करने लगा। स्थिति यहाँ तक आ गयी कि उसे अपने प्रिय हाथी बौनरूप को बेचने का इरादा करना पड़ा। यही बौनरूप कभी मुहम्मदशाह शाहशाह का बहुत ही चहेता था और उसकी ख़ास सवारी में ही काम आता था। देखिये भाग्य की विडबना! हाथी आँवले के नवाब को ही बेचना पड़ा। हाथी को विदा करते वक़्त वली अहद की किश्तीनुमा विशाल आँखें अश्रुपूरित थीं। बौनरूप ने अपनी लम्बी सूँड़ क़दमों में रखकर शाहज़ादे की चरण धूल अपने मस्तक पर चढ़ाई और रो पड़ा। तभी तो दूर-दूर तक देखता रहा था अली गोहर धूल के गुबार और ज़मीन पर पड़े छींटे! यह बौनरूप के आँसू नहीं थे तो क्या था? शाहज़ादे ने उसकी सूँड़ पर हाथ फेर

करकहा था, 'जाओ अज़ीज़, जाओ प्यारे बौनरूप—मुग़लिया सल्तनत की तारीख़ हमेशा याद करेगी कि तुमने एक मुसीबतज़दा शाहज़ादे की वावक़्त मदद की थी।' कहते-कहते उसका गला रुंध गया था। उस दिन शाहज़ादे ने शाम का भोजन नहीं किया। और बौनरूप ने ? ख़ुदा हाफ़िज़ ! सदेशवाहकों ने बाद में बताया कि एक हफ़्ते तक बौनरूप भूखा-प्यासा रहा। किंतु फिर भी अपने नये मालिक की आज्ञा का शतश: पालन करता रहा। मुग़ल ख़ानदान का नमक जो खाया था उसने ! उसी की मदद करने के लिए उसने अपने अरमानों की बलि दे दी थी।

शाहज़ादा अली गौहर की सवारी कान्हा कनकी से बरेली की ओर चल पड़ी। रास्ते में धूल के ग़ुबार दूर-दूर तक उठ रहे थे। सभी महिलाएँ डोलियों में कहारों के कंधों पर थीं, कुछ ख़ास-ख़ास आदमी शाहज़ादे के पीछे हाथियों पर सवार थे और बाकी घोड़ों पर और पैदल थे। कोई गाँव या आबादी आती तो नक़ीब (चोबदार) ज़ोर से घोषणा करता, 'बा अदब बा मुलाहिज़ा, होशियार, ख़बरदार, वली अहद, तख़्त हिंदोस्तान शाहंशाहज़ादा की सवारी आ रही है' और लोग चित्रवत खड़े देखते रह जाते इस विशाल जलूस को। कई राजे या बड़े ज़मींदारों को पहले से मालूम हो गया था अतः वे शाहज़ादे का स्वागत चार-पाँच कोस आगे पहुँचकर करते, अपने गाँव में लाते तथा वहाँ यथाशक्ति नज़र पेश करते। शाहज़ादा प्रायः नज़रें क़बूल कर लेता और कई तरह से उन लोगों से प्रेम-वार्ता करके अपने स्नेह का प्रदर्शन करता।

बरेली चार कोस रही थी कि दूर से उड़ते धूल के ग़ुबारों से अनुमान हुआ कि कोई फ़ौज या जुलूस युवराज के जुलूस की तरफ़ ही बढ़ा चला आ रहा है। सारे घुड़सवार और पैदल सैनिक सतर्क कर दिये गये और दोनों जुलूस एक-दूसरे के करीब पहुँचते गये। दोनों तरफ़ से अमन (शांति) के नगाड़े व अन्य बाजे बजने लगे कि एक घुड़सवार ने आकर शाहज़ादे के हुज़ूर में गुज़ारिश की कि नवाब सैयद फ़ैज़उल्ला साहब बरेली से चलकर वली अहद का इस्तकबाल करने आ रहे हैं। दोनों जुलूस ग्राम फरीदौन में

मिले और नवाब ने शाहज़ादे को नज़र पेश की जिसमें 25 घोड़े, एक हाथी, पच्चीस हज़ार रुपये, बरतन, बारबरदारी, छकड़े वग़ैरह थे। अदबो आदाब के बाद दोनों जुलूस एक होकर बरेली की तरफ़ बढ़े और युवराज ने बरेली नगर में बड़ी शानोशौकत के साथ प्रवेश किया। सबसे पहले उन्होंने बरेली में शाहदाना साहब की ज़ियारत की फिर अपने डेरों पर आ गये। युवराज के डेरे बरेली के निकट नकटिया के किनारे स्थापित किये गये थे तथा यहाँ एक रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन युवराज के खेमे समेटे जा चुके थे। वह हाथी पर सवार होकर कूच करने ही वाले थे कि दूर-दूर से घोड़ों की टापों की आवाज सुनायी दी। धूल के गुबार उठ रहे थे और हाथियों की घंटियाँ बज रही थीं। सवारी नज़दीक पहुँची तो मालूम हुआ कि हाफ़िज़ रहमत खाँ का पुत्र इनायत खाँ और उसका साथी पहाड़ सिंह शाहज़ादे का स्वागत करने तथा उसे आदाब पेश करने आये हैं।

बिलकुल पास पहुँचते ही इनायत खाँ घोड़े से कूदकर युवराज के हाथी के सम्मुख बाअदब बा मुलाहिज़ा खड़ा हुआ और झुका। युवराज भाव-विभोर होकर यह भी भूल गये कि वह हाथी पर सवार हैं और इनायत खाँ जब तक झुके न झुके तब तक खड़े हाथी से कूदकर उसे गले से लगा लिया। इनायत ने भारी शिष्टाचार के साथ अपना व अपने ख़ानदान का परिचय दिया और शाहज़ादे के हुज़ूर में नज़र पेश की। 20 हज़ार रुपया, एक हाथी, चौबीस घोड़े, बरतन, बारदाना और कई तरह की जिंस। वली अहद ने रुपयों को हाथ लगाने से पहले पूछा :

'हाफ़िज़ साहब कहाँ हैं ?'

'जी अब्बा हुज़ूर के दुश्मनों की तबीयत अलील है।'

'अल्लाह ताला उन्हें सेहत बख़्शे। लेकिन उनकी ग़ैर मौजूदगी में हमें यह नज़्र क़बूल नहीं। मुग़लिया ख़ानदान मुहब्बत व जाँ निसारी में ऐतबार लाता रहा है—ज़र व दौलत का कभी ख़्वाहिशमंद नहीं रहा, इनायत खाँ।'

इनायत खाँ ने अप्रतिभ होकर भी काफ़ी आग्रह किया मगर वली अहद ने मंज़ूरी नहीं दी। आख़िर इनायत का साथी सआदत खाँ भी आग्रह करने लगा। लेकिन शाहज़ादे ने गंभीर मुद्रा बनाकर कहा, 'नहीं, नहीं—यह

नहीं हो सकता—यार बाक़ी, सुहबत बाक़ी !' और सवारी को कूँच का हुक्म दिया।

कई अँधेरी काली रातें दिल्ली पर गिद्ध के डैनों की छाया की तरह मँडराती रहीं। आजकल चाँदनी चौक में जो गली पराँठे वालान है उसी में स्थित है एक हवेली ख़ान जमा खाँ। उसी हवेली के निकट एक पक्का मकान था जिसमें एक कोठरी में दिये के टिमटिमाते उजाले में बैठी रशीदन अपने भाग्य को कोसती आँसू बहा रही थी। पिछले कई दिनों की घटनाओं की स्मृतियाँ उसका दम घोटे डाल रही थीं। कूचा बीबी गौहर से ये लोग उसे एक डोली में डालकर बल्लीमारान ले गये और वहाँ एक हवेली में मय खाने-पीने के सामान के क़ैद कर दिया। दो दिन तक कोई ख़बर नहीं। शायद उन्हें अनुकूल मौका नहीं मिल पा रहा था। जब-तब कुछ गश्ती सिपाही इस हवेली को शक़ की नज़र से घूर जाते थे। आख़िर एक दिन मौक़ा पाकर एक शख़्स आया। यह उन्हीं आदमियों में से था जिसने उसका आशियां उजाड़ने में पहल की थी। अँधेरी रात में बाहर से ताला खुला और उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया गया और उसे डोली में सवार कर जमुना के किनारे एक झोपड़े में ले आया गया। यहाँ तो जैसे प्रलय ही आ गयी हो उसके जीवन में।

आज फिर बाहर से ताला खुला और यह था नज़ीरुल हुसैन। 'रशीदन ओ रशीदन—अब भूल जाओ अपने घर को। इसी घर को अपना घर समझो और मुझसे निकाह कर लो।'

रशीदन ने ठक से मुँह पर थूका और कहा, 'आ भेड़िये—मेरे वाल्दैन के हत्यारे—मर जाऊँगी लेकिन···'

'अह हह, इसी अदा पर तो मरते हैं हम, मेरी जान आज नहीं तो कल तो तुम्हें मेरा ही हमबिस्तर होना पड़ेगा।' कहते हुए उसने उसके कपोलों को अपने पंजे से सहला दिया। रशीदन बिफर पड़ी, एक, दो-तीन तड़ातड़ तमाचे जमा दिये नज़ीर के गालों पर। नज़ीर कुटिलता से मुस्कराया और उसे अंक में भरने को बाँहें फैलाता आगे बढ़ा—रशीदन पीछे और पीछे

हटती गयी। उसी कमरे में इधर से उधर बाज की झपट से बचने को लालायित फ़ाक़्ता की तरह फड़फड़ाती रही और तभी नज़ीर ने रामपुरी चाकू निकाल लिया। चाकू देखते ही जैसे रशीदन में दिलेरी भर गयी—वह नज़ीर के खुले चाकू की नोंक की तरफ़ बढ़ी, 'हाँ, हाँ, मुझे भी क़त्ल कर दे····'

'मेरी जान क़त्ल तो तुम कर रही हो!' नज़ीर के मुख पर फिर वही क्रूर मुसकान थी। रामपुरी बंद हो चुका था।

नज़ीरुल हुसैन एक रईस घर का बेटा था—ख़ूबसूरत नौजवान। अपने साथियों को उसने रज़ामंद कर लिया था कि वह रशीदन से शादी कर ले—रशीदन का हुस्न था कि नर्गिस भी शरमा जाये। नज़ीर ने दो-तीन साल पहले उसे इन्हीं कूचों में घूमते-फिरते देखा था और तभी से उसकी नज़र थी रशीदन पर। 'हय यह गुंचा जब खिलेगा तो हज़ारों को क़त्ल कर डालेगा' वह सिसकारियाँ भरता, उसकी ओर ललचायी दृष्टि से देखता रहता। जब रशीदन ने तेरहवें वर्ष में पैर रखा तो उसे बुर्क़ा दे दिया गया और घर की चहारदीवारी से बाहर निकलने की मुमानियत हो गयी। यों देखा तो रशीदन ने भी नज़ीर को था किंतु न कभी परिचय हुआ न कोई वार्तालाप। नज़ीर से नाम ज़रूर उसके साथ वाले बच्चों से सुन लिया था। बाल्यकाल का अल्हड़पन लिए वह गली-कूचों में आँधी की तरह आती और तूफ़ान की तरह चली जाती। अक्सर दो-चार बच्चे और भी साथ होते। लेकिन सौंदर्य तो एक बीज की तरह अंकुरित हो, फूटता, फैलता और हरा-भरा होता चला जाता है और न जाने कब एक पौधे से वृक्ष बनकर पूर्णता को प्राप्त होता है। जिस प्रकार पौधे से भावी वृक्ष का अनुमान सहज है उसी प्रकार रशीदन के बाल्य-काल और यौवन की संध्या में यह अनुमान सहज था। तभी बहुत-सी निगाहों का निशाना बनने लगी थी वह—अनेक तरुण, युवकों, और प्रौढ़ों की मधुर कल्पना का लक्ष्य बन गयी थी वह—लेकिन इस सबसे बेख़बर वह तो सिंह भेड़ियों की दृष्टि से अनभिज्ञ एक मृग-शावक की तरह इठलाती फिरती थी और तभी उसे बुर्क़ा दे दिया गया। बात आयी-गयी हो गयी और लोगों की दृष्टि में उसके रूप का पटाक्षेप हो दूसरे नये-नये दृश्य उभरते रहे। नज़ीर भी शायद सब भूल-

भाग गया।

उस दिन यमुना किनारे झोपड़ी में जब रशीदन को लाया गया तो करीब 6-7 युवक वहाँ एकत्रित थे। दिये की हल्की-सी रोशनी में सिर्फ़ चेहरे नजर आ रहे थे। एक था नज़ीर, दूसरा अज़ीज और तीसरा रमज़ानी और करीब सभी वे लोग जो उस दिन उसके घर को उजाड़ने में सम्मिलित थे। खाट में धँसी रशीदन के पास पहले रमज़ानी अंदर पहुँचा और उसने मुँह की पट्टी खोलकर गले में ठूँसा हुआ कपड़ा बाहर निकाला। फिर रस्सी से कसी हुई बाँहों को मुक्त किया और उसके ऊपर लुढ़क पड़ा। शेरनी की-सी तेजी से रशीदन ने लातों और हाथों का ऐसा भरपूर वार किया कि रमज़ानी खाट से जमीन पर औंधा गिरा, 'नमकहराम कुत्ते!' और जब तक रमज़ानी खड़ा हो न हो वह खाट से उछलकर भूखी शेरनी-सी बिफर-बिफरकर कस-कसकर लातें जमा रही थी रमज़ानी में—नाक, मुँह, पेट और कहीं भी और रमज़ानी इधर से उधर सिर्फ़ बचाव ही कर पा रहा था, खड़ा होना दूभर था उसके लिए। औरजैसे ही रशीदन ने मौका देखा वह साक्षात चंडी की तरह उसके पेट पर दोनों पाँव रखकर खड़ी हो गयी—एक भयंकर चीख निकल पड़ी रमज़ानी के मुख से; तभी किसी ने बाहर से किवाड़ में लात मारी और पल्ला एक तरफ़ हो गया। यह चंडी रूप देखते ही छः भेड़िये पिल पड़े रशीदन पर। 'पकड़ ले अज़ीज साली को, फाड़ डालो इसके कपड़े' यह था सुल्तान बल्लीमारान का दादा और इस गिरोह का नेता। इसी ने तो रशीदन की माँ का क़त्ल किया था। नज़ीरुल हुसैन आगे बढ़ा और धौल जमा दी। रमज़ानी पेट पकड़े झोपड़ी से बाहर स्वच्छ हवा में खोये हुए स्वांस वापस लेने का प्रयत्न कर रहा था। अकेली रशीदन लात-घूँसों से यथाशक्ति अपनी रक्षा कर रही थी। स्वयं को सदैव नाज़ुक समझने वाली इस रूपसी में न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गयी थी। लेकिन कहाँ छः ख़ूँख़्वार दरिंदे कहाँ वह अकेली। आख़िर उसके कपड़े जहाँ-तहाँ से फाड़ डाले गये और सुल्तान दहाड़ा, 'अभी चीर देता हूँ साली की टाँगें।' उसे खाट में दबोच लिया गया। तभी दीपक की लौ में नज़ीर ने उसकी सूरत ऊपर से नीचे तक देखी और उसके मुँह से लगभग चीख़-सी निकल पड़ी, 'रशीदन!' उसका स्मृति-पटल बिजली की तरह कौंध गया

था। विवश रशीदन ने उसकी ओर देखा और घृणा से मुँह फेर लिया। लेकिन नज़ीरुल हुसैन ने गर्जना की, 'ठहरो सुल्तान !' और सुल्तान के साथ सारे साथियो के हाथ शिथिल पड़ गये। लाल-लाल आँखो से सुल्तान ने नज़ीर को देखा और पूछा, 'क्या हो गया ?'

'बताता हूँ, बाहर चलो, सब-के-सब बाहर चलो।'

और सब कुटिया के दरवाज़े पर आकर खड़े हो गये। जब रशीदन अपने अस्त-व्यस्त क्षत-विक्षत कपड़ों को यथासभव संयत कर रही थी, नज़ीर सुल्तान को थोडा अलग ले गया।

सुल्तान ने हा नज़ीर को आवारा बनाया था। बड़े घर का लड़का भी ऐसे गिरोहो मे होना जरूरी है। थाने-कोतवाली-कचहरी का मामला फँस जाये तो ऐसे लोगो के द्वारा काफ़ी सहायता मिलती है। फिर नज़ीर घर से छुपा-छुपाकर धन या आभूपणो से सुल्तान की आर्थिक सहायता भी करता रहता था। सुल्तान पर उसके अनेक अहसान थे और सुल्तान का उस पर केवल एक यही कि उसने उसे आवारा बना दिया था और आवारा बने रहने में यथासभव सहायता कर रहा था।

'क्या हुआ नज़ीर मियाँ !' जरा क्रोध मिले प्यार से सुल्तान ने पूछा।

'सुल्तान भाई यह तो मेरी बचपन की चहेती निकली। इसको लेकर मैंने कई तरह के ख़्वाब सँजोये थे—भाई जान, इसे मेरे लिए छोड़ दो मैं इससे निक़ाह करूँगा।'

'अरे मियाँ फिर उतर आये न शराफ़त पर—अरे कही ऐसी छोकरियों से निकाह किया जाता है—ये तो अंगूर के गुच्छे के मानिंद हैं—रस चूसो और छूँछ बाक़ी रहे तो फेंक दो—नही नज़ीर यह नही हो सकता ! यह तो साझे का माल है—सबको बाँटना लाज़िमी है !'

नज़ीर अभी निराश नही हुआ था, फिर गिड़गिड़ाया, 'नही सुल्तान भाई इसे बख़्श दो सिर्फ इसी को—इसे तक़सीम मत करो। यह मेरा जी जान है—कलेजा है।'

'नही यह नही हो सकता !'

'हो सकता है !'

'नहीं हो सकता' सुल्तान ने दावे के साथ कहा और तभी नज़ीर का

दिमाग़ जो तेज़ मशीन की तरह दौड़ रहा था एक जगह जाकर ठहर गया, उछल पड़ा और नज़ीर ने मन-ही-मन कहा, 'ओह मार दिया पापड़ वाले को।'

प्रकट मे बोला, 'देखो सुल्तान भाई उस दिन की लूट मे से मैं अपना पूरा हिस्सा तुम्ही को दिये देता हूँ—मुझे कुछ नही चाहिए, बस इसे मेरे लिए छोड़ दो।'

सुल्तान की बाँछें खिल गयी। बोला, 'वायदा!'

'हाँ सुल्तान, वायदा।'

सुल्तान की एक ही आवाज ने सबको चौंका दिया और वहाँ से उस लड़की को नज़ीर की इस पोशीदा सैरगाह मे जो गली परांठे वालान मे स्थित थी ले आया गया। तभी से नज़ीर उससे प्रणय-निवेदन करता रहा—मिन्नतें की, आरज़ू की, लेकिन गालियाँ और फुफकार मिली और जब कोई पेश न चली तो आज रामपुर का चाकू निकाल लिया। निकालकर बद भी कर लिया।

मुहब्बत यही तो होती है, सिहरती है, छटपटाती है, खिसियाई बिल्ली की तरह अपने ही बाल नोचती है लेकिन मजाल क्या कि माशूक का बाल भी बाँका हो जाये। 'इंतज़ार, इंतज़ार, इंतज़ार'

'मरीज़े इश्क पर लानत खुदा की
मर्ज़ बढ़ता गया ज्यो ज्यों दवा की'

कहते हैं मुहब्बत इकतरफ़ा नही होती—दोनो तरफ़ कुछ घुमड़ रहा होता है लेकिन यहाँ रशीदन की कुछ अलग स्थिति थी। उस दिन हत्यारो के गिरोह मे होने के कारण नज़ीर उसके लिए एक कातिल था। उसके वाल्दैन का कातिल, माँ-बाप और दादी-अम्मा का क़ातिल और कुछ नही—सिर्फ़ क़ातिल!

इधर पल रहा था प्यार उधर नफ़रत और दोनों दिन दूने रात चौगुने बढ़ते जा रहे थे। छटपटाती थी, फुंकारती थी और कभी-कभी सिहनी-सी दहाड़ती थी रशीदन, लेकिन नज़ीर को हाथ नही लगाने देती थी बदन से।

कई बार उसने आत्महत्या का विचार भी किया लेकिन न कोई रस्सी थी न कड़ा। यह कमरा तो चुनकर बनाया गया था उसका कारावास।

वैसे रस्सी का काम तो शायद उसका दुपट्टा भी कर देता लेकिन कड़ा या खूँटी भी तो फाँसी का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। कभी-कभी इतनी छोटी-छोटी वस्तुएँ जिन्हें हम साधारण जीवन में अत्यंत साधारण समझते हैं किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में अपनी अनुपस्थिति के कारण जान-सी प्यारी लगती हैं। रशीदन को छत से लटकते कड़े या बड़ी कोई खूँटी की कल्पना मात्र जान से भी प्यारी थी। फंदा लगाया, लटके और सारी विपदाओं से मुक्ति!

उसने अपना दुपट्टा सहलाया। एक बार रस्सी की तरह बँटकर मजबूत बनाया—उसे सीने से लगाया और फिर उसी का फंदा बनाकर गले में डाला और लगी अपने हाथ से खींचने। खींचती गयी—साँस घुटने लगी, आँखें थोड़ी बाहर को उभरने लगीं और तभी उसकी पकड़ ढीली पड़ गयी—मरना इतना आसान नहीं! लेकिन वह सोचती—अब्बा-मम्मी कितनी आसानी से मर गये थे। दादी अम्मा को क्या देर लगी—लेकिन मैं बदनसीब रह गयी और वह फूट-फूटकर रो पड़ी।

रशीदन यह तो तुम एक हो—अरे यह तो दिल्ली है—यहाँ रात-दिन तुम जैसी सैकड़ों नारियाँ इससे भी कहीं ज्यादा यातनाएँ भोग रही हैं। देखती नहीं वह गिद्ध के डैने—अनगिनत साये मँडरा रहे हैं इस काली अँधेरी रात में दिल्ली पर। दिल्ली, जिसकी असली रोशनी बुझ चुकी है—कब की बुझ चुकी है। जहाँ-तहाँ कुछ जुगनू टिमटिमा रहे हैं।

दिल्ली पर बराबर काली छाया मँडरा रही थी। आज गिद्ध के डैनों के सायों ने लाल किले को भी ढँक दिया था—सिर्फ वह लाल क़िला दिल्ली के लड़खड़ाते शाहंशाह की बैसाखी बना हुआ था। शाहशाहे हिंदुस्तान आलमगीर द्वितीय, नाम का शाहंशाह और नाम का रह गया था उसका हिंदुस्तान। शासन चरमराकर बुरी तरह टूट चुका था—सिंधिया, होल्कर, भौंसले, जाट रुहेले और सर्वोपरि अंग्रेज मुगल साम्राज्य की नींव खोद डालने में व्यस्त थे। आलमगीर की हुकूमत, अगर इसे हुकूमत कहा जा सकता है तो, केवल लाल किले की चहारदीवारी में ही क़ैद थी।

हुकूमत इसलिए कही जा सकती है कि वह अब भी शाहंशाहे हिंद के ख़िताब से सम्मानित था—और नहीं इसलिए कि असली हुकूमत लाल किले में भी उसके हाथ नहीं थी। इमादुल्मुल्क या फिर नजीब खाँ ही असली हाकिम थे। शाही हरम में राजनैतिक गुट बन गये थे जो भाँति-भाँति के षड्यन्त्रों के केन्द्र थे और बुजुर्ग बेगमों, ख़ूबसूरत दासियों और हिजड़ों के शासन का बोलबाला था। मीर बख्शी, वज़ीर या ख्वाजा सरा—ये थे शासन के केन्द्र और बादशाह की मोहर लगा दी जाती थी इनके द्वारा किये गये प्रत्येक निर्णय पर। बादशाह था कि उसे भोग-विलास से ही फ़ुरसत नहीं।

'इधर तशरीफ़ लाइये जहाँपनाह', एक खादिम ने बादशाह को रास्ता बताते हुए अदब से कहा और हरम की तरफ़ ले चला। सदर दरवाज़े तक पहुँचकर उसने एक नादर (हिजड़े) को अपना बेशकीमती कार्यभार सँभाला और छुट्टी पायी। 'अच्छा अहमद तुम जाओ खुदा हाफ़िज़' और अहमद ने कहा, 'खुदा हाफ़िज़ आलीजाह' और वह ज़मींबोस करता हुआ पीछे की तरफ़ कदम रखता वापस हुआ।

'ख़ुसरो आज कौन है हमारी आरामगाह में ?'

'हुज़ूर वही नायाब गज़्ज़ाल[1] चश्म है।'

'क्या नाम है, कहाँ से आयी ?'

'हुज़ूर काश्मीर का गुंचा है, वही परीज़ाद जो पिछले हफ़्ते आयी थी।'

वृद्ध बादशाह कल्पना से ही रोमांचित हो उठा, 'काश्मीर का गुंचा ?' उसने बात जारी रखने को सवाल जड़ा।

'जी हाँ आलमपनाह काश्मीर का।'

शयन-कक्ष में प्रवेश करते ही आलमगीर के नथुने फड़क उठे। अपनी सफ़ेद दाढ़ी झाड़ता हुआ वह जवानी की यादों में खो गया। सभी जैसे मख़ौल उड़ाना चाहते हों उसके बुढ़ापे का। 'काश्मीर का गुंचा' कहकर ख़ुसरो हमारी ज़ईफ़ी की खिल्ली नहीं उड़ा रहा तो और क्या कर रहा है। इस कम्बख़्त ज़ीनत अफ़रोज़ से बुढ़ापे में शादी क्या की कि जैसे इसने हमारी सारी कमज़ोरियों को हज़ार-हज़ार जुबानों से शाया कर दिया हो—

---

1. हिरन की-सी आँखों वाली

उसे चक्कर आने लगे और शयन-कक्ष में प्रवेश करते ही धम्म से पलंग पर जा पड़ा। थोड़ी ही देर में उसे काश्मीरी लड़की का ध्यान आया, 'क्या नाम था उसका?' उसने माथा पकड़कर याद करना चाहा—'हाँ ज़रीना' याद आया उसे। वह ज़रीना उसके लिए हूर थी क्योंकि गजब का धैर्य था इस लड़की में। जितना अधिक धैर्य या संयम होता, जिस लड़की में, वह उतनी ही बादशाह की तुष्टि कर पाती, ज़रीना ने कभी जल्दबाज़ी नहीं की। दो-दो, तीन-तीन घंटे, कभी-कभी सारी रात तक लग जाती बूढ़े हाड़ों को रोमांचित करने में लेकिन वह कभी उफ़ तक नहीं करती थी। ऐसा था उसका धैर्य। इसी से काफ़ी दिनों से शाहंशाह के अंक-शयन का सौभाग्य प्राप्त कर रही थी। शिथिल शाहंशाह पलंग पर पड़ा ही था कि ज़रीना ने पहले सलीके से आदाब बजाया और पलंग के एक ओर सरसराहट-सी करती, नूपुर बजाती, चूड़ियाँ खनखनाती कुछ इस तरह खड़ी हो गयी कि बादशाह को उसके पास होने का अहसास हो जाये। वृद्ध में दम-ख़म जवाब दे रहा था लेकिन नूपुरों की धुन और इत्र-वेज़ हवा ने उसे कुछ हौसला दिया। प्यार से बोला, 'ज़रीना, मेरी जान, आओ' और हाथ पकड़कर उसे पलंग पर खींचते हुए सीने पर लुढ़का लिया, 'आओ मेरी ज़िंदगी—यह दुनिया फ़ानी है मुझे हज़ार-हज़ार फन—साँप के फन नज़र आते हैं हर तरफ़, उफ़्फ़! बादशाह की ज़िंदगी भी कोई ज़िंदगी होती है? एक काश्तकार अच्छा, एक मज़दूर हज़ार दर्जे बेहतर' और बादशाह की यातनाएँ सौ-सौ गुबार बनकर मँडराने लगीं उसके मानस पटल पर 'वह कमीना रामरतन, वह हरामज़ादा ज़ूना खाँ, वह कम्बख़्त रहेला'—चारों तरफ़ ज़हर घोल दिया है लाल क़िले की हवा में। वह जाने क्या-क्या सोच रहा था कि अचानक ज़रीना का ध्यान आया और कहने लगा:

'मेरी ज़िंदगी की आबे हयात,[1] आओ, आओ मेरी बादा-ए-कौसर[2] तुम्हीं से मुझे सुकून की उम्मीद है।' उसने ज़रीना के उन्नत उरोज टटोलना शुरू किये और सारी चिंताओं से मुक्त हो उससे लिपट गया मानो सृष्टि का आदि-अंत ज़रीना ही हो—हज़ारों चुंबन जड़ दिये जहाँ-तहाँ और ज़रीना

1. अमृत 2. स्वर्ग की शराब

फूल पर चिपके पराग की तरह लिपट-लिपट गयी बादशाह से। अब शाहंशाहे हिंद शाहंशाह नहीं एक मामूली हाड़-माँस का पुतला-इन्सान था। 'ज़रीना, हाँ बस यही, अपनी नाज़ुक हथेली फेरो, हाँ—बिल्कुल ठीक, और थोड़ा, हल्के। हल्के। नहीं, नहीं, वह लाओ कौन-से परिंदे का पंख फिराती हो तुम ?'

'सुर्खाब का पर जहाँपनाह।'

'हाँ, हाँ, निकालो, है न तुम्हारे पास ?'

'क्यों नहीं जहाँपनाह, पूरी तैयारी से आयी हूँ !'

उसने अपनी चोली में से पंख निकाला और लगी धीरे-धीरे फेरने।

'हाँ यही, ये कुछ बात हुई।'

ज़ईफ़[1] सम्राट अब युवक बनने का उपक्रम कर रहा था। उत्तेजना से उसकी नस-नस उभर गयी और ज़रीना ने निहाल कर दिया उसे लेकिन कुछ क्षणों की उत्तेजना ज़रीना को निहाल न कर सकी, वह तड़पती रह गयी—यही लिखा था मुगलिया हरम की सदस्यों के भाग्य में—गल-गल के मिट जाना। अपने सम्राट की जब-तब प्यास बुझाना और अपनी प्यास के लिए अन्यत्र स्रोत ढूँढना। मिल गया तो ठीक वर्ना घुट-घुट के अपना यौवन गला देना। वैसे प्रायः उन दिनों काफ़ी साधन तो उपलब्ध थे लेकिन थे सब जोखिम भरे। दिलेर उन्हें पा लेती और बाकी तड़पती रह जाती। आख़िर तैमूरी हरम जो था।

बादशाह की आँख लगने को थी कि ज़रीना ने कहा, 'आलमपनाह, गुस्ताख़ी मुआफ़ हो तो···' सोता हुआ बादशाह उठकर बैठ गया। 'ज़रीना, छोड़ो यह अदब व आदाब—क्या आलमपनाह! जहाँपनाह!!' मुँह चिढ़ाते हुए उसने कहा, 'ज़रीना तुम हमारी दोस्त बन जाओ, वाक़ई दोस्त—सचमुच हमारा इस जहाँ में कोई दोस्त नहीं—जिसे तुम आलमपनाह कहती हो वह तुम्हारी गोद में पनाहगज़ी[2] है। और बादशाह फूट-फूटकर रो पड़ा, 'ज़रीना, ज़रीना—मेरी ज़रीना।'

'जहाँपनाह, यह क्या है, शाहंशाहे हिंद के लिए इस तरह अश्क बहाना

---

1. वृद्ध 2. शरण मे

शान के खिलाफ है।' और उसने अपने दामन से सम्राट के आँसू पोंछना शुरू किया, वह पोंछती गयी, आँसू और ढलकते गये—मानो गंगा-यमुना पैठ गयी हो सम्राट के दिल में।

'ज़रीना यह अल्फ़ाज तंज़[1] हैं, ताअना हैं, हमारे कान पक गये हैं सुनते-सुनते—जिसे देखो हमें जहाँपनाह, आलीजाह, आलमपनाह कहता है और पेट में छुरा छुपाये फिरता है। उफ् यह तंज अब बर्दाश्त के क़ाबिल नहीं। हम इबादत नहीं चाहते, हमें तो दोस्त चाहिए—ज़रीना तुम हमें नाम से पुकारो, आलमगीर! नहीं यह तो शाही नाम है, हमारा इन्सानी नाम है अज़ीजुद्दीन।'

ज़रीना स्तब्ध रह गयी, 'यह आज हुज़ूर को क्या हो गया है!'

'ज़रीना! फिर वही हुज़ूर! अज़ीजुद्दीन कहो हमें। जल्दी, हमें इसी से सुकून मिलेगा।'

'आलीजाह यह कनीज़[2] की गुस्ताख़ी होगी और उसे यह ज़माना तो क्या रोज़े महशर[3], अल्लाह तआला भी नहीं बख़्शेगा।'

'हमारा हुक्म है हमें नाम लेकर पुकारो।'

'हुज़ूर की हुक्म उदूली का जुर्म इस जुर्म के सामने बहुत छोटा होगा।'

'नहीं ज़रीना हम मिन्नत करते हैं हमें नाम से पुकारो' और बादशाह फिर रो पड़ा। ज़रीना की गोद में, बच्चों की तरह फफकने में उसे एक अजीब शांति मिल रही थी।

'ज़रीना, हमारी दरख़्वास्त है, हमारी इल्तिजा[4] है, हमारी दिली ख़्वाहिश है हमें नाम से पुकारो।' अब सम्राट ने विनम्रता का सहारा लिया।

'जी अज़ीजुद्दीन!'

'हाँ यह कुछ बात हुई! बस आज हमें अज़ीज़ के सिवा और कुछ मत कहो, अज़ीज़ ख़ालिस अज़ीज़!' और फिर माथे पर हाथ लगाकर कुछ सोचने लगा, 'हाँ ज़रीना तुम कुछ कहना चाहती थी न!'

'जी अज़ीज़, मैंने सुना है, कोटला फ़ीरोज़शाह में एक फ़क़ीर आया है

---

1. व्यंग्य 2. तुच्छ दासी 3. प्रलय के दिन 4. प्रार्थना

उसके पास हजारों करिश्मे हैं—बड़ा पहुँचा हुआ औलिया मस्तान है।'

'अच्छा तो ?' सम्राट ने प्रश्न जड़ा।

'सुना है अजीज, कि वह लोगों की मुरादें पूरी कर देता है।'

'हमारी मुराद पूरी कर दे कि हम इस आलमे फ़ानी से कूच कर जायें!'

'हय तौबह-तौबह, नहीं अजीज कूच करें आपके दुश्मन—यह कैसे नाकिस अल्फ़ाज फ़रमा रहे हैं।'

'सच जरीना, अब तो हमारी यही एक मुराद है।'

'ऐसी मुराद पूरी हो बद-बख्त दुश्मनों की।'

'तो क्या मुराद पूरी करेगा वह हमारी ?'

'मैंने सुना है वह बाँझों को बच्चे दे देता है और जईफ़ों[1] को नयी जवानी—और भी कई···।'

'नयी जवानी—नयी जवानी ! जरीना लाश में कौन जान फूंक सकता है!'

'अजीज एक पैगम्बर हजरत मसीहा हुए हैं, सुना है वे तो लाश में भी जान फूंक देते थे।'

'मगर प्यारी जरीना वे पैगम्बर थे।'

'गुस्ताख़ी मुआफ़ हो अजीज।'

'फिर वही अदबो-आदाब, गुस्ताख़ी क्या होती है ! हम तुम दोस्त जो हैं!'

'जी तो यह फ़क़ीर लोग भी तो ऐसे ही पैग़म्बरों के नक्शे पा[2] पर चलते आये हैं—क्या शुबहा कि ये भी कुछ करिश्मे रखते हों। उसने कई जईफ़ों को नयी जवानी बख़्शी है!'

करने को तो सम्राट मना कर रहा था मगर उसके दिल में एक अजीब गुदगुदी शुरू हो गयी थी। अगर जरीना का कहना सही निकला तो जिंदगी के मज़ो की एक और मियाद बढ़ जायेगी। ऐशो-इशरत की रही-सही हविस और पूरी हो लेगी, लेकिन फ़र्ज़ करें कि ग़लत निकला तो भी

1. वृद्ध 2. पदचिह्न

दरवेश के दीदार[1] करने में क्या नुक़सान है ?'

'क्या नाम है उनका ज़रीना ?'

'हैदरशाह, अज़ीज़, आप कल ही तशरीफ ले जायें उनके दीदार को फिर रातें हमारी होंगी दिन आपके !'

और बादशाह ने रज़ामंदी दे दी। दिल बल्लियों उछलने लगा।

अर्द्धरात्रि बीत चुकी थी—ज़रीना यौन अतृप्ति से व्याकुल सो चुकी थी—यह उम्र ही ऐसी है। नींद दवा बन जाती है। मन मसोसकर निद्रा देवी का आह्वान करो और उसकी गोद में सारी कुंठाओं, अभावों, अतृप्तियों को भुलाकर स्वयं को भी कुछ देर के लिए भूल जाओ। नींद जो मृत्यु का छोटा रूप है, एक अस्थायी मौत ! सब क्लेशों से मुक्ति दिलाने वाली नींद मृत्यु का पर्याय नहीं तो और क्या है ! और हमारे अज़ीज़ुद्दीन—वे आज ख़ालिस अज़ीज़ुद्दीन हैं। यौन-तृप्ति ने आज उनकी नींद हवा कर दी है। करवट बदले लेकिन दिमाग़ वायु वेग-सा क्रियाशील है। ये हज़ार-हज़ार मंसूबे बनाने में तल्लीन हैं। ज़रीना ने नये जीवन के नये कालांश का जो वायदा किया है उनसे ! एक नयी आशा व्याप्त है। हैदरशाह ! क्या कुछ नहीं कर सकते ये लोग ? अगर कहीं उनका तिलस्म सही निकला (पूरी उम्मीद है कि सही होगा) तो एक नयी ज़िन्दगी शुरू होगी, एक नया हौसला होगा—बीते हुए साल फिर वापस आयेंगे, और लायेंगे अपने साथ एक नयी बहार।

शाहंशाह ने करवट ली। पलंग पर गुलाब के फूलों की पंखुड़ियाँ अस्त-व्यस्त पड़ी अपनी आख़िरी महक दे रही थीं। और ज़रीना गहरी, निश्चल, निश्छल नींद में बेसुध पड़ी थी। शमा के धीमे प्रकाश में शाहंशाह उसके उठते-गिरते वक्षस्थल को देखते रहे—मानो भूचाल की हलचल से दो पहाड़ उन्नत हो-होकर फिर अपने स्थान पर आ जाते हों। बादशाह ने सोचा यह कैसा भूचाल है—यह कहीं ज़रीना की दबी हुई तमन्नाओं, मसोसी गयी हसरतों का ज़लज़ला तो नहीं। काफ़ी देर बाद फिर बादशाह के दिल में ख़ुशी की बिजली-सी चमकी। फ़ीरोज़शाह कोटला, कोटला फ़ीरोज़शाह—

1. दर्शन

ओह हैदरशाह—सब कितने अजीज नाम हैं। नयी जवानी के पैग़ाम बनने जा रहे हैं ये दोनो नाम—

नयी जवानी ! बादशाह रोमांचित होने लगे—कल्पनाओं के कबूतर उड़ान भरे जा रहे थे। लो अब ज़ीनत अफ़ोज को मालूम होगा कि इस ज़ईफ से निक़ाह करके उसने कोई ग़लती नही की है—उस रोज़ कितनी गुस्ताख़ी से पेश आयी थी वह। 'जहाँपनाह, आपको शर्म आनी चाहिए कि जब आपका यह हाल है तो आपने एक जवान लड़की की ज़िंदगी खराब करने की पहल क्यो की। हज़रत को चक्कर आते हैं, खड़ा हुआ नही जाता, बैठने में साँस फूलती है और चले मुहब्बत करने—दम-ख़म चाहिए मुहब्बत के लिए मियाँ…!'

—और भी कुछ कहती कि हमने डाँटकर कहा, 'ज़ीनत ! बकवास बंद करो—'' और बाकी अल्फाज खाँसी में डूब गये थे। ज़ीनत ख़ामोश तो हो गयी लेकिन भूखी शेरनी-सी घूरती रही हमको। अब लो ज़ीनत तुम्हारी ठसक नही निकाली तो अज़ीजुद्दीन ही क्या हुआ—अब तुम्हारी जवानी को एक फूल की जवानी की तरह मसल-मसलकर रौंद-रौंदकर काबू मे किया जायेगा और तब तुम कहने लगोगी—'बस-बस आलीजाह —अब और नही।'

आलमगीर जैसे एकदम पच्चीस वर्ष का हो गया हो। वह उठा लघु-शंका को, और फिर एक तरफ़ पड़े तख़्त पर बैठकर बेताबी से सुबह का इंतज़ार करने लगा।

अभी सुबह बहुत दूर है जहाँपनाह, ज़रा सब्र करो ! कोटला फीरोज़-शाह, हैदरशाह सब जल्दी ही मिलेंगे—इतनी भी बेताबी क्या !

आलमगीर पलंग मे फिर धँस गया और आँखों-ही-आँखो में रात निकाल दी। उसने जैसे ही फजर की अज़ान सुनी, वुज़ू की, और अपने शयन-कक्ष में ही दिन की अव्वल नमाज अदा की। पंज वक़्ता नमाज़ का पाबंद जो था वह।

सुबह होते ही तो उसने आकबत, महमूद और सिद्दीकी कई-कई ख़ादिमो को तलब करा लिया और कहा कि वज़ीर को हुज़ूर में पेश करो। आख़िर सारे ख़ादिम वज़ीर की तलाश मे इधर-उधर निकल पड़े। सबको

बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि जिस वज़ीर की छाया मात्र से बादशाह को नफ़रत थी—जिसके नाम तक से उसकी रूह काँप जाती थी उसको मिलने की इतनी उत्कट अभिलाषा कैसे जागृत हो गयी। वही वज़ीर जिसने बादशाह को तरह-तरह से विवश बना दिया, हरम को कई-कई दिनों तक भूखा रखा, बादशाह को सवारी तक के लिए तरसा दिया, हाँ तरसा ही तो दिया वर्ना पिछले साल भरी गर्मी में बादशाह सलामत को पत्थर वाली मस्जिद तक पैदल क्यों जाना पड़ता ? ईदगाह जाने तक को उन्हें सवारी उपलब्ध नहीं होती थी।

आखिर नौकरों ने इमाद-उल-मुल्क वज़ीर को ढूँढ निकाला और वह बादशाह के हुजूर में उपस्थित हुआ। ज़मींबोस की अदायगी के बाद पूछा—

'आलमपनाह ने नाचीज़ को कैसे याद फ़रमाया, गुस्ताख़ी मुआफ़ हो आलीजाह, खाकसार अभी सल्तनत के एक बहुत ज़रूरी काम में मसरूफ़ था इसलिए कुछ देर हो गयी—'

'नहीं नहीं वज़ीर, कोई देर नहीं हुई। हमने सुना है कि कोटला फ़ीरोज़शाह में एक मशहूर दरवेश ठहरे हुए हैं—'

अनभिज्ञता प्रकट करते हुए वज़ीर ने कहा, 'जी आलीजाह ?'

'एक पहुँचे हुए फ़क़ीर, जिनका इस्म मुबारिक है हैदरशाह, कोटला फ़ीरोज़शाह में क़ियाम पज़ीर[1] हैं।'

'जी आलमपनाह।'

'हम उनके दीदार के ख़्वास्तगार[2] हैं।' शाहंशाह ने वज़ीर की प्रतिक्रिया उसके चेहरे से पढ़ने का प्रयत्न किया।

वज़ीर ने माथे पर सिकुड़न लाते हुए बहुत नर्मी से पूछा 'तो क्या जहाँपनाह आज ही तशरीफ़ ले जायेंगे।'

सम्राट कुछ विचलित-सा हुआ और मन में सोचा, 'कहीं आगे किसी दिन के लिए मुल्तवी न कर दे।' और प्रकट में बड़ी मधुरता से बोला—'हाँ, इमादुल्मुल्क, आज ही, अगर हो सकता है तो अभी।'

---

1. ठहरे हुए हैं 2. इच्छुक हैं

'आलमपनाह ऐसी क्या जल्दी है ?'

'जल्दी ! जल्दी की बात नहीं। दरवेशों के दीदार का सवाब[1] जितनी जल्द हो सके लूटना अच्छा होता है वर्ना इन लोगों का क्या पता कि कब कहाँ के लिए कूच बोल दें। यह मौका अच्छा है।'

वज़ीर के चेहरे पर एक अप्रकट प्रसन्नता खेल रही थी यद्यपि वह अपने गांभीर्य से उसे भरसक दबाने का प्रयत्न कर रहा था।

'ठीक है आलमपनाह, जलूस का इंतज़ाम किये देता हूँ—एक हाथी 25 घुड़सवार काफ़ी होंगे न हुज़ूर ?'

'नहीं-नहीं वज़ीर, जब एक बादशाह किसी दरवेश से मिलता है तो बादशाह की हस्ती उस दरवेश के सामने बहुत अदना[2] होती है। लिहाज़ा उसे जितनी सादगी से हो सके जाना लाज़िमी है। हम अकेले जायेंगे।'

'आलीजाह, यह तो हुज़ूर की शान के ख़िलाफ़ होगा, इसमें तो तख़्ते शाही की तौहीन[3] होगी।'

जितना-जितना वज़ीर आग्रह करता उतना ही बादशाह अकेले ही जाने की ज़िद करता जा रहा था।

अंत में वज़ीर ने कहा, 'अगर यही हुज़ूर की मर्ज़ी है तो एक घोड़े का इन्तज़ाम किये देता हूँ, और गुलाम भी हुज़ूर के साथ चलेगा।'

'बेशक़, बेशक़ वज़ीर तुम ज़रूर चलो, लेकिन फ़क़ीर से हमारी मुलाकात तख़लिये[4] में होगी।'

'कोई मुज़ायका नहीं जहाँपनाह, मैं बाहर इंतिज़ार करूँगा और फ़क़ीर के दीदार बाद में कर लूँगा।'

'हाँ, ठीक है।'

'तो मैं कुछ ख़बर-नवीसों को फ़क़ीरों का पता लगाने भेज देता हूँ और दोपहर बाद चले चलेंगे।'

'ठीक है।'

नवम्बर का अंत था, तारीख़ 29, दिल्ली में हल्की-हल्की ठंड शुरू हो गयी थी अतः अक्सर 3-4 बजे का समय बाहर निकलने के लिए उपयुक्त

---

1. पुण्य 2. तुच्छ 3. अपमान 4. एकांत

रहता था। वही समय निश्चित कर वज़ीर ज़मींबोस करता हुआ पीछे की ओर क़दम रखता मोती महल से बाहर निकला और अपने काम में व्यस्त हो गया।

बादशाह आशा और निराशा में डूबता-उतराता रहा—कितना अच्छा है यह वज़ीर। यही पता नहीं क्यों, कभी-कभी ज़हर की पुड़िया बन जाता है—यही वज़ीर जो कई बार उसे व शाही खानदान को दाने-दाने को तरसा देता है, कितना अच्छा है। कितने अदब से पेश आया आज। उसके चेहरे पर गुस्ताख़ी तलाश करने की कितनी कोशिश की मैंने आज, लेकिन गुस्ताख़ी का नामो-निशान नहीं। आख़िर मुग़लिया खानदान का नमक जो खाया है उसने—कभी तो असर लाता ही है। नमक की कुछ तो सिफ़त होती है। आदमी रास्ते से हटने की कोशिश भी करे तो नमक उसे अपनी क़शिश से रास्ते पर ला ही देता है—इसीलिए तो इमाद कुछ महीनों से पूरी फ़र्मांबरदारी से अपने फ़राइज़[1] को अंजाम दे रहा है। कभी-कभी उसका दिमाग़ फिर गया तो क्या हुआ, आख़िर है तो शाही वज़ीर। फिर कुछ सनकी है, पैदाइशी सनकी। सनक सवार होती है तो कुछ भी कर गुज़रता है।

और फिर वह रंगीन सपनों में खो गया। नयी जवानी की रंगीनियाँ, ज़ीनत अफ़रोज़ का मान-मर्दन, ज़रीना के साथ रंगरेलियाँ, और नये दिन, नयी रातें, नयी हूरें, नयी परियाँ।

तभी एक काली छाया बादशाह के सर पर मँडराती हुई निकल गयी। बादशाह चौंका भी लेकिन नहीं, यह वहम है—नहीं कुछ नहीं—और फिर वही सपने। फिर वही काली छाया।

बादशाह दोपहर को आराम करके उठे ही थे कि क़नीज़ ने ख़बर दी, 'जहाँपनाह इमादुल्मुल्क हुज़ूर में पेश-ख़िदमत हैं।'

'भेजो, भेजो' बेताबी से बादशाह ने हुक्म दिया।

और इमादुल्मुल्क, जनाब ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ, वज़ीर-ए-दौलत हुज़ूर में पेश हुए।

---

1. कर्तव्यों

'जहाँपनाह सब कुछ तैयार है—फ़क़ीर की क़ियामगाह का भी पता लगा लिया गया है। उनका नाम मुबारक हैदरशाह है।'

'हाँ हाँ, वे ही।' बादशाह ने लगभग उछलते हुए कहा, 'इमाद तुम इंतिज़ार करो, हम पोशाक बदलकर चलते हैं।'

'जी अच्छा आलीजाह।'

दो घुड़सवार कोटला फीरोज़शाह की तरफ़ बढ़े चले जा रहे थे। बादशाह ने अपने लिए इतनी सादा पोशाक चुनी थी कि दिल्ली की सड़कों पर उन्हें कोई पहिचान नहीं पाया। वज़ीर भी सादा लिबास में थे। दूसरे सैकड़ों घुड़सवारों की तरह यह भी गये और निकल गये और एक दरगाह की तरफ़ जिसमें कि हैदरशाह ठहरे थे बढ़ चले। इमाद ने बताया, 'आलीजाह वह नज़र आ रही है दरगाह।' दूर से ही देखकर बादशाह को वह दरगाह जान से भी प्यारी लगी। 'यही मेरी उम्मीदों को पूरी करेगी। यही मेरी तमन्नाओं का आसरा है—लो आन पहुँचे, अब क्या है!' बादशाह सोच रहा था।

'हुज़ूर ने फरमाया था कि दरवेश के दीदार तख़लिये में ही करेंगे।'

'हाँ, इमादुलमुल्क, एकदम तख़लिये में।'

'तो आलीजाह ख़ादिम तब तक नज़दीक के एक बगीचे का मुआयना कर लेगा। एक छोटा-सा बगीचा जो बर्बाद हो चला था, फिर से सरसब्ज़ कराया जा रहा है।'

'ज़रूर-ज़रूर इमाद, बग़ीचों को बर्बाद नहीं होने देना चाहिए।'

'जी, जहाँपनाह।'

'गुलाब के पौधे लगाये हैं?'

बात समाप्त भी न हुई थी कि चार-पाँच सवार अपने नेज़े (भाले) उठाये बादशाह को अपनी तरफ़ आते नज़र आये और वह कड़ककर बोला, 'इमाद, यह कौन गुस्ताख़ नेज़े निकाले हमारी तरफ़ चले आ रहे हैं।' दरगाह दस क़दम रह गयी थी। इमादुलमुल्क ने कहा, 'आलीजाह, एक नहीं कई-कई दरवेशों से तख़लिये में मुलाक़ात कीजिये।' और घोड़ा घुमाकर एड़ लगा दी। सवारों ने बादशाह को घेर लिया था। बादशाह ने अपनी तलवार खींची ही थी कि एक सवार ने नेज़े से छेदकर बादशाह को

नीचे गिरा लिया और दूसरे सवारों ने उसका बदन छलनी कर दिया। बादशाह की जुबान से सिर्फ़ यह शब्द निकले, 'उफ्फ, दग़ा!' और उसके प्राणपखेरू हूरों के देश में पहुँच चुके थे।

दूसरे दिन इमादुलमुल्क ने भूतपूर्व वज़ीर इंतिजामुद्दौला को भी मरवा दिया ताकि उसका शासन पूर्णतः निष्कटक हो जाये।

औरंगज़ेब के पुत्र कामबख़्श का पोता मुही-उल-मिल्लत जो वर्षों से क़ैदख़ाने में सड़ रहा था, क़ैद से मुक्त किया गया और शाहजहाँ द्वितीय के नाम से उसे सिंहासन पर बैठाकर सम्राट घोषित कर दिया गया। और इमादुलमुल्क अपने राजनीतिक दाँव-पेंचों में व्यस्त हो गया।

धान पहुँचे सरे मक़्तल कौन रोकेगा यहाँ!
क़त्ल करते हाथ तुमसे आज कह दूँ!

शाहज़ादा अली गौहर ने इलाहाबाद होते हुए बिहार की ओर प्रयाण किया तथा रास्ते में लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला की सहायता से काफ़ी सेना एकत्रित की और पटना पर घेरा डाला। इस घेरे में उसे पराजय हाथ लगी और बिहार विजय के सँजोये सपनों का संसार उसे तहस-नहस होता नज़र आया।

पटना से चलकर वह गोयोली नामक स्थान पर आया। यह स्थान वर्तमान मोन ईस्ट बैंक रेलवे स्टेशन से लगभग आठ किलोमीटर है।

बिहार में दिसंबर के अंत में ठंड काफ़ी ज़ोर पर थी। शाहज़ादे के शिविर लगे हुए थे जैसे गोयोली में एक नगर की सृष्टि हो गयी हो, रातों-रात। चारों ओर हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, सैनिकों का स्वतंत्रता से विचरण, गपशप, जलते हुए अस्थाई चूल्हे, जानवरों के लिए दाना-रातब आदि का वितरण—भारी चहल-पहल थी। कई मील तक शिविर लगे थे तथा शाम होते ही असंख्य मशालें, मोमबत्तियाँ और दीपक प्रज्वलित हुए तो लगा सारा आकाश ही ज़मीन पर अवतरित हो गया हो। सैनिक भोजन करके अलावों के सहारे जहाँ-तहाँ बैठे वार्तालाप में तल्लीन थे।

मजूर अली घूमता हुआ एक अलाव के पास पहुँचा और खड़ा होकर सैनिकों को संबोधित करता हुआ बोला

'कौन जवान दिल्ली जाना चाहेगा?' यह सभी सैनिक दिल्ली या आस-पास के थे।

तीन-चार सिपाही अचानक उछलकर खड़े हो गये और लगभग एक साथ बोल पड़े, 'हुजूर मैं···मैं···मैं।' कुछ और सैनिकों में जब यह बात फैली तथा समझ में आयी तो लगभग 50 जवान मजूर को घेरे हुए दिल्ली जाने के लिए आग्रह कर रहे थे। मजूर जरा मुस्कराकर बोला, 'ठहरो, ठहरो, दोस्तो, ऐसी भी क्या बेताबी, जरा सोचने-समझने तो दो। दिल्ली किसे याद नहीं आती, मुझे ही देखो। वाल्दा फ़ालिज की शिकार, वालिद जईफ़ी से परेशान और छोटा भाई है कि आवारागर्दी से ही फ़ुरसत नहीं।'

'हुजूर हमारा ख़याल रखियेगा।' एक साथ कई आवाजें रात की नीरवता में खो गयी।

'अज़ीम खाँ, अनवर, राजाराम, तुम तीनों मेरे साथ आओ।' कहकर मजूर अली एक ओर अँधेरे में चल दिया। उसके पीछे ही उक्त तीनों नायक भी बिजली की तेजी से चल पड़े और चारों अंधकार में विलीन हो गये। शेष सैनिक ललचायी नजरों से उसी दिशा में देखते रहे जैसे वहीं उनकी दिल्ली हो और अपने घर, बूढ़े माँ, बाप, बीवी और बच्चों की मधुर-स्मृति में खो गये। खड्गसिंह भी अधेड़ हो चला था, हिसाब लगाने लगा कि उसकी आठ वर्ष की लड़की अब ग्यारहवें में प्रवेश कर रही होगी और शादी के मंसूबे बनाने लगा।

मजूर काफ़ी देर तक तीनों सैनिकों से वार्तालाप में व्यस्त रहा—उन्हें ऊँच-नीच समझाने के बाद उनकी शंकाओं का निवारण किया और चल दिया। तीनों नायकों को अनेक लोगों ने घेर लिया और अधीर उत्सुकता से पूछने लगे कि क्या तय हुआ। बच्चों के अप्रत्याशित प्रश्नों का उत्तर न दे सकने की स्थिति में जिस तरह बड़े लोग गंभीर मुद्रा बना लेते हैं वही मुद्रा उन नायकों ने बनायी और अपने खेमों में घुस गये। शेष सिपाही उन खेमों की तरफ़ कुछ आशा के चिह्न खोज पाने के लिए देखते रह गये।

तीनों नायकों को मंजूर ने बताया था कि उन्हें 25-25 सिपाहियों की टुकड़ी लेकर दिल्ली तक जाना था, राह में इलाहाबाद भी रुकना था। लौटते समय जो 2-4 लड़कियाँ साथ आयेंगी उनकी सुरक्षा का भार इन पर होगा। इस टोली का मुखिया नूरे खाँ होगा, नूरे के साथ महमूद, अब्दुल अजीज और इफ्तिकार होंगे। शेष काम नूरे खाँ और उसके तीनों साथी कर लेंगे। नायक लोगों को मंजूर ने यह स्वतंत्रता दे दी थी कि वह अपनी पल्टन की टुकड़ी के लिए कोई से भी 25 आदमियों को चुन लें। तीनों नायक आपस में सलाह-मशविरा करके 25-25 आदमियों की सूची बनाने लगे। उनके शिविर के इर्द-गिर्द मनचले सिपाही छुपकर टोह लगाने में व्यस्त थे कि उनका नाम आयेगा या नहीं। रात्रि का एक पहर बीत चुका था।

रात्रि अभी हुई ही थी कि शाहज़ादे अली गौहर ने सुराही की तरफ़ इशारा किया और कनीज़ ने प्याले में मदिरा उड़ेल दी। मदिरा उड़ेलने में आज पहली बार उसने सकीना को ग़ौर से देखा और सोचने लगा, 'अरे यह तो जवान हो चली, क्या ग़ज़ब का शबाब[1] फूट रहा है, गुलाबी रुख़सार,[2] दावत देते होठों पर यह तबस्सुम,[3] नज़रों में यह अदा, कभी आज तक मैंने गौर नहीं की इस तरफ !'

फिर बोला, 'सकीना।'

'जी आलीजाह।'

'तुम कभी पीती हो?'

'जहाँपनाह पानी तो हर वक़्त पीती हूँ, गुस्ताख़ी मुआफ़ करें, हुज़ूर, बग़ैर पिये कौन ज़िंदा रह सकता है!' उसने भोलेपन से कहा।

'पानी नहीं, ये।' प्याले की तरफ इशारा करते हुए शाहज़ादे ने कहा।

'उफ़ हुज़ूर! नहीं', कहते-कहते उसको हँसी आ गयी और गुलाबी कपोल शर्म से गहरे गुलाबी हो गये—अधिक हँसना भी तो गुस्ताख़ी होती अतः वह झट से दूसरे कक्ष में जाकर अपनी हँसी पर क़ाबू करने का प्रयत्न

1. यौवन 2. गाल 3. मुस्कराहट

करने लगी। वह सोच भी नहीं सकती थी कि शाहज़ादा उससे इतना खुल-कर शराब के बारे में कह देंगे। गालों की लालिमा रह-रहकर और बढ़ रही थी जैसे कहीं रंग की पोटली को छूकर कोई तरल पदार्थ उसके कपोलों में एकत्रित होता जा रहा हो। वह ठीक से सँभल भी न पाती थी कि शाह-ज़ादे ने ताली बजाई और वह अपनी पोशाक को व्यवस्थित करती हुई सम्मुख उपस्थित हो गयी। शाहज़ादे ने कड़ककर पूछा, 'इतनी हँसी की क्या बात थी !'

'जी आलीजाह···' वह एक अँगूठे से दूसरे अँगूठे का नाखून कुरेदती हुई उन्हीं पर अपनी दृष्टि केन्द्रित किये हुए थी।

'जी आलीजाह क्या ? जवाब दो।'

'हुज़ूर गुस्ताख़ी मुआफ करें, क़नीज़ से एक अहम गलती हो गयी है।'

'कौन-सी ग़लती ?' शाहज़ादे ने त्योरियां चढ़ाकर पूछा।

'यही हँसने की !'

'हँसने—की—ग-ल-ती !' एक-एक अक्षर पर जोर देते हुए शाहज़ादे ने मुँह चिढ़ाया।

'जी आलीजाह, मुआफी की इल्तिजा करती है बंदी।'

'मुआफ़ तो करेंगे मगर गलती क्यों हुई ?'

'हुज़ूर···।'

'क्या हुज़ूर ? साफ क्यों नहीं बोलती ?'

'हुज़ूर लगता है क़ुसूर मुआफ़ी के क़ाबिल नहीं, क़नीज़ को सज़ा का हुक्म अता फ़रमाया जाये' और उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से मोती झड़ने लगे।

'मुआफ भी किया जायेगा और सज़ा भी दी जायेगी।'

'जी आलीज़ाह ?' और प्रश्नवाचक दृष्टि से उसने अपने डबडबाये नेत्र ऊपर उठाये जैसे किसी आफ़त से राहत पाने वाली हो।

'तुझे मालूम है कि हमारे सामने हंसने की एक बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ती है।'

'जी आलीजाह, लेकिन यह लौंडी किस काबिल है और वली अहद हिंदुस्तान को कुछ भी चुका सकने की क्या हस्ती रखती है, हुज़ूर ?'

'हस्ती की बात छोड़ मगर तुझे सजा जरूर मिलेगी—यह सजा ही क़ीमत होगी तेरी गलती की।'

'आलीजाह !···' कांप गयी सकीना—कुछ कहने को होंठ हिले लेकिन बोल नहीं फूटे। सोचने लगी कि शायद फांसी पर लटकाया जायेगा उसे, जोहरा की तरह। जोहरा ने भी तो गजब कर दिया था। शाहजादे के सामने खिलखिलाकर हंस पड़ी और हँसते-हँसते दोहरी हो गयी। लेकिन मैं तो फौरन अंदर चली गयी थी—फिर शाहजादे ने कहा भी तो है कि मुआफ़ भी किया जायेगा और सजा भी मिलेगी। शायद कोड़ों की सजा मिले—एक झुरझुरी-सी उठी उसके बदन में और वह पत्ते की तरह कांपने लगी। वह सब-कुछ पलक झपकते सोच गयी। 'कोड़ों से बेहतर तो फांसी का फंदा है—आंखें बाहर निकली, गर्दन लम्बी हुई और सब-कुछ ख़त्म।'

और उसी समय शाहजादे ने चुप्पी तोड़ी, 'सकीना, तुम्हें आज इसी खेमे में क़ैद रहना पड़ेगा—समझी !'

राहत की सांस लेती हुई सकीना बोली, 'हुक्म हुजूर !' वह कुछ समझ नहीं पायी।

शाहजादे ने ताली बजाई—और सकीना ने कहा, 'हुजूर हुक्म दीजिये बंदी हाजिर है।'

'नहीं, हम नाजो को बुला रहे हैं।'

'सकीना जाने लगी तो शाहजादे ने डपटकर कहा, 'कहां जा रही हो तुम्हें सजा जो मिली है।'

इतने में एक कनीज हाजिर हुई और शाहजादे ने नाजो को तलब किया। उसे अंदर के कक्ष में ले जाकर फुसफुसाकर कुछ हिदायतें दीं और सकीना को हुक्म दिया, 'जाओ नाजो के साथ।'

सकीना यंत्रवत नाजो के साथ चल दी। नाजो की आंखें फटी-की-फटी रह गयी। वह शाहजादे की खास खादिमा थी और उसका कर्तव्य था शाहजादे के शयन-कक्ष में भेजने से पूर्व हर कुमारी की ऊपर से नीचे तक जांच करना। मुंह सूंघकर देखना कि कहीं लहसुन वगैरह की दुर्गंध तो नहीं आ रही—यदि आ रही है तो मुश्क व अम्बर के इत्र से कुल्ला कराना। नहलाकर शरीर का हर अवयव पूर्णरूपेण विभिन्न सुगंधों से सुवासित करना

और उपयुक्त वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर युवराज के पास भेजना—लेकिन उसका भेजा तो इस बात से ठनक रहा था कि आज शाहज़ादे को क्या सूझी कि एक लौंडी पर फ़िदा हो गये। आज तक किसी कनीज को यह सम्मान नहीं मिला। सकीना को जब कुछ समझ में आया तो वह भी सन्न-सी रह गयी। कहां वह कहाँ वली अहद—उसने तो कभी वली अहद को नज़र भरके देखने तक की भी जुरअत[1] नहीं की थी। वह सोच रही थी, 'कहीं मेरे साथ कोई मज़ाक तो नहीं किया जा रहा है—क्या भरोसा इस शाही खानदान का—ईद के बकरे की तरह अभी सजाया अभी हलाल' जब इत्र मिले पानी के देग में उसे नाजो ने बैठने को कहा। हाँ सकीना—हलाल तो तुम्हें होना ही है, लेकिन बकरे की तरह नहीं नमक की तरह। जब नमक हलाल होता है तो दोनों पक्षों को अवर्णनीय सुख मिलता है। 'कितने खूबसूरत होंगे वे, मैंने तो एक दिन सिर्फ उनके हाथ और कलाइयाँ देखे थे'—और वह उमंग भरी आशा-निराशा में डूबने-उतराने लगी।

शाहज़ादा बेताब हो रहा था, 'उफ्फ यह नाजो भी बुढ़िया गयी है अब, कितनी देर लगा दी' कि घुंघरुओं की हलकी-सी छम-छम ने उसे चौंका दिया। पूरा कमरा मुश्क व हिना में महकने लगा। 'नाजो मौसम का खूब ख़्याल रखती है। इस कड़ाके की ठंड में भी कितनी गर्माहट हो गयी इस खुशबू से।' शाहज़ादे ने सोचा और जब उसने सकीना पर नज़र डाली तो एकटक देखता ही रह गया—'यह वही सकीना है या कोई हूरज़ाद'[2] उसने सोचा। 'यह तबस्सुम यह अदाएँ शोखियाँ फिर ये शबाब, जो भी देखेगा तुझे आशिक तेरा बन जायेगा।' अर्ध-रात्रि बीते कुछ देर हो चुकी थी और सकीना को अपने कुसूर की सज़ा मिलने लगी थी—सज़ा भी इतनी मधुर हो सकती है यह सकीना ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। निहाल हो गया था शाहज़ादा, आख़िर उसकी पसंद इतनी श्रेष्ठ जो निकली थी। वह सकीना के तथा सकीना उसके ख़यालों में डूबे थे। सकीना ने जैसे अपने जीवन में इतना खूबसूरत नौजवान दूसरा नहीं देखा था। शाहज़ादे ने अचानक करवट बदली और सकीना को फिर अपने अंक में खींच लिया कि

---

1. दुस्साहस 2. परी की पुत्री

उसी समय कक्ष में लगी घंटी ने हल्की-सी ध्वनि की। शाहज़ादा पलंग से उचटकर जल्दी-जल्दी कपड़े पहिनने लगा और तलवार हाथ में लेकर फ़ौरन ख़ेमे के प्रवेश द्वार पर आ गया। शयन-कक्ष की यह घंटी बजाने का अधिकार केवल मंज़ूर अली को था और वह भी केवल अत्यंत आवश्यकता के समय।

'कहो मंज़ूर क्या है?' ख़ुमार भरी आँखों से युवराज ने प्रश्न किया।

'आलीजाह, दिल्ली से कुछ सवार आये हैं जिनका सरदार रहमत ख़ाँ है, हुज़ूर को कोई बहुत जरूरी ख़त पेश करना चाहते हैं, मुझे देने और आगे कुछ बताने से इन्कार कर दिया है और कहा है कि ख़त वली अहद को अभी देना निहायत जरूरी है।' मंज़ूर एक साँस में बोल गया।

'हमारी नशिस्त में भेजो रहमत ख़ाँ को हम अभी पहुँचते हैं।' और मंज़ूर अदृश्य हो गया।

नशिस्त में बैठा युवराज पत्र पढ़ने में व्यस्त था, एक बार, दो बार, तीन बार और माथा पकड़कर शून्य में ताकने लगा। 'तो कमबख़्त इमाद ने अब्बा हुज़ूर को भी नहीं बख्शा—गीदड़ ने शेर को फाड़ खाया—हम बद-किस्मत शाहंशाह-ए-हिंदोस्तान।' युवराज बुदबुदा रहा था। ठीक है अज़ीज़ अब्बा जान, आपके दीदार तक नहीं बदे थे इस बदबख़्त को। आपने मुझे उस साँप के बच्चे से बचाकर अपनी कुर्बानी दे दी।'—और एकबारगी फफककर रो पड़ा—रहमत ख़ाँ ने दिलासा दिया, 'आलीजाह, यह राह तो एक-न-एक दिन सभी को पकड़नी पड़ती है; किस्मत का लिखा कौन मिटा सकता है।' अब इस अलम से फुरसत पाकर हुज़ूर तख़्त नशीनी की तैयारी कीजियेगा क्योंकि वली अहद को ऐसे मौक़े पर मातम मनाने की इजाज़त नहीं। उन्हें तो तख़्तनशी होकर ख़ुशियाँ व जश्न मनाना लाज़िम है।' यह सुनकर शाहज़ादा एकदम चौंका और उसके हृदय में वास्तव में नयी ख़ुशियों का संचार होने लगा। 'ठीक कहते हो सरदार रहमत—शाहज़ादों को एक आँख से रोना, दूसरी से हँसना या ख़ुशियाँ मनाना ही लाज़िम है—मंज़ूर को मेरे पास भेजो।' उसने मंज़ूर को हिदायत दी कि सुबह तख़्तनशीनी के लिए दरबार होगा जिसके लिए बाक़ायदा इंतज़ाम किया जाये और जश्न मनाये जायें। सारा मुग़ल शिविर सोते से जाग गया

और एक अजीब-सी प्रसन्नता में ओत-प्रोत हो गया। ख़बर जंगल में लगी आग की तरह फैल गयी थी।

महत्वपूर्ण अमीर उमराव रात में ही नशिश्त में पहुँचकर युवराज को मुबारकबाद देने लगे और इसी तरह दिन निकल आया। अली गौहर के दिल में अनेकों उमंगें उठ रही थीं और वह तरह-तरह की योजनाएँ बना रहा था।

सुबह होते ही कई ज्योतिषियों को बुलाया गया और शुभ घड़ी-मुहूर्त निकलवाया गया। सूर्योदय से चार घंटे बाद मुहूर्त निकला। एक बहुत बड़े शामियाने में ईंटों से एक चबूतरा तैयार कराया गया और उस पर एक तख़्त रखा गया जिसे क़ालीनों से अच्छी तरह सुसज्जित किया गया। वली अहद ने रंग-बिरंगी ज़री की पोशाक पहनी और तख़्त पर बैठकर स्वयं को शाह आलम सानी[1] नाम से सम्राट घोषित किया। साथ ही नवाब शुजाउद्दौला को अपना वज़ीर घोषित करके उसे आठ हज़ार ज़ात और आठ हज़ार सवार का मनसब प्रदान किया। तख़्तनशी होते ही सरदार रहमत ख़ाँ ने उसे भूतपूर्व सम्राट आलमगीर की कटार पेश की जिसे कबूल कर शाहआलम ने यथास्थान अपनी कमर में सुशोभित कर लिया। मंज़ूर अली ख़ाँ को अमीर की उपाधि दी गयी और उसे सम्राट ने अपना नाज़िर नियुक्त किया। सभी ख़ास-ख़ास लोगों को तरह-तरह के इनाम दिये गये और रुपयों की बखेर की गयी जिसे सिपाहियों ने लूटा। नफ़ीरची शहनाई बजा रहे थे, नगाड़ों पर चोट हो रही थी—नौबत बज रही थी। इधर उपस्थित सरदारों ने अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार सम्राट को नज़रें पेश कीं जिन्हें सम्राट ने स्वीकार किया।

दिन भर जश्न मने, दावतें उड़ीं। फ़क़ीर और निराश्रितों को दान दिया गया और रात को रंगीन आतिशबाज़ी छोड़ी गयी और पूरा मुग़ल शिविर रंगबिरंगी रोशनियों से नयी दुल्हन की तरह जगमगा उठा। उस दिन सबसे बड़ा इनाम मिला सकीना को। बेगम की उपाधि के साथ एक हज़ार अशर्फ़ियाँ। आखिर वही तो उसकी अंकशायिनी थी इस शुभसमाचार

1. शाहआलम

के समय। कल जो एक छोटी-सी लौंडी थी आज अधिकारपूर्ण बेगम हो गयी। एक ही रात ने उसको कहाँ-से-कहाँ चढ़ा दिया था। कई दिनों तक जोश के साथ जश्न मनते रहे और इस तरह अपने पिता की मृत्यु के इक्कीस दिन बाद युवराज सम्राट बन गया था। सकीना बेगम फूली नहीं समा रही थी। उसकी खुशियाँ वर्णन नहीं अपितु कल्पना से ही समझी जा सकती हैं।

सम्राट शाहआलम ने एक बार फिर बिहार पर विजय प्राप्त करने की योजना बनायी और पटना के नायब सूबेदार राजा रामनारायण पर घेरा डाला लेकिन कैप्टन नौक्स के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ठीक उस समय आ पहुँची जब सम्राट को विजयश्री प्राप्त होने वाली थी। घमासान युद्ध हुआ—मुग़ल योद्धाओं ने काफ़ी वीरता का प्रदर्शन किया किंतु चुस्त तथा अनुशासित अंग्रेजी सेना के सामने उनकी एक न चली और सम्राट को घेरा उठा लेने के लिए विवश होना पड़ा। यही नहीं सम्राट को यमुना के किनारे इलाहाबाद से लगभग 35 मील उत्तर-पश्चिम में पहुँचकर डेरा डालना पड़ा। यह मई का प्रारंभ था, गर्मी तेजी से बढ़ रही थी तथा उसके बाद वर्षा ऋतु भी लड़ाई के लिए अनुकूल नहीं थी अतः बादशाह अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा में यहीं दिसंबर अंत तक पड़ा रहा और भाँति-भाँति की योजनाएँ बनाता रहा तथा शुजाउद्दौला, फ्रांसीसियों तथा मराठाओं से संपर्क स्थापित करता रहा।

दिल्ली के लाल किले पर मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ का आधिपत्य बड़ी सरलता से हो गया। अहमदशाह दुर्रानी ने अपने पिछले हमले के समय दिल्ली विजय कर एक सरदार याकूब अली खाँ के हाथ में उसकी व्यवस्था सौंप दी थी। मराठाओं की सेना के आगमन का समाचार सुनते ही दुर्रानी के कर्मचारी भाग खड़े हुए और याकूब अली खाँ ने भी थोड़े विरोध के बाद समर्पण कर दिया। अतः भाऊ को दिल्ली विजय में कोई कठिनाई नहीं हुई और वह शीघ्र लाल क़िले पर जा धमका। उसके साथ अनेक मराठा सरदार थे, अन्य राजा-महाराजा भी। मल्हारराव होलकर, महादजी सिंधिया और भरतपुर का राजा सूरजमल आदि। बालाजी राव

पेशवा का पुत्र तथा युवराज विश्वासराव और इमादुल्मुल्क भी उसके साथ थे।

क़िले में प्रवेश करने के बाद सर्वप्रथम भाऊ ने नाममात्र के सम्राट शाहजहाँ द्वितीय को गद्दी से हटाकर शाहआलम द्वितीय को सम्राट घोषित किया तथा शाहज़ादा जवानबख़्त जो शाहआलम का पुत्र था, को युवराज घोषित कर अपने पिता की अनुपस्थिति में राज्य की व्यवस्था का भार सौंपा।

भाऊ एक सच्चरित्र, बलिष्ठ और वीर नवयुवक था। उसने कई युद्ध-क्षेत्रों में अपने खाँडे का जौहर दिखाया था किंतु साथ ही वह अभिमानी भी था तथा अपने साथ के राजा-रहीसों से वार्तालाप के दौरान सामान्य शिष्टाचार का भी ध्यान नहीं रखता था। अहमद शाह पंजाब से दिल्ली की ओर बढ़ा था तथा अपने सहायक रुहेलखंड के सरदारों से संपर्क बनाये रखने के लिए यमुना पार सिकंदराबाद में ठहरा हुआ था। रुहेले सरदार नवाब सैयद सादुल्ला खाँ, नवाब फैजुल्ला खाँ, हाफ़िज रहमत खाँ, दुंदे खाँ तथा नजीबुद्दौला आदि सभी उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत थे तथा हाफ़िज रहमत खाँ ने नवाब शुजाउद्दौला को भी इस्लाम के नाम पर शाह दुर्रानी की तरफ़ फोड़ लिया था। जब लाल क़िले में भाऊ ने युद्ध की योजना पर चर्चा की तो सभी प्रमुख मराठे तथा अन्य सरदार उपस्थित थे। भाऊ ने एक जोशपूर्ण भाषण दिया और सभा की कार्रवाई शुरू हुई।

'वीर योद्धाओ, यह हमारे देश के लिए संकट की घड़ी है लेकिन साथ ही ऐसा सुअवसर भी, जबकि हम सदियों से चले आ रहे विदेशी शासन के शिकंजे को पल भर में तोड-मरोडकर फेंक सकते है। हमें जहाँ एक ओर देश के कट्टर शत्रु अहमदशाह दुर्रानी से लोहा लेना है वहीं देश के विभीषण रुहेलों के दाँत भी खट्टे करने हैं जिन्होंने ऐसे नाजुक अवसर पर शाह को बुलाया है और उसकी मदद करने को उद्यत हैं। हमें कुछ ऐसी युद्ध नीति अपनानी है कि विजयश्री हमारे हाथ लगे जिसमें कि मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है। उपस्थित सरदारों में से किसी को कुछ कहना हो तो बेखटके कहे।'

बात समाप्त होते ही जाट राजा सूरजमल ने कहा, 'श्रीमंत, मेरे

विचार से आप अपनी सेना का भारी माल-असबाब मेरे राज्य में डीग या कुम्हेर के किले मे छोड दें और पैदल सेना को भी वही भेज दें। डीग और कुम्हेर के किले मजबूत होने के कारण असबाब की सुरक्षा भी रहेगी और पैदल सेना युद्ध में हमारी कुमक के लिए सुरक्षित भी रहेगी। औरतों और बच्चों को भी वहीं ठहरा दें।'

वह और कुछ कह पाता इससे पूर्व ही भाऊ लगभग झिड़कते हुए बोला, 'सूरजमल, तू एक छोटा-सा जमींदार है तुझे युद्ध नीति का ज्ञान कहाँ? मुल्कों के इंतज़ाम के बारे में तू क्या जाने?'

इस अप्रत्याशित आलोचना से सूरजमल खून का घूँट पीकर रह गया यद्यपि प्रकट मे कुछ नहीं बोला। वह लगभग 20 हज़ार योद्धाओं को लेकर भाऊ के साथ सम्मिलित हुआ था। उसकी सलाह बहुत समयोचित थी तथा अन्य मराठे सरदार भी इससे सहमत थे किंतु भाऊ की तुनकमिजाजी के कारण सब चुप रहे।

मल्हारराव होलकर जो काफ़ी अनुभवी एवं वृद्ध था कहने लगा, 'मेरे विचार से हमें खुले मैदान मे आमने-सामने न लड़कर शाह की सेना पर छुटपुट हमले करते रहना चाहिए, उसकी जगह-जगह से आने वाली रसद बंद करने का प्रयत्न करना चाहिए और अधिक-से-अधिक समय ख़राब करके शाह को लंबे अरसे तक रुके रहने के लिए बाध्य कर देना चाहिए ताकि उसकी सेना ऊबकर उसे लौट जाने पर विवश करे और हम पुनः देश पर देशी शासन स्थापित करें। विजयश्री हमारी होगी।'

भाऊ ने तमककर कहा, 'लो यह भी कोई विजय मे विजय है! बिना आमने-सामने शत्रु से लोहा लिए भी कोई विजय का गर्व कर सकता है। छिः, दादा तो अब सठिया गये हैं, बुढापा जो है! क्या कमाल की राय दी है!'

ग़ाजी उद्दीन इमादुल्मुल्क भी भाऊ के साथ था। वह शाह आलम को सम्राट बनाये जाने का घोर विरोधी था किंतु भाऊ ने उसकी राय की ज़रा भी पर्वा नहीं की अतः वह भी रुष्ट हो गया।

राजा सूरजमल और इमादुल्मुल्क तरह-तरह के बहाने करके भाऊ से विदाई की आज्ञा लेकर दिल्ली से कुछ दूरी पर स्थित बल्लभगढ़ मे, जो

जाटों का क़िला था, जाकर बैठ गये और युद्ध से बिल्कुल उपेक्षा का दृष्टिकोण अपना लिया।

लाल किले में दो घुड़सवार शीघ्र प्रवेश के लिए पहरेदारों से उलझ रहे थे, 'हमें भाऊ को आवश्यक संदेश देना है!'

'इसका क्या सबूत कि तुम दुश्मन के गुप्तचर नहीं हो!'

'सबूत! सबूत क्या?'

'आज का गोपनीय शब्द बताओ!'

'लेकिन हम तो कई दिन से बाहर थे!'

'होंगे बाहर, लेकिन बिना गुप्त शब्द बताये किसी को अंदर जाने की आज्ञा नहीं, हमें भाऊ फाड़ खायेंगे।'

'तो लो इतना तो कर दो कि यह नाम व मुहर का कागज भाऊ या होलकर को दिखा दो, अगर वह आज्ञा दें तो हमें जाने देना।'

'अच्छा, यह तो हम कर सकते हैं।' एक पहरेदार ने उन्हें आशान्वित किया और क़िले के अंदर चला गया।

लगभग आधा घंटे में वह लौटा और दोनों घुड़सवारों को अंदर चले जाने दिया।

देखते ही भाऊ ने कहा, 'कहो बालाराव क्या ख़बर लाये?'

'अन्नदाता, ख़बर कुछ अच्छी नहीं है।' एक सवार ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

'जल्दी बताओ क्या है।' अधीर भाऊ ने आज्ञा दी।

'महाराज, शाह दुर्रानी सिकंदराबाद से चलकर यमुना के किनारे चक्कर लगा रहा है।'

'यमुना पार कर ली है?' भाऊ के जैसे बिजली का झटका लग गया हो।

'नहीं, अन्नदाता पार तो नहीं की लेकिन शायद कर लें।'

भाऊ बुदबुदाता रहा, 'इतनी गहरी यमुना है कैसे पार कर लेगा! उसका दादा भी नहीं कर सकता।'

अहमदशाह दुर्रानी ने बरसात के बाद स्थान-स्थान से यमुना की गहराई की जाँच करायी और पता लगा कि कई जगह पैदल तथा कई स्थानों पर

तैरकर पार करने की गुंजाइश है और उसने अपनी सेना को शीघ्र बागपत की ओर बढ़ने का निर्देश दिया। बागपत दिल्ली से करीब 25 मील दूर है।

यह अप्रत्याशित ख़बर सुनकर भाऊ ने तुरंत जोखिम का डंका बजवा दिया और तमाम प्रमुख सैनिकों को इकट्ठा कर दिल्ली से पंजाब में सरहिंद की तरफ़ कूच करने का आदेश दिया। उसे पूर्ण विश्वास था कि दुर्रानी सेना किसी भी तरह इस समय यमुना पार नहीं कर सकती—फिर भी वह सरहिंद को तुरंत विजय कर लेना चाहता था। वह वायुवेग से अपनी सेना के साथ कर्नाल से छह मील उत्तर की ओर कुंजपुर की तरफ़ बढ़ा और वहाँ के किले पर अधिकार कर लिया। अब वह सरहिंद की ओर अग्रसर हुआ और रास्ते में गाँवों को लूटती-खसोटती उसकी सेना बढ़ती गयी।

जैसे ही अहमदशाह दुर्रानी के गुप्तचरों ने मराठाओं की कूच के विषय में समाचार दिया उसने बागपत के समीप फैली अपनी सेना को तुरंत यमुना पार करने का आदेश दिया।

आदेश का पालन हुआ। अधिकांश सेना पार उतर गयी लेकिन इस जोखिम भरे काम में दुर्रानी के अनेक सैनिक यमुना में डूबकर मारे गये। भारी-भारी सामान और लगभग चालीस तोपें भी पार उतार दी गयीं। आगे बढ़े ही थे कि मराठों का पीछा करें किंतु मराठों को जैसे ही पता चला कि दुर्रानी-सेना यमुना पार उतर आयी है, सदाशिवराव भाऊ ने अपनी फ़ौज को पानीपत की ओर चलकर एकत्रित होने की आज्ञा दी। जब दुर्रानी ने यह सुना तो वह भी पानीपत के मैदान में अपनी सेना के साथ आ डटा और यहीं रुहेले सरदार नजीबुद्दौला, सैयद फैजुल्ला खाँ, हाफ़िज़ रहमत खाँ और दुंदे खाँ वगैरह सब अपनी-अपनी फ़ौजों के उससे आ मिले। शुजाउद्दौला वहाँ पहले से ही साथ था।

मराठों ने सैकड़ों तोपें व्यवस्थित करके मोर्चाबंदी की और चौड़ी गहरी खाइयाँ अपने बचाव के लिए खोद लीं। उनके साथ तोपख़ाने का अधिकारी इब्राहीम गार्दी भी था जिसे फ्रांसीसियों की सेवा में रहने के कारण युद्ध का तथा विशेष रूप से तोपों की लड़ाई का काफ़ी अनुभव था। मराठों के पास बानों का भी ढेर था और यह लोग बानों से लड़ने में बहुत

माहिर थे। यह बान दुश्मन की ओर फेंके जाते और आग उगलते थे। पूरी तैयारी करने पर भी मराठे युद्ध शुरू न कर सके।

इधर अब्दाली ने रुहेले सरदारों को हरावल (अग्रिम पंक्ति) में रखा, उसके पीछे शुजाउद्दौला तथा उसके पीछे अहमदशाह दुर्रानी मय अपने वज़ीर शाहवली खाँ के रहा। चारों ओर मोर्चाबंदी करके सुरक्षा के लिए खाइयाँ खोद ली गयीं।

सभी मराठे सरदार मय अपनी सेना के एक ही जगह एकत्रित हो गये थे। दुर्रानी ने सबसे पहला काम यह किया कि मराठों के लश्कर को पहुँचाई जाने वाली रसद के लिए विभिन्न नाकों व रास्तों पर अपने सैनिक लगा दिये जो आने वाली रसद को रास्ते में ही लूट लेते थे और लाने वालों को अधिकतर मार गिराते थे।

कुछ दिनों बाद मराठा सैनिक दाने-दाने को तरस गये और भूखों मरने लगे। अभी युद्ध शुरू करने की दोनों में हिम्मत नहीं थी। दुर्रानी की सेना संख्या में कम थी। लगभग चालीस-पचास हज़ार। जबकि मराठा सेना की संख्या लाखों में थी तथा उसके पास सैकड़ों बहुत बढ़िया तोपें थीं जिनसे किलों की दीवारों तक को उड़ाया जा सकता था। अत: दुर्रानी ने मराठों की ओर से पहल की प्रतीक्षा करना ही उचित समझा।

छुटपुट वारदातें होती रहीं किंतु एक दिन इब्राहीम गार्दी ने रात्रि के समय दुर्रानी सेना पर अचानक हमला करने की योजना बनायी। जनवरी का महीना था तथा दुर्रानी के सैनिक अलाव जलाकर निश्चित ताप रहे थे। तभी कुछ घोड़ों की टापों की ध्वनि सुनायी दी और एकदम ख़बर फैल गयी कि मराठे चढ़ाई करने आ रहे हैं। शाह का तोपखाना तैयार था। अधिकांश में गोले भरे थे, तथा चद्दरें चढ़ी हुई थीं। अतः दुर्रानी सैनिकों ने झट से अलावों में से ठीकरों में आग भरकर तोपों के प्यालों में डाल दी और भारी गर्जना के साथ एक साथ सभी तोपें चलीं। अधिकांश मराठे मारे गये तथा कुछ भाग गये।

मराठा सेना को भूखों मरते लगभग दो मास हो गये थे अत: जब सैनिकों का मनोबल टूट गया तो मकर संक्रांति के दिन सुबह बड़े-बड़े सेना-नायक भाऊ के पास पहुँचे—भाऊ ने चौंककर पूछा, 'क्यों, क्या बात है?'

'अन्नदाता इस तरह भूखे एड़ी रगड़-रगड़कर मर जाने से तो युद्ध मे लड़कर वीरगति पाना बेहतर है। अतः कृपा कर श्रीमंत युद्ध शुरू करने की आज्ञा दें।'

'युद्ध प्रारंभ करने की आज्ञा इस तरह नही दी जाती, उचित अवसर पर ही दी जायेगी।' सुनककर भाऊ ने कहा।

सैनिको का धैर्य टूट रहा था। एक बोला, 'श्रीमंत यदि आप सिपाहियो की दशा खुद देखें तो अवश्य युद्ध की आज्ञा देंगे।'

'कैसी दशा ? क्या कुछ दिनो भूखे नही रह सकते ?'

'कुछ दिनों नहो, अन्नदाता, अब दो महीने हो चले हैं।'

'दो महीने ?'

'जी, श्रीमत ने स्वयं कुछ नही खाया होगा लगभग एक सप्ताह से!'

'हाँ, ठीक कहते हो।' भाऊ के स्वर में निराशा थी।

कुछ अनुकूल रुख देखकर एक सेनानायक बोला, 'हजारों सैनिको से खड़ा नही हुआ जा रहा है और अधिकाश घोड़ो की लीद तक खा रहे हैं।'

'घोड़ों की लीद ?'

'हाँ श्रीमंत!' दूसरे नायक ने साहस करके कहा, 'घोड़ो की लीद, उबाले हुए चमड़े जो कमर पेटियो और टाँग के पट्टों मे से काटे जाते हैं।'

'उफ् ओह, तो युद्ध की घोषणा की जाये!' उसने आज्ञा दी।

तुरंत जुझारू बाजे बजने लगे और दोनो ओर से घमासान लड़ाई शुरू हो गयी। मराठे जो दो मास से भूखे मर रहे थे बहुत वीरता से लड़े किंतु दुर्रानी के युद्ध कौशल तथा उसके सैनिको की चपलता के आगे वे अधिक देर न ठहर सके और अहमदशाह की फ़ौजो ने उन्हें खदेड़ दिया। हजारों मराठे सैनिक पानीपत के मैदान में सदा के लिए सो गये। सदाशिवराव भाऊ का सिर काट लिया गया और उसकी लाश दो दिन बाद मिल सकी। पेशवा के पुत्र विश्वासराव ने युद्ध-क्षेत्र मे अद्‌भुत शौर्य प्रदर्शन किया और लड़ते-लड़ते मारा गया। यशवतराव, तिनकोजी सिंधिया, इब्राहीम खाँ गार्दी, शमशेर बहादुर, जनकोजी सिंधिया आदि बड़े-बड़े सेनानायक मारे गये। महादजी सिंधिया के पाँव में ऐसी गंभीर चोट लगी कि कभी ठीक न हो सकी। हजारों मराठे सर पर पैर रखकर अपनी जान बचाकर भाग खड़े

हुए। प्रमुख व्यक्तियों में केवल महादजी सिंधिया एवं मल्लारराव होलकर ही बचे थे। पानीपत के मैदान में इतने-चील, कौवे व गिद्ध मँडराने लगे कि दिन में भी अंधकार-सा हो गया।

अफ़ग़ानों ने मराठों के असंख्य घोड़े और ऊँट हथिया लिए और उनकी छावनी लूटने पर उन्हें अपार धनराशि प्राप्त हुई। औरतें व बच्चे बंदी बना लिए गये। मराठे जहाँ सींग समाये वहीं छुप गये या भाग गये। उत्तर भारत में लोग उनके नाम तक से डरते थे और घृणा भी करते थे अतः जिधर-जिधर ये लोग भागकर निकले, ग्रामीणों ने मार दिये या लूट लिए। इस समय उनकी ऐसी दयनीय दशा थी कि कई जगह उन्हें केवल औरतों ने ही लूट लिया।

इस तरह मराठे जो अब तक भारत के भाग्य विधाता थे तथा संपूर्ण देश में स्वदेशी शासन स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे तहस-नहस हो गये और देश के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। अंग्रेजों की प्रबलता बढ़ी और भारत पर उनके शासन का शिकंजा मज़बूती से कसता चला गया। सिंधिया ने ग्वालियर में, भोंसलों ने नागपुर में, होलकरों ने मालवा में तथा गायकवाड़ों ने बड़ौदा में यद्यपि अपनी छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कर ली तथापि उनकी एकरूपता सदैव के लिए समाप्त हो गयी और पेशवा का वर्चस्व संज्ञाहीन हो गया। सारा मराठा प्रदेश मातम में डूब गया। बड़े-बड़े योद्धाओं के मर जाने से भविष्य में भी मराठे शक्तिहीन ही रहे।

बल्लीमारान के एक मकान में नज़ीरुल हुसैन व उसके साथी गंजिफ़ा[1] खेल रहे थे। शराब के दौर भी चलने लगे।

'नज़ीर भाई तुम्हें हो क्या गया है? अरे एक-दो जाम तो लो।'

'अरे नहीं सुल्तान भाई, मैं नहीं ले सकता, मैंने तौबा कर ली है!'

'तौबा, अरे तौबा क्यों कर ली!' सुल्तान ने आश्चर्य से पूछा। नज़ीर कुछ बोलें उससे पूर्व ही अज़ीज़ बोला, 'अरे यार, जिसके पास मुजस्सिम

---

1. ताश की भाँति एक खेल

शराब हो उसे इसकी क्या जरूरत, इन्हें तो 24 घंटे सरूर रहता है— देखते नहीं इन्हें, क्या खोये-खोये से रहते हैं हजरत !'

नज़ीर ने उत्तर में एक गहरी निश्वास ली और अगला दाव चलने लगा।

'हाँ भई मुहब्बत बुरी बला है।' एक मित्र ने कहा।

'देखना थोड़े दिनों में हमारे नज़ीर भाई मजनूँ की शक्ल में नज़र आयेंगे।'

'अरे यार मजनूँ क्यों, उनकी लैला तो उनके पास ही है।'

'पास तो है मगर लात जो मारती है।'

'क्या बकवास लगा रखी है, कुछ और बात करो', नज़ीर ने प्यार से कहा।

'अखअह, अब तो भाई जान से उनके माशूक के बारे में जिक्र के भी हकदार नहीं रहे, ओफ्फ ओह, इतना तो यार हमारा भी हक़ है भावज पर !' —इफ़्तिकार हुसैन ने कहा।

'अरे यार क्यों ख़ामखाह जलाते हो भावज कहकर।'

'मियाँ जलने की क्या बात है, भावज तो बनेगी ही, आज नहीं तो कल, आख़िर और जायेगी कहाँ !' इफ़्तिकार ने कहा, 'यह तो मियाँ नाज़नीनों[1] के नखरे होते हैं—उनके इनकार में एक पोशीदा[2] इकरार होता है नज़ीर भाई।'

प्याले ख़ाली हो चुके थे अत: फिर से भरे जाने लगे लेकिन नज़ीरुल हुसैन को इफ़्तिकार की इस बात ने और भी विचारमग्न कर दिया। उसने कहा है न कि आख़िर और जायेगी कहाँ। नज़ीर वास्तव में मजनूँ बना जा रहा था। जिसके वस्त्रों पर एक धब्बा भी नज़र नहीं आता था वही आज मैले-कुचैले कपड़े पहने फिरता था—जुल्फ़ें शायद ही कभी सम्हालता हो। एक दिन उसके वालिद ने भी तो कहा था, 'नज़ीर यह तुम्हें क्या होता जा रहा है !' लेकिन नज़ीर इन सब बातों से बेख़बर सिर्फ़ रशीदन और रशीदन को ही अपनाने की फ़िक्र में रहता था। क्या उसकी मुहब्बत में कोई कमी

1. सुंदरियो 2. छुपा

'हाँ, यही तो मैंने कहा ।'

और अब्दुल्ला ने इजाजत ली।

नूरे खाँ शाहजादा अली गौहर के शिविर से चलकर हिंदुस्तान के कई प्रदेशों में घूमता-घामता अपनी टोली के साथ दिल्ली आ पहुँचा था। इलाहाबाद व काशी मे भी उसकी एक-दो जगह मुलाकात थी लेकिन इत्तफ़ाक की बात कि लोग नवाब शुजाउद्दौला की फ़ौज मे भर्ती होकर पहले ही दिल्ली रवाना हो चुके थे अतः कोई काम नही बन सका। आखिर शाही हरम में कोई ऐसी-वैसी औरतें तो पहुँचानी नही—चुना हुआ एकदम बेदाग माल चाहिए। अतः वह दिल्ली जा पहुँचा था और अपने स्थानीय प्रतिनिधि अब्दुल्ला को यह काम सौंपकर अपने परिवार, यार-दोस्तों मे व्यस्त हो गया था।

नज़ीरुल हुसैन अब्दुल्ला से भलीभाँति परिचित था तथा इन मामलों का रहस्य भी उससे छुपा नही था क्योंकि सुल्तान कई मौकों पर उसकी सहायता भी लेता था। अब्दुल्ला के आने से उसे पूरी तौर से ज्ञात हो गया कि नूरे खाँ की टोली आयी हुई है। वह नूरे खाँ और नाज़िर मंजूर अली खाँ से भी भलीभाँति परिचित था। बड़े घर का बेटा जो था।

सुल्तान से विदा लेकर नज़ीर अपनी हवेली पर आया और जल्दी-जल्दी भोजन करके सीधा रशीदन के पास पहुँचा। रशीदन के कक्ष का ताला खोला और भोजन सामने लगा दिया। वह बैठी कुछ सोच रही थी।

'रशीदा, रशीदो, तुम इतनी नफ़रत क्यों करती हो मुझसे।'

'मुझे किसी से कोई नफरत नही।'

'तो क्यों नही राज़ी होती शादी के लिए।'

'तुमने मेरे घर को जो उजाड़ा है, हजार दफ़ा कह दिया तुम खूनी हो, तुम क़ातिल हो।' वह बिफर रही थी।

'तो तुम मुझसे नफ़रत ही तो करती हो!' निराशा से नज़ीर ने कहा।

'नही, नही किसी से नफ़रत करना भी तो उससे एक तरह का तअल्लुक़[1] है—मैं तुमसे किसी तरह का कोई ताल्लुक नही रखना चाहती।'

---

1. संबंध

'रशीदन, गलती से मैं उस गिरोह में शरीक हो गया था, वैसे तो मैंने किसी को आज तक कत्ल नहीं किया।'

'कातिलों के गिरोह में शामिल हर शख्श क़ातिल होता है—पता नहीं तुमने भी इसी तरह कितने क़त्ल नहीं किये होंगे—बराय मेहरबानी मुझे रिहा कर दो।'

'रशीदन मैं तुम्हें रिहा तो कर दूँ—करने को भी तैयार हूँ, आज ही, अभी, लेकिन कहाँ जाओगी तुम ?'

'क्या तुमने सारी खुदाई का ठेका ले रखा है ? जहाँ अल्ला मियाँ और मेरी बदकिस्मती ले जायेगी वहीं चली जाऊँगी, मरना तो एक बार ही है मर जाऊँगी—इससे ज्यादा तो कुछ नहीं हो सकता ? बस मुझे रिहा कर दो—सिर्फ इस घुटन से मुझे निजात चाहिए।'

'रशीदन मरना कोई मुश्किल काम नहीं—इन्सान एक बार ही मरता है मगर मुझे जो तुम्हारे बारे में फ़िक्र है वह यही है कि इस खूंख्वार दिल्ली में, इस सारे मुल्क में तरह-तरह के दरिंदे घूम रहे हैं और तुम जैसी नाज़नीन की इज्जत व अस्मत लेकर तुम्हें दर-दर भटका देंगे और मौक़ा लगा तो बाज़ार में बिठा देंगे।'

'मैं हर ज़िल्लत झेल लूँगी, मरता क्या न करता—लेकिन कातिलों के इस साये में रहना मुझे कतई रास नहीं आयेगा।'

'अच्छा रशीदो, तुम्हारी मर्ज़ी', प्यार से बोला नज़ीर, और फिर चौंककर बोला, 'अरे अभी तुमने खाना शुरू नहीं किया !'

'जीना है तो खाऊँगी ही' लापरवाई से वह बोली और भोजन करने लगी। एक-दो चपाती मुश्किल से गले उतारी और रक़ाबियाँ एक तरफ़ सरका दीं।

नज़ीर उससे विदा लेकर घर चला आया।

घर आकर नज़ीरुल हुसैन कई तरह के विचारों में खो गया। रशीदन के आने के बाद से जैसे उसके जीवन में एक भूचाल आ गया हो—सब कुछ झटक-झटकाकर जैसे उसने पिछले नज़ीर को तोड़-फोड़कर एक नया नज़ीर खड़ा कर दिया हो। उसने चरस पीना बिलकुल छोड़ दिया था और शराब से भी तोबह कर ली थी—अब उसे सुल्तान की संगत भी ज्यादा अच्छी

नही लगती थी और वहाँ जाने के बजाय वह फ़क़ीर व सतों के दरों पर चक्कर लगाता कि शायद कोई रशीदन की विचारधारा बदल दे। जुमे की नमाज़ में भी वह यही दुआ करता—'या परवरदिगार किसी तरह रशीदन का दिमाग फेरकर मेरी तरफ़ रागिब[1] कर दे—वह ज़िद्दन है—मेरी ग़लती तो ज़रूर है लेकिन इतनी बड़ी नही कि वह मुआफ़न की जा सके। फिर मैं उसे अगर रिहा भी करता हूँ तो वह कहाँ जायेगी—उसकी ज़िंदगी भी तो ख़राब हो जायेगी—नही अल्लाह ताला मुझे कुछ भी सजा दे दो—मेरी रशीदन का बाल भी बाँका न हो। मैं चाहे ताज़िंदगी तड़पता रहूँ मगर वह खुश व खुर्रम रहे। मैं तो गुनाहों का पुतला हूँ, इलाही, ज़िंदगी में मैंने सवाब[2] कोई नही किया, लेकिन वह तो बेक़सूर व बेगुनाह है, उसे किस बात की सजा मिल रही है? या ख़ुदा, रहम कर।' उसकी प्रार्थना हृदय से निकलती और वह लगभग रो पड़ता।

वह चारपाई पर पड़ा सोचता रहा, सोचता रहा और तभी उसे अब्दुल्ला से आज हुई भेंट का ध्यान आया। बार-बार कोशिशें करने पर भी रशीदन निक़ाह के लिए तैयार नही हुई तो आज उसने अंतिम प्रयत्न किया था और वह भी असफल रहा। अब तक वह आशा-निराशा में डूबता-उतराता था कि शायद रशीदा का विचार बदल जाये और वह येन-केन-प्रकारेण शादी के लिए अनुमति दे दे। किंतु आज उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि रशीदा को टस से मस करना मुश्किल है। अतः अब उसे सिर्फ किसी विकल्प की खोज थी। यानी रशीदा को रिहा तो कर दे किंतु किसी प्रकार उसे खाल-मांस के भूखे भेडियो के हाथ न पड़ने दे। उसे अब्दुल्ला रह-रहकर दिखायी देने लगा। 'बादशाही हरम के लिए ही तो वह लड़कियाँ मुहैया[3] कराता है इसलिए क्यो न उसे हरम की ही राह पर डाल दूँ। कम-से-कम हरम की राह हराम की राह से तो लाख दर्जे बेहतर होगी उसके लिए। फिर उसमें ख़ूबसूरती के अलावा भी कुछ ऐसी सिफ़तें[4] है कि ख़ुदा रसूल की मिहरबानी हुई तो वह शाहशाह की नजरों मे चढ जाये और मलका बन जाये' उस स्थिति की अपनी रशीदन के लिए कल्पना मात्र से

---

1. आकर्षित 2. पुण्य 3. उपलब्ध 4. गुण

ही वह पुलकित हो रोमांचित हो उठा। कैसा खुशनसीब होगा वह दिन जब मुझे खबर लगेगी कि रशीदन मलका बन गयी है। .जाओ रशीदन जाओ और अपना मुकद्दर आजमाओ—दिल्ली की हर औरत एक आतिश-फ़िशां[1] के मुंह पर बैठी है—कभी भी फूट पड़े और सब कुछ शोलों में समा जाये! नहीं इस आतिशफ़िशां के पास भी नहीं फटकने दूंगा तुम्हें रशीदा!' उसने अब्दुल्ला से इस संबंध में चर्चा करना निश्चय कर लिया फिर सोचने लगा, 'और मैं—मैं रशीदा की याद लिए अपनी जिंदगी की कुर्बानी दे दूंगा—किसी दरवेश के साये में जा पड़ूंगा—बेशुमार गुनाह जो किये हैं मैंने!' और वह रशीदा से सदा के लिए बिछोह की कल्पना मात्र से सिसकने लगा।

एक पहर दिन चढ़ा था कि नजीर दरीबाकलां में खान अब्दुल्ला की हवेली पर पहुँचकर दस्तक दे रहा था। नंगी तलवार बांधे एक पहरेदार ने पहले खिड़की खोलकर देखा और नजीर को पहचानते ही दरवाज़ा खोल दिया और उसे अंदर ले दरवाजा बंद कर दिया। उसे एक तख्त पर बैठाकर अंदर गया और अब्दुल्ला को बताया कि साहबजादा नजीरुल हुसैन तशरीफ़ लाये हैं। अब्दुल्ला ने तुरंत आज्ञा दी, 'फ़ौरन बाअदब अंदर लाओ।'

साधारण शिष्टाचार के पश्चात् नजीरुल हुसैन ने अपना मंतव्य प्रकट किया।

'है तो खूबसूरत न!' अब्दुल्ला ने अपना शक दूर करना चाहा।

'हाँ खान साहब, खूबसूरत ही नहीं इतनी हसीन कि छूते ही मैली हो जाये।'

'वाह! वाह!! यह तो मैं जानता ही था कि नजीर साहिब किसी ऐसी-वैसी चीज की सिफारिश नहीं करेंगे, कहाँ से लेना होगा?'

'खान जमा खाँ की हवेली के नजदीक जो हमारा मकान है, गली पराँठे वालान में।'

'बस-बस समझ गया। कल मग्रिब[2] की नमाज के बाद डोली पहुँच

1. ज्वालामुखी 2. सूर्यास्त की नमाज

जायेगी।'

'मैं बाहर ही इंतजार करूँगा खाँ साहब।'

'हाँ हाँ, और कीमत? अरे मैं तो भूल ही गया था।'

'जो मर्जी आये दे देना।' रशीदन के लिए सौदा करना उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके गले पर छुरी फेर रहा हो।

'पाँच हज़ार रुपये?'

'जी पाँच हज़ार।' नज़ीर ने रक़म लेना इसलिए मजूर कर लिया कि अब्दुल्ला को किसी तरह का शकोशुबह न रहे।

'तो पेशगी लेते जाओ।'

'अच्छा...' नज़ीर ख़यालों में खोया-खोया-सा बोल रहा था।

अब्दुल्ला ने ताली बजाई, एक क़नीज़ हाजिर हुई, उसे आदेश दिया और जब वह लौटकर आयी तो करीब दस सेर की एक थैली उसे देता हुआ बोला, 'यह पेशगी लीजिये एक हज़ार रुपये और बात पक्की।'

'बात पक्की।' नज़ीर यंत्रवत बोल रहा था और इजाज़त लेकर अपने घर आ गया।

सूर्यास्त हुआ ही था कि दिल्ली की सड़कें और गलियाँ सुनसान हो चली थी—महिलाएँ, लड़के, लड़कियाँ सब घरों की चहारदीवारी में बंद हो गये थे और इक्का-दुक्का लोग ही दिल्ली शहर में इधर-उधर घूमते दिखायी दे रहे थे। दुकानें प्रायः सूर्यास्त से पहले ही बंद हो जाती। कहीं-कहीं पान की एकाध दुकान पर बत्ती टिमटिमाती नजर आ जाती बाकी सब ओर घोर अंधकार। हवेली ख़ान जमा खाँ के सामने नज़ीरुल हुसेन चहलकदमी कर रहा था कि एक डोली चाँदनी चौक की तरफ़ से आती दिखायी दी और ठीक उसी के सामने आकर रुकी। कहारों की कमर से कटार लटक रही थी और वे योद्धा अधिक और कहार कम दिखायी दे रहे थे।

'साहबजादा नज़ीर साहब की हवेली कौन-सी है जनाब' कहारों ने एक साथ पूछा।

'जी मैं ही नज़ीर हूँ और यह रहा मकान, आइये मेरे साथ।'

डोली हवेली के सदर दरवाजे में दाखिल हुई और कहारों में से एक ने साहबज़ादे का हिसाब कर दिया यानी चार हज़ार रुपये की कीमत की

मोहरें पकड़ा दीं। नज़ीर ने एक अलमारी खोली, कुछ मोहरें और निकालीं और सब एक थैली में भर दीं। अब वह उस कक्ष में गया कि जहाँ रशीदन कैद थी। कमरा खोला तो रशीदन मोमबत्ती के पास बैठी ख़यालों में डूबी थी।

'रशीदन आज तुमको रिहा किया जा रहा है।'

'क्या वाकई, क्यों मज़ाक करते हो एक क़ैदी से!'

'नहीं रशीदन वाकई तुम यहाँ से जा रही हो' नज़ीर की पलकें भीग गयीं।

'ज़हे किस्मत, नज़ीर तुम्हारा अहसान कभी न भूलूँगी' आज पहली बार रशीदन ने नज़ीर का नाम लिया था।

'लो जल्द तैयार हो जाओ, यह कुछ कपड़े हैं, रास्ते में काम आयेंगे और अल्लाह ने चाहा तो तुम्हें हर तरह का आराम मिलेगा।'

'आराम या तकलीफ की मुझे अब कोई पर्वा नहीं रही।'

'मगर तुमने यह तो पूछा ही नहीं कि कहाँ भेजा जा रहा है तुम्हें!'

'यहाँ से तो मुझे जहन्नुम में भी भेजा जाये तो मुझे राहत मिलेगी' कहने को तो रशीदन कह गयी लेकिन उसे अपने दिल के किसी कोने में कहीं नज़ीर के प्रति एक मीठी-सी टीस का आभास हुआ—इतने दिनों में पहली बार।

कहारों को कई तरह समझा-बुझाकर गीली आँखों से नज़ीर ने रशीदन को विदाई दी और वह चल पड़ी। चलते वक़्त नज़ीर ने एक थैली डोली में डाल दी और कहा, 'यह वक़्त ज़रूरत काम देगी, ख़ुदा हाफ़िज़।'

'ख़ुदा हाफ़िज़' बरबस रशीदन की ज़बान से निकला और उसकी आँखें भी नम हो आयीं।

हमारे जीवन में कभी-कभी कुछ व्यक्तित्व ऐसे भी आते हैं जिनका महत्व हम केवल उनकी अनुपस्थिति में ही महसूस कर पाते हैं। डोली जा रही थी और रशीदन को न वर्तमान की चिंता थी न भविष्य की—उसके स्मृति-पटल पर नज़ीर का मृदु-व्यवहार चित्रपट की तरह घटना-क्रम से उभर रहा था। उसने हठात् उसे हटाया तो उसे अपने घर की, माँ की, बाप की और दादी की याद आने लगी। फिर नज़ीर उभरा, फिर उसका सोने-सा

घर जो कब का उजड़ चुका था। फिर नजीर, फिर माँ-बाप। मन की गति भी कितनी तेज़ है? कहाँ से कहाँ ले जाता है इन्सान को—धूप छाया, छाया धूप, फिर धूप छाया और क्रम चलता ही रहता है। डोली आगे बढ़ती जा रही थी।

देहली पर गिद्ध के डैनों की काली छाया फिर मँडराने लगी। कडाके की ठंड पड़ रही थी कि युवराज जवानबख्त को संदेश आया कि अहमशाह अब्दाली दिल्ली शहर में आ रहे हैं और उनका इरादा कुछ दिनों यहीं ठहरने का है। प्रातःकाल से ही उसके स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। यह समाचार शहर में आग की तरह फैल गया। दिल्ली वाले पिछली साल अब्दालियों द्वारा दी गयी यातनाओं और लूट-खसोट को अभी भुला भी न पाये थे कि उनका कलेजा फिर मुँह को आया।

अहमदशाह दुर्रानी करीब तीन बजे अपराह्न जरदोजी के वस्त्रों और अनेक रत्नजटित आभूषणों से सुसज्जित हो हाथी पर सवार होकर दिल्ली की ओर बढ़ा। उसने कोहेनूर हीरा अपने ताज में जड़वा रखा था। भारी शान-शौकत के साथ उसका जुलूस काश्मीरी दरवाज़े की ओर बढ़ रहा था कि शाहज़ादा जवानबख़्त लगभग एक कोस आगे उसके इस्तकबाल के लिए रवाना हुआ। शाहजादा भय और त्रास से सारे काम यंत्रवत कर रहा था और खुदा से बार-बार प्रार्थना करता था कि सब कुछ बा खैरियत निपट जाये—दिल्ली शहर की बर्बादी न हो। वह एक हाथी पर सवार होकर लगभग पाँच सौ प्यादों और दो सौ घुड़सवारों व शुतर सवारों के साथ आगे बढ़ा और दुर्रानी के जुलूस के सम्मुख पहुँच गया। अदब व आदाब के बाद शाहज़ादे ने नज़र पेश की जिसमें एक हज़ार मोहरें, पच्चीस हज़ार रुपये, हाथी, घोड़े और ऊँट थे। अब्दाली ने शाहजादे की नज़र कबूल की और काफ़ी सम्मान से पेश आया। दोनों मिले-जुले जुलूस काश्मीरी दरवाज़े की राह से क़िले की ओर बढ़े। महलों में दुर्रानी के ठहरने का माकूल इंत-ज़ाम कराया गया था और वह वहाँ व्यवस्थित हो दीवाने ख़ास में जा बैठा। उसने नजीबुद्दौला रुहेले सरदार को बुलाया और अगले रोज़ दरबार करने

का ऐलान किया।

दीवाने आम में शाह का दरबार लगाने का प्रबंध होने लगा। तख्त-ए-ताउस तो नादिरशाह लूट ले गया था अतः एक और तख्त रखवाकर उसकी उपयुक्त सजावट कर दी गयी। कामगर सारी रात प्रबंध में लगे रहे। दुर्रानी व उसके सरदारों ने आराम किया।

दुर्रानी का इरादा न तो हिंदुस्तान में बसने का था न यहाँ साम्राज्य स्थापित करने का अतः वह दरबार में यहाँ के उपयुक्त प्रबंध के विषय में घोषणा कर देना चाहता था—इनाम-इकराम भी बाँटने थे।

अतः दूसरे दिन दरबार में उसने शाहआलम द्वितीय को उसकी अनुपस्थिति में सम्राट घोषित किया और शाहजादा जवानबख्त को वली अहद बनाया। हुकूमत के प्रबंध के लिए इमाद-उल-मुल्क को वजीर बनाया गया। और नजीबुद्दौला को अमीर-उल-उमरा का खिताब देकर उसे मीर बख्शी बनाया। मीर बख्शी का कर्तव्य दिल्ली और राजमहल की व्यवस्था करना था। उसने विभिन्न रईसों, सरदारों और जागीरदारों को तरह-तरह के खिताब दिये और इनाम बाँटे और अंत में दरबार बरखास्त किया।

अब्दाली के सैनिक काफी समय से हिंदुस्तान में थे—यहाँ की जलवायु उन्हें अनुकूल नहीं पड़ रही थी। इस पर भी यह कि इस बार उन्हें कई महीनों से वेतन नहीं मिल पाया था अतः शहर में प्रवेश पाते ही वे दिल्ली व नई दिल्ली (शाहजहाँनाबाद) में फैल गये और लूटमार करने लगे। दिल्ली के लोग इस कूचे से उसमें, उस गली से इसमें, भागते फिरते थे। कई जगह मुकाबिले की कोशिश भी होती लेकिन इस टिड्डी दल के सामने किसकी चलती! कई मकानों और दुकानों को लूट लिया—बंद दरवाजों व दीवारों तक को तोड़-फोड़ डाला और सैकड़ों लड़कियों और औरतों को गिरफ्तार कर लिया, हजारों लोग कत्ल कर दिये गये—जो पहले से ही बाहर चले गये थे वे ही बच सके। सरे आम बलात्कार होते थे—आदमियों को भेड़-बकरियों की तरह काटा जा रहा था। लाहौरी दरवाजे, खारी बावली, ईदगाह, हौजकाजी, फतेहपुरी जिधर देखो सैंकड़ों लाशें सड़ रही थीं—कटे-फटे मरणासन्न घायलों की कराहट से इस वीराने शहर में वीभत्सता छा

गयी। अब्दाली व रुहेले थे कि चुपचाप अपना काम किये जा रहे थे। बहुत मज़बूत हवेलियों के अलावा करीब-करीब सभी मकान टूट-फूट गये थे।

दो सरदार, कूचा श्याम चरण दास में घुसे तो सारे सिपाही इधर-उधर फैल गये। यहाँ की स्थिति ही ऐसी है किएक-दो जगह नाकेबंदी की कि सब रास्ते बंद। बच्चों तक को क्रूरता से भाले की नोंक पर रखकर या तलवार से मार दिया गया। सामान असबाब तो शायद ही किसी के पास रहा होगा। हवेली वाले और लखपति लोग भिखमंगे हो गये। उर्दू के शायर मीर तकी मीर ने जो उस समय वहीं थे यह हालत देखी तो रो पड़े तभी तो उन्होंने लिखा था यह शेर—

दिल्ली में आज भीक भी मिलती नहीं उन्हें,
था कल तलक दिमाग जिन्हें तख़्तो ताज का।

भीख दे सकने वाला बचा ही कौन था! दुर्रानी के सैनिकों ने सैकड़ों नवयुवतियों को ग़ुलाम बना लिया और उनके सरदारों ने हजारों सुंदरियों को तोहफ़े के बतौर बल्ख बुख़ारा, ईरान या तूरान भेज दिया। जो बेघर-बार परेशान हाल बचे थे उन्हें एक-एक दिन भारी पड़ रहा था—इधर-उधर छुपते फिरते थे, दाने-दाने को तरसते थे। चाँदनी चौक श्मशान जैसा दिखायी देता था।

दिल्ली, तुम्हारा भाग्य ही ऐसा है। तुम्हें किसने नहीं लूटा—तुम कहीं ज्वालामुखी पर तो नहीं बैठी हो? तुम्हीं हो कि फिर भी खड़ी हो, अब भी मौजूद हो, हर सकट से गुज़रकर पुनः वैभवशाली हुईं, फिर भिखारिन, और फिर वही ऐश्वर्य! आख़िर हिंदोस्तान की राजधानी जो हो!

लगभग डेढ़ माह हो गया है इस क्रूरता को किंतु जहाँ अत्याचार होता है, कहीं-न-कहीं उसका भी अंत होता है।

सैनिक लाल किले के बाहर जमा थे और उनके कुछ सरदार शाह अब्दाली के पास पहुंचे। अब्दाली ने उन्हें दीवान-ए-ख़ास में बुलाया और पूछा क्या बात है।

'हुज़ूर इतना अर्सा हो गया है हिंदोस्तान में कि बीवी-बच्चे भूखे मर रहे होंगे।'

'हाँ अर्सा तो काफ़ी हो गया है।'

'इसलिए आलीजाह से इल्तिजा[1] है कि वतन की तरफ़ कूच का हुक्म फ़रमायें।'

'हमारा इरादा यहाँ थोड़े दिन और रुककर···।'

'नहीं आलीजाह अब नहीं, सब सिपह परेशान है, उन्हें कई माह से तनख्वाह भी नहीं मिली है, फिर मौसमे सर्मा[2] भी नज़दीक है हुज़ूर, मुझे तो ख़तरा है कि कहीं फ़ौज बल्वा न कर दे।' एक सरदार ने कहा।

'अच्छा सरदार हम सोचेंगे और कल सुबह तक कुछ फ़ैसला करेंगे।'

अनुभवी अब्दाली समझ गया कि स्थिति बहुत नाज़ुक है, अगर फ़ौज ने बल्वा कर दिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। लेकिन लालक़िले की गुलाबी रँगरेलियाँ उसे बाँधे थीं। आख़िर इतने बड़े युद्ध के बाद बादशाह को आराम भी तो चाहिए—फिर हिंद की तरह मौज-मस्तियाँ कहाँ ! कभी काश्मीर की कली तो कभी जैसलमेर का गुचा, कभी पंजाबी तो कभी अंग्रेज छोकरी। काबुल में यह बहिश्त[3] कहाँ नसीब होगा। वह बहुत देर तक सोचता रहा, बेचैन हो गया और अंत में कूच का इरादा कर लिया।

ठंड गुलाबी हो गयी थी—दिन में काफ़ी गर्म मौसम रहने लगा और 20 मार्च को अब्दाली ने अपनी फ़ौज को कूच का आदेश दिया।

हज़ारों हाथी घोड़ों और ऊँटों के अलावा इस फ़ौज में हज़ारों स्त्रियाँ और बच्चे भी क़ैद थे। जिन्हें अफ़ग़ानिस्तान या अन्य देशों में ले जाकर गुलाम बनाया जाना था। दहकती दिल्ली की आग बुझ गयी लेकिन शेष रही केवल खाक। काली छाया जो मँडरा रही थी शहर पर !

पानीपत का मैदान छोड़कर मराठे बेतहाशा भागे जा रहे थे। उनकी हार तथा भागने का समाचार चारों ओर फैल गया था—अतः जो मराठे पानीपत से दिल्ली, कोसी व मथुरा की राह से आगरा होते हुए दक्षिण जाना चाहते थे उन्हें बहुत विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। ग्रामीणों को पहले ही अंदाज़ा था कि इसी राह से मराठे आयेंगे। वे पहले से तैयार रहते और

---

1. निवेदन 2. ग्रीष्म ऋतु 3. स्वर्ग

उन्हें तरह-तरह से त्रसित करते। उन्हें गिन-गिन के बदला जो लेना था मराठों की क्रूरता का। सीधे रास्ते का जोखिम देखते हुए कई मराठा दलों ने अपने रास्ते बदल दिये थे। ऐसा ही एक दल जिसमें पाँच घुड़सवार थे मथुरा तक पहुँच चुका था। राह मे उनकी तलवारें छिन गयी थी तथा थोड़ा बहुत जो धन उनके पास था वह भी लूट लिया गया—घोड़े भी छिन जाते लेकिन वे मौका देखकर कुछ इस तरह सर पर पैर रखकर भागे कि हमलावर उन्हें न पकड सके और मथुरा आकर ही दम लिया। पैसा पास नही, भूखे-प्यासे बेदम हो रहे थे। अतः उन्होंने तुरंत एक योजना बनायी। एक सराय में ठहर गये और आगरा की सड़क पर आते-जाते अकेले-दुकेले मुसाफ़िरों को लूट लिया। इस धन से उनकी उदर पूर्ति भी हुई और वेशभूषा बदलने को कपड़े भी ख़रीद लिए। भाषा की उन्हें कोई कठिनाई थी ही नही क्योंकि बरसों से वे उत्तराखंड मे सैनिक अभियानों मे सम्मिलित होते रहे थे। अब वे मथुरा से रुनकता होकर आगरा जाने के बजाय लम्बी राह से, यमुना पार कर, गोकुल होकर सादाबाद, जो मथुरा जिले का एक क़स्बा है, पहुँचे, और आगरा की ओर बढ़ने लगे—लगभग तीन मील ही चले होंगे कि भूख और प्यास ने पस्त कर दिया। सड़क के किनारे ही एक गाँव है गुरसौठी। वहाँ जाकर भोजन-पानी की व्यवस्था करने के इरादे से गाँव की ओर बढ़े। एक कुए पर कुछ महिलायें पानी भर रही थी अतः इन राहगीरों ने पानी माँगा तो उन्होंने पानी पिला दिया। उन्होंने घोड़े पीपल के वृक्ष से बाँध दिये थे।

'कौन सौ गाम ऐ' एक सवार ने पूछा।

'गुरसौठी' एक चपल दस वर्षीय बालिका ने बताया।

'कौन लोगन की बस्ती ऐ?'

'यों तौ सबई जाति रहति है परि बैसें ठाकुरन को गामु ऐ।' एक विवाहित लडकी ने बताया। वह होली मनाने अपनी ससुराल खदौली से मैके आयी हुई थी—शादी के पहले वर्ष होली की ज्वाला जो नही देखी जाती ससुराल मे।

ठाकुरों का नाम सुनकर मराठों को साँप सूँघ गया। वे एक-दूसरे की तरफ़ ताक रहे थे और चेहरों के रग फीके हो गये थे। गुरसौठी बड़ा क्रिया-

मील गांव था। ठाकुर सोवरनसिंह, बड़े ठसके के जमीदार थे यहाँ—सौ-पचास लठैत हर वक्त उनके साथ रहते थे। यहाँ मराठों की हार की व उनके पलायन की खबर बच्चों-बच्चो में फैल गयी थी। गतवर्ष इन्हीं मराठों ने उनके काश्तकारो के खेत उजाड़ दिये थे और गुरसौठी व गीगले ग्राम की दो चमारों की लड़कियों को भी भगा ले गये थे। गीगले मे कायस्थो की जमीदारी थी और वहाँ राव रामबक्शसिंह बड़ा धड़ल्ला रखते थे। ठाकुर साहब व राव साहब दोनों ने अपने लठैत लेकर मराठों का पीछा किया और वे जवाहरगढ़ तक ही पहुँचे थे कि जा दबाया—मराठों की एक न चली और लड़कियाँ छुड़ा कर वापिस ले आयी गयी। ऐसे बहादुर थे दोनो मित्र! मराठा नाम से बच्चा-बच्चा घृणा करने लगा था।

पानी भरती महिलाओं मे कुछ ठाकुर साहब की पुत्र-वधुएँ, कुछ उन्ही के भाई-वदों की लड़कियाँ, बहुएँ आदि थीं। मराठा सिपाहियो का चेहरा उतरते देख उन्हें संदेह हुआ। तुरंत कनखियो से इशारे हुए और मराठा सिपाही पीपल वृक्ष के नीचे घोड़ो पर सवार होने पहुँचे ही थे कि विद्युत गति से पाँच-सात युवतियाँ वहाँ पहुंची और घोड़े खोल लिए। तीन-चार लड़कियों ने घोड़ो की रास पकड़ी, पीठ पर कूद बैठी और एड़ लगा दी। एक क्षण में ही सब कुछ हो गया और मराठे सिपाही जो पहिले समझ रहे थे कि लड़कियाँ घोड़ों से सिर्फ़ मनोरंजन कर रही है एकदम बोले, 'अरे, अरे, जि का करई ओ? घोड़न कूं कहाँ लएँ जाति ओ?' तो पीछे रही बहुओं ने घूँघट मे से बताया कि 'मौज करो दखिनियो तुमाए घोड़ा तौ अब हमाए हैं गये!'

आसन्न संकट की आशंका से वे सर पर पैर रखकर भागे और बजाय सीधी सड़क पकड़ने के वेदई ग्राम का दगड़ा पकड़ लिया। गढ़ी में से जब तक लठैत वहाँ पहुँचे उनका पता नही था। लठैतों के दस-दस पाँच-पाँच के झुंड आगरा की ओर वढ़ने लगे और गीगला पहुँचे, गीगले से राव साहब के लठैत व भाले वाले उनमे सम्मिलित हो गये और बास अमरू, खंदौली आदि ग्रामो के नाको पर जम गये। केवल दो घंटो मे इन दलों ने लगभग 50 मराठाओ को लूटा तथा सात को मार गिराया। मराठे भी बड़े बचते हुए कच्चे-पक्के रास्तो से होकर इस सड़क पर आखिर पहुँच ही जाते। उनका

मनोवल बुरी तरह गिर चुका था अतः थोड़ा भी विरोध करने की सामर्थ्य नही रही थी उनमे। यह इलाका जो सदैव इनके टिड्डी दल से त्रासदी सहन करता आ रहा था अब गिन-गिनकर बदला ले रहा था।

गुरसौठी से वेदई और वेदई से मोहकम का नगला होते हुए वे मराठे अत मे पुन. मुख्य सड़क पर गीमले के पास आ निकले। यहाँ ठाकुर सोबरनसिंह के पुत्र मोहर्रसिंह और राव साहब के पुत्र जीवनसिंह डटे हुए थे। दोनो नवयुवक अपने पिताओ की भाँति गहरे दोस्त थे। मराठो ने उन्हें देखा तो पहिले ठिठके फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे जैसे बकरा शेर के सामने विवश होकर पहुँच रहा हो। मोहर्रसिंह ने हँसकर गाली दी।

'देखो तो स्साले कैसे रेग रए है डीमर[1] की तरैं अब, तब नाये देखत कि हम जुलम करिगे तो कबऊ वाको बदलो ऊ मिलैगो। चले आओ अब पीछें कूं मति देखो !'

मराठे उन्ही की ओर बढ़े तो कुँवर जीवनसिंह ने आज्ञा दी 'पाँचो मुर्गा बनि जाओ और अपने-अपने कान पकरि लेउ।'

दोनो नवयुवक चुहल पर उतर आये थे। कुछ हिचक के बाद पाँचो सवार मुर्गा बन गये तो उनकी पीठ पर एक-एक ईंट जो वही पड़ी थी रख दी गयी और कुँवर मोहर्रसिंह ने कहा, 'ईंट गिरी और डडा परयो पीठि पै, समझे।'

मराठे सब समझ गये थे। पाँच मिनट बाद एक ईंट गिरी तो जीवनसिंह के एक आदमी ने भरपूर लाठी जमा दी उसकी पीठ पर और फिर मुर्गा बनाकर ईंट रख दी गयी। लगभग आधा घटे तक दोनों दोस्त व उनके दूसरे साथी चुहल का मजा लेते रहे और अत मे सिपाहियो को कहा गया कि पगड़ी अंगरखा सब उतार दो और हमारे हवाले करो। आज्ञा का पालन हुआ तब कही उनकी जान छूटी। गिरते-पड़ते वे आगे बढ़ गये और सोचने लगे 'जान बची लाखो पाये।' हाँ इनकी जान बचना भी एक अजूबा था। अधिकाश इतने भाग्यशाली नही थे कि जान भी बचा सके हो। लुटते, पिटते, अपमान सहते, सबकी तमन्ना यही थी कि किसी प्रकार सशरीर अपने प्रदेश म पहुँच लें।

1. जूं

यह तो केवल एक इलाके की दास्तान है। समस्त कोल, सादाबाद, जलेसर, फीरोज़ाबाद, शिकोहाबाद, इटावा, शमशाबाद, आदि में गाँव-गाँव में यही हो रहा था। इन सब इलाकों पर पहिले राजा सूरजमल जाट का अधिकार था किंतु पिछली बार अहमदशाह दुर्रानी ने यह भूभाग रुहेलों के सुपुर्द कर दिया था अतः कही ठाकुर, कही जाट और कही रुहेले पठान भागते हुए मराठों की दुर्दशा करते तो कहीं चमार, धानुक, गूजर व अहीर उन्हें लूट लेते।

ऐसे ही समय मे खंदोली के जमीदार मीर क़ासिम अली की हवेली मे कुछ विशेष अतिथि ठहरे थे। खंदोली क़स्बे मे घुड़सवारों के घूमने से बड़ी चहल-पहल थी तथा खास मेहमान थे तीन सरदार। एक डोली भी आयी थी जिसमे दो किशोरियाँ थी। ठहरने की व्यवस्था की थी कासिम खाँ की हवेली मे। दोनो युवतियाँ आशा-निराशा के बीच झूलती यहाँ तक आ पहुँची थी और एक-दूसरे से भलीभाँति परिचित हो चुकी थी। हसीना वास्तव में हसीन थी। दोनो सहेलियाँ बन गयी थी। हसीना का घर पिछले वर्ष दुर्रानियो के हमले के समय उजड़ चुका था। उसके माँ-बाप पहिले ही मर चुके थे। चाचा-चाची के पास रहती थी। चाचा-चाची का कत्ल दुर्रानी सैनिको ने उसी के सामने किया और उसकी मुश्कें बाँध ली—उसके भाई अहमद व चचेरे भाई अज़ीम को भी गिरफ़्तार कर लिया और खारी बावली से छावनी मे ले आया गया। घर का सब माल व असबाब भी लुट गया था। उन्हे छावनी मे लाये ही थे कि शाह अब्दाली ने कूच का हुक्म दे दिया।

अहमद व अज़ीम को खुद की कोई पर्वा नही थी लेकिन वे हसीना के बारे मे बहुत चिंतित थे—न जाने कहाँ गुलामो के बाजार में बेच दी जायेगी—किस मुल्क मे रहना पड़ेगा—उफ़ बेचारी हसीना! और जब कभी मौका पाते उसके बारे मे सलाह-मशविरा करते। आख़िर एक योजना बनी और उस पर कार्यान्वयन भी प्रारम्भ हो गया। कुछ पहरेदारो से अहमद व अज़ीम ने दोस्ती गाँठ ली और चोरी-छिपे हसीना के खेमे में रात को जाने लगे। वहाँ करीब 20-25 किशोरियाँ कैद थी।

अज़ीम की शक्ल हसीना से अधिक मिलती थी लेकिन अहमद की कुछ

कम। अहमद कुछ बड़ा भी था। अतः एक दिन सब कुछ तैयारियाँ करके अज़ीम हसीना के पास पहुँचा और एक जोड़ी कपड़े देता हुआ बोला, 'हसीना यह पहिन लो।' अहमद भी साथ था।

मर्दाने कपड़े देखकर हसीना चौंकी और एकदम बोली, 'भैया क्या ग़ज़ब कर रहे हो—यह नहीं हो सकता।'

'हसीना कपड़े पहिनने में तुम्हें क्या ऐतराज़ है।'

'यही कि मैं तुम्हारा मंसूबा ख़ूब समझ गयी हूँ—तुम मेरी जगह बैठकर मुझे रिहा कराना चाहते हो लेकिन…।'

'लेकिन मैं तुमसे यहाँ जाने को तो कह नहीं रहा हूँ। तुम रिहा तभी हो सकती हो जब यहाँ से बाहर निकलो।'

'नहीं भाई जान, इसमें तुम्हारी जान तो जायेगी ही, मैं भी कहाँ बच पाऊँगी! यह दुर्रानियों का ख़ेमा है मैं तुम्हें जोखिम में नहीं डाल सकती।'

'कहाँ पड़ रहा है कोई जोखिम में, मैं तो तुम्हें सिर्फ़ यह कपड़े बदलने को कह रहा हूँ—अज़ीज़ हमशीरा, कभी तुमने मेरी बात नहीं गिरायी, आज भी मेरी गुज़ारिश मान लो, अलबत्ता मैं तुम्हें बाहर निकलने के लिए कहूँ तो तुम ज़रूर इनकार कर देना—मेरी अच्छी-सी बहिन—जल्दी।'

और कौतूहल से भरी हसीना ने जल्दी से पर्दे के पीछे जाकर कपड़े बदल डाले। वह कोई विरोध करे उससे पहिले ही अज़ीम ने उसकी एक पोशाक धारण कर ली थी। जैसे ही हसीना बाहर आयी अज़ीम को देखकर धक से रह गयी जैसे ख़ुद को ही आइने में देख लिया हो—तभी किसी ने पीछे से उसका मुँह दबा लिया और चीख़ निकलने से पहिले दूसरे हाथ से मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। अज़ीम ने विरोध करने को उठे हसीना के हाथ मज़बूती से पकड़ लिए थे। तभी अहमद द्वार तक गया और दो सिपाहियों को साथ ले आया। हसीना को तीनों ने लाद लिया और बाहर निकल आये। अज़ीम की आँखें ख़ुशी से चमक रही थीं। उसने चैन की सांस ली और देखा कि अधिकांश किशोरियाँ सो रही हैं। वास्तव में सोयी नहीं थीं वह भी हसीना के भाग्य को सराह रही थीं लेकिन इस आपत्तिकाल में ईर्ष्या किसी के मन में नहीं थी।

बाहर निकलकर अहमद व उसके साथी ज़नाने ख़ेमे की सीमा तक

पहुँचे, लगभग आधा मील चलना पड़ा और तभी हसीना को उन्होंने जमीन पर उतारा। मुँह में ठुंसा हुआ कपड़ा निकाला—दोनों सिपाही पीछे लौटने लगे और अहमद ने मजबूती से हसीना का हाथ पकड़ा और कहा 'आओ।'

'क्या ग़जब कर रहे हो अहमद भाई' हसीना फुसफुसायी।

'चुप, ग़जब होना था वह तो हो चुका, अजीम इन्सान नहीं फ़रिश्ता है।'

'लेकिन···।'

'लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता।' और वह चलता हुआ बोला, 'मेरे पीछे चली आओ, चूं भी नहीं करना।'

छावनी की सीमा आ पहुँची थी—आहट पाकर पहरा देते हुए सिपाही ने नंगी तलवार खड़ी कर ली और कड़ककर कहा, 'ठहरो!'

अहमद ने तुरत कहा, 'लाल किला' और पहरेदार ने तलवार झुका ली। दोनों अंधकार में विलीन हो गये थे।

हसीना को कुछ समझा-बुझाकर उसने जाने को मार्गदर्शन दिया और कहा, 'खुदा हाफ़िज'। हसीना का गला भर आया था और 'खुदा हाफ़िज' कहकर आगे बढ़ ली। अहमद छावनी की तरफ़ लौटने लगा। होने को तो अहमद भी रिहा हो सकता था लेकिन अजीम को छोड़कर वह खुली हवा में कैसे घूम सकता था। तकदीर से तदबीर बड़ी होती है। तकदीर के भरोसे वह अजीम को कभी नहीं छोड़ सकता।

सुबह हुई तो ख्वाजा सरा सिकंदर अली खाँ ने जनाने खेमे में हाजिरी ली—सब बराबर—बिलकुल ठीक—आज यह हसीना अचानक कितनी हसीन नजर आ रही है। रंज व ग़म की भी एक हद होती है और उस हद से गुजरने के बाद वह हँसी-खुशी में तब्दील हो जाते हैं। आज क़रीब एक हफ्ता जो हो गया—कब तक मातम मनाये! और सिकंदर सोचता हुआ बाहर चला गया।

अहमद हर रोज की तरह क़ैदियों के खेमे में मंसूबे बनाता रहा।

हसीना के साथ दूसरी लड़की थी रशीदन। रशीदन जब डोली से दरीबा कलाँ पहुँची तो अब्दुल्ला खाँ ने उसे काफ़ी दम दिलासा दी और खूब आदर सत्कार से उसे हवेली के एक भाग में ठहरा दिया जहाँ हर तरह की

सुविधाएँ थी। रशीदन ने स्वयं को व्यवस्थित कर अन्य सामान के साथ नज़ीर की दी हुई थैली भी डाल दी। इस हवेली में उसने ज्यों-ज्यों नजीर को भुलाना चाहा त्यों-त्यों वह और भी याद आया और वह फफक-फफक-कर रोने लगी।

'अरे उस कातिल के लिए रोना?' उसने हठात् उसकी स्मृति को मानस पटल से दूर करना चाहा, 'उसने तो अच्छी-खासी रक़म ऐंठ ली होगी, इन लोगों से। लड़कियों का व्यापार करते होंगे ये लोग।' वह सोचती रही। तभी नज़ीर की एक-एक प्रार्थना, एक-एक आग्रह, एक-एक आँसू उसे हज़ार-हज़ार बनकर सालने लगे। उसने अपना माथा पकड़ा और सोने का प्रयत्न किया, लेकिन अपना उजड़ा घर, नज़ीर तथा भविष्य के गर्भ में छुपे अपने भाग्य अथवा दुर्भाग्य की आशंका, रह-रहकर उसे व्याकुल करते और नींद उचट जाती।

एक दिन उसने नज़ीर को सारे दिन याद किया। कितना ख़ूबसूरत नौजवान था। ज़रूर कोई शरीफज़ादा है जो बुरी संगत में पड़ गया है। जो भी हो इन लोगों का ही क्या भरोसा। ना जाने किस मुल्क में ले जाकर बेच-खोच दें—फिर दिल्ली कभी देखने को भी नहीं मिलेगी और वह दिल्ली से बिछोह की आशंका में दिन भर रोती रही। पता नहीं क्या बुरा हाल हो मेरा—अगर निकाह ही करना था तो नज़ीर ही क्या बुरा था, लेकिन तभी उसके मन के कोने में हलचल-सी मची, 'छि: मैं क्या सोचने लगी, नहीं, नहीं, उस कातिल से निकाह! नहीं, कुछ भी हो जाये हरगिज़ नहीं। जहाँ भी मुकद्दर ले जायेगा, ठीक ही रहेगा।'

जब वह अपना सामान सँभाल रही थी तो चलते समय नज़ीर की दी हुई थैली हाथ पड़ी—अरे यह तो लोहा भरा है इसमें। कौतूहलवश खोला तो देखती की देखती रह गयी। सोने की चमचमाती मोहरें—वज़न होगा कोई पाँच सेर। गिनने की सामर्थ्य नहीं थी लेकिन उसे नज़ीर और भी याद आने लगा।

नूरे खाँ ने जब सुना कि अब्दाली दिल्ली से काफी दूर निकल गया और उसके लौटने की कोई उम्मीद नहीं तो फ़ौरन अब्दुल्ला के पास पहुँचा और दो लड़कियों को डोली में बिठाकर उसके काफ़िले ने कूच किया और अब

आगरा से लगभग 12 मील दूर खंदौली आ पहुँचा था क्योंकि उसे क़ासिम खाँ से भी कुछ मदद मिलने की आशा थी। दिल्ली से चलने के बाद से हसीना और रशीदन का समय गपशप में बड़े आराम से कट जाता था—कम-से-कम एकांत बंदीगृह से तो पीछा छूटा और दोनों को आभास भी हो गया था कि वे शाहआलम बादशाह के हरम में ले जायी जा रही हैं। दोनों किशोरियाँ आशाओं और आशंकाओं के बीच उलझी रहतीं, शाही शिष्टाचार आदि के विषय में अपनी योग्यता के अनुसार एक-दूसरे से वार्तालाप करतीं और दुःख भरे अतीत पर अपने-अपने अनुभव सुनातीं। अब रशीदन की स्मृति में नज़ीर धूमिल होता जा रहा था और वह कुछ शांति का अनुभव भी कर रही थी।

एक दिन बातों में रशीदन ने हसीना से पूछ लिया, 'बहिन अहमदशाह की छावनी से निकलकर तुम इन लोगों के हाथ कैसे लगीं?'—हसीना ज़रा मुस्करायी, कुछ देर अतीत में खोयी रही फिर अचानक बोली, 'सुनाऊँ अपनी दास्तान, ज़रा फ़ुरसत और सब्र की ज़रूरत है, वैसे बहुत मुख़्तसिर[1] सी है।'

'वाह, वाह, हसीना बहिन, सुनाओ ना! फ़ुर्सत को यहाँ काम ही क्या है, और तुम सब्र की क्या बात कहने लगीं, मुझे तो बहुत दिलचस्पी है सब कुछ सुनने में। मैं तो तुम्हें अपनी सारी दास्तान बयान कर चुकी हूँ लेकिन तुमने उसके बाद से अधूरी ही छोड़ दी है।'

डोली के साथ नूरे खाँ का काफ़िला आगरा की तरफ़ बढ़ता जा रहा था और हसीना रशीदन को अपनी दास्तान सुनाये जा रही थी। दास्तान लम्बी नहीं थी।

शाह दुर्रानी की छावनी से निकलकर वह भूखी-प्यासी अँधेरे में ठोकरें खाती चलती गयी और एक खंडहर में सो गयी। पौ फटते ही जब फिर चली तो देखा कि रास्ते में एक परिवार घोड़ों पर सवार होकर जा रहा था—4-5 घोड़े थे। हसीना ने कहा, 'आदाब अर्ज़, भाई साहब किधर तशरीफ़ ले जा रहे हैं?' घोड़ों की चाल धीमी हो गयी तथा जवाब मिला

---

1. छोटी

'हिसार', 'तुम किधर जा रहे हो छोटे मियाँ ?' बड़े प्यार से एक सवार ने पूछा। हसीना का हौसला बढा और बडे सपाक से जवाब दिया, 'मैं भी हिसार की तरफ़ जाऊँगा' हसीना के शालीन वार्तालाप का इतना प्रभाव पडा कि वे लोग उसे घोडे पर बैठने का आग्रह करने लगे। हसीना थकी-माँदी तो थी ही, एक सवार के पीछे सँभलकर बैठ गयी। रास्ते में सबने साथ ही खाना खाया। और फिर चल दिये। शाम को वे हिसार पहुँच चुके थे। अब हसीना ने एक कोयले की टाल से कुछ कालिख अपने हाथ-पाँव और मुँह पर पोती और दयनीय दशा बनाकर एक मंदिर के पास जा बैठी। थोड़ी ही देर में उसे कुछ प्रसाद और दो दाम[1] मिल गये। वह रात को एक सराय में रही और दिन भर सडकों पर घूमती रही। शाम होते ही वह फिर मंदिर पर पहुँची और आज उसे चार दाम मिल गये थे। यह उसे पेट भरने के लिए कई दिनों को पर्याप्त थे। वह सराय के बजाय एक बरामदे में जाकर बैठ गयी जहाँ से एक दो घोड़ा गाड़ियाँ किसी दुकान से कपड़ों के थान भरकर ले जा रही थीं। पता लगने पर ज्ञात हुआ कि वे गाड़ियाँ दिल्ली जा रही हैं। सुबह पौ फटते ही चलेंगी और दो दिन में दिल्ली पहुँच जायेंगी माल शाम को ही लद गया था। वह दुकान के बरामदे में ही पड़ी रही और जब सब ओर नींद का साम्राज्य हो गया तो एक गाड़ी में पहुँची। उसने एक तरफ की रस्सी खोली और जगह बनाकर ऊपर दो थानों के ढेरों के बीच में खिसकते-खिसकते नीचे की ओर धँस गयी।

प्रात:काल जब रस्सी ढीली देखी तो एक मजदूर ने उसे फिर से जरा ठीकठाक बाँध दिया और तीनों गाड़ियाँ चल पड़ीं। गुलाबी ठंड के दिन थे। यद्यपि हसीना थानों के बीच में दबी पड़ी थी, तथापि अधिक असुविधा नहीं हो रही थी।। उसने साँस लेने को थानों के बीच में जगह बना ली थी तथा इतनी पतली थी कि करवट भी ले लिए जाते थे। अब हसीना सो गयी थी। रास्ते में दो पड़ाव हुए लेकिन रात को हसीना अपनी जगह से नहीं निकलती थी। उसका खून का दौरा स्थिर-सा हो गया था और हाथ-पैर शून्यप्राय:। लेकिन उसे तो दिल्ली पहुँचना था, अपनी प्यारी दिल्ली !

---

1. 20 रुपया

दो दिन में गाड़ियाँ दिल्ली के चाँदनी चौक पहुँच चुकी थीं और रात हो जाने के कारण खाली नहीं की जा सकीं। एक अहाते में घोड़े ढील दिये गये और गाड़ियाँ खड़ी कर दी गयीं। लोगों की बातचीत और शोरगुल से हसीना समझ गयी थी कि दिल्ली आ गयी है। वह सबके सोने का इंतजार करती रही और मौका देखकर धीरे-धीरे बाहर निकली। पहले बीच में बँधी रस्सी के एक ओर खड़ी हुई और अपने दोनों कान जोर-जोर से ऐंठे। शून्य हुए पैरों को सही करने का यही तरीका बताया था उसे चची जान ने। जब पैरों में रक्त का दौरा सामान्य हुआ तो वह गाड़ी में थानों के ऊपर खिसक आयी और धीरे-धीरे नीचे उतर आयी—अब वह अपनी प्यारी दिल्ली में थी लेकिन यहाँ कौन था उसका? यहाँ तक अपना किस्सा बयान करके हसीना फफक-फफककर रोने लगी। अजीम भाई का जाने क्या हुआ होगा बहिन, वे पहचानते ही जरूर उसे कत्ल कर देंगे। शाह अब्दाली के लिए इन्सान की जान लेना मक्खी-मच्छरों को मार देने जैसा है।

रशीदन ने उसके आँसू पोंछे और बहुत कुछ दिल जमाई की। कहा, 'हसीना बहन मेरी तरफ़ तो देखो क्या-क्या जुल्मों से गुजरी हूँ।'

हसीना ने फिर अपनी दास्ताँ चालू की, मैं इधर-उधर खाने की तलाश में फिरते-फिरते फतेहपुरी के पास खोमचे वालों के पास जा पहुँची और कई तरह की चाट खाने लगी कि इतने में किसी ने मेरे कंधे पर जोर का हाथ मारा, 'अरे अजीम भाई आज तो हफ़्तों में नजर आये हो।' वह बड़े तपाक से बोला, जैसे कोई बहुत पुराना दोस्त हो अजीम का। मैं धक से रह गयी—उस कालिख पुते चेहरे में भी उसने अजीम को पहचान लिया था। मैंने चौंककर गर्दन घुमायी और एक खूबसूरत लड़के को जो अजीम का हमउम्र[1] था मुस्कराते हुए देखा। मेरे काटो तो खून नहीं। मैंने याददाश्त पर बहुत ज़ोर डाला लेकिन पहचान न सकी उस लड़के को। हमारे नक़ाब लेने के बाद भी तो अजीम ने कई नये दोस्त बना लिए होंगे—लेकिन मौक़े की नज़ाकत देखते हुए मैंने धीरे से कहा, 'आओ-आओ यार, चाट खाओ' तो वह बोला यहाँ नहीं चलो मैं तुम्हें खिलाऊँगा, उसी भोलाराम की दुकान

1. समान आयु वाला

पर। और मैं हिसाब करके चुपचाप उसके साथ चल दी। आगे बढ़ते ही उसने मुझे गौर से देखा तो तअज्जुब से कहने लगा, हाय यह क्या हाल कर रखा है तुमने, आधा चेहरा काला, आधा उजला, यार बड़े परेशान नज़र आ रहे हो। क्या दुर्रानी का क़हर तुम पर भी आ पड़ा? मैं मुख़्तसिर से जवाब देकर पीछा छुड़ा रही थी लेकिन दुर्रानी का नाम आया तो मैंने मौका देखकर चाचा-चाची के क़त्ल और दूसरे सब हादसे एक ही साँस में बयान कर दिये।

मैं यथाशक्ति उससे नजर बचा रही थी लेकिन वह था कि मुझे घूरे जा रहा था, शायद मेरी और अज़ीम की शक्ल में उसे काफ़ी फ़र्क़ नज़र आ रहा था। फिर थोड़ा बहुत आवाज़ में भी हो सकता है। भोला की दुकान में गये और तिपाइयों पर बैठकर चाट का मज़ा लिया और चल दिये। 'अब कहाँ जाओगे' उसने पूछा तो मेरे आँसू निकल पड़े और उसने गले में हाथ डालकर मुझे काफ़ी दम दिलासा दिया और अपने घर जाने को काफ़ी इसार[1] किया। मैंने पीछा छुड़ाना चाहा लेकिन उसने मजबूर कर दिया और हम दोनों चर्खे वालान की तरफ़ चल दिये। उसके घर पहुँचे तो हवेली के अंदर घुसे ही थे कि एक नौकर ने कहा, 'वाह अज़ीम भाई यह क्या हाल कर रखा है?' लेकिन मेरे साथी ने हुक्म दिया कि पानी लाओ। पानी से हाथ-मुँह धोये और नशिश्त में बैठ गयी कि बावर्ची ने बताया कि खाना तैयार है। दोनों खाना खाकर बात करने लगे कि उसने देखा कि मुझे नींद आ रही है। 'अज़ीम यार तुम थके-माँदे हो, सो ज़रा आराम कर लो' और बैठक के बाहर चला गया। मैं सो गयी। जब नींद खुली तो रात हो चुकी थी और मैंने अपने आपको एक मख़मल के थान में लिपटा हुआ पाया। मैं निकलने की कोशिश कर ही रही थी कि एक आवाज़ आयी जल्दी मत करो अभी निकालते हैं। और थान धीरे-धीरे खोला जाने लगा। जब मैं बाहर निकली तो अब्दुल्ला खाँ सामने खड़े थे—देखते ही बोले, 'वाह रमेश माल तो टनाटन है।' मैं कुछ नहीं समझी—इस रमेश को भी नहीं जानती। अब्दुल्ला खाँ के पास कैसे पहुँची, कुछ भी पता नहीं। रात का

1. आग्रह

खाना आया, अच्छा था। वहाँ 2-3 दिन रही तब से तुम्हारे साथ हूँ।

असल में अज़ीम के दोस्त महमूद ने हसीना के हाव-भाव से यह पहचान लिया था कि वह अज़ीम नहीं उसकी बहिन या और कोई लड़की है, जब वह सो गयी तो उसने उसके बदन पर हाथ फेरकर यह पुष्टि कर ली थी कि वह वास्तव में लडकी है, अज़ीम नहीं। रमेश कई दिन से पीछे पड़ा था उसके, कोई हसीन लडकी तलाशने को। अगर मिल जाये तो वारे-न्यारे हैं। वह घर से रमेश को लेकर अपनी नशिस्त में आया, हसीना को नींद की दवा सुंघायी, और एक मख़मली थान में लपेटकर उसे इक्के में डाल अब्दुल्ला खाँ की हवेली में ले आया गया। महमूद हवेली तक पहुँचकर बाहर से ही वापस हो लिया था।

डोली आगरा पहुँच चुकी थी। आज इस दल को यहीं रात्रि विश्राम करना था।

सम्राट शाह आलम उत्साही नवयुवक था। अभी उसने बिहार विजय की आशा को तिलांजलि नहीं दी थी तथा वह फ्रांसीसियों तथा मराठों व पुर्तगालियों से सतत् कूटनीतिक संपर्क बनाये था। उसने फ्रांसीसी सेनापति जीन ला की सहायता से बिहार पर एक बार पुनः आक्रमण किया किंतु सन 1761 की जनवरी के मध्य में जनरल जॉन कार्नेक जो कंपनी की फ़ौजों का प्रधान सेनापति था, की चालों के सामने सम्राट की एक न चली। उसने बादशाह के कई सेनानायकों से गुप्त संपर्क बनाकर उन्हें भाँति-भाँति के प्रलोभन दिये और अपनी ओर मिला लिया। 15 जनवरी को अंग्रेज़ी सेनाओं द्वारा सम्राट को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। वह पीछे हटकर गया में ठहर गया।

अंग्रेजों की चाणक्य नीति ने अपना कमाल तो दिखा दिया किंतु जो निम्न स्तर की चालें उन्होंने अपनायी थीं वह सब पर प्रकट हो गयीं तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत स्थित अधिकारियों की इंग्लैंड में काफ़ी भर्त्सना हुई। वे जनता द्वारा भी कटु आलोचना का विषय बने। इस सब का पूर्वाभास हो जाने के कारण इस कलंक को धोने के विचार से उन्होंने

बादशाह से सुलह कर ली और उसे सांत्वना देने के विचार से जनरल कार्नेक स्वयं बादशाह के डेरे पर उससे भेंट करने गया पहुँचा।

बादशाह यद्यपि अंग्रेजों के हाथ बुरी तरह परास्त हो चुका था तथापि वह इन्हें अभी भी निरा व्योपारी तथा अपनी रिआया ही समझता था।

कार्नेक जब बादशाह के शिविर में उपस्थित हुआ तो स्वयं भी खूब विनम्रता व आदर से पेश आया। विजेता होते हुए भी शिविर में आने से पूर्व ही उसने शाही शिष्टाचार के विषय में विधिवत जानकारी प्राप्त कर ली थी। आने से पूर्व उसने सम्राट को संदेश भेजा था कि उनकी अंग्रेज रिआया का एक तुच्छ सेवक जौन कार्नेक उनके हुजूर में हाजिर हो अपनी ओर से इताअत[1] पेश करना चाहता है। सम्राट फूला नहीं समाया और भेंट की तुरंत आज्ञा दे दी। कार्नेक ने बादशाह के सम्मुख पहुँचते ही मुगल दरबार के शिष्टाचार के अनुसार जमीबोस किया और खड़ा रहा।

उसने कहा, 'जहाँपनाह से मुलाकाट से हमारा किस्मट बड़ा हुआ है और अब हम आडाब (आदाब) बजाकर इटाअट (फर्मांबरदारी) करना मांगटा है।' उसने नजर पेश की। 'यह नजर ईस्ट इंडिया कंपनी की तरफ से पेश है।

'अल्लाह हमारी अंग्रेज रिआया पर मह्रोकरम[2] बरसाये और तरक़्क़ी दे।' नजर क़बूल हो गयी थी।

'हम अपने कसूर का मुआफ़ी भी चाहटा है, योर मैजेस्टी।'

यह नये शब्द सुनकर बादशाह ने त्योरी चढ़ायी तो पीछे खड़े करीमुल्ला ने समझाया योर मैजेस्टी का मतलब है हुजूर, जहाँपनाह।

शाहआलम आश्चर्य प्रदर्शित करते हुए बोला, 'कसूर कौन-सा कसूर।'

'हमने बाडशाह से लडाई में मुकाबिला करने की गुस्टाकी जो किया है।'

बादशाह गद्‌गद्‌ हो गया और बोला, 'नहीं, नहीं—तैमूरिया खान-दान में तो हर बेटे ने अपने बाप से बग़ावत की है लेकिन कौन-सा बाप ऐसा हुआ जिसने बेटे को मुआफ़ न किया हो। तुम्हारा कसूर मुआफ़ किया जाता है।'

---

1. फर्मांबरदारी, आज्ञापालन 2. दया व कृपा

'योर मैजेस्टी पटना टशरीफ ले चलें और वहाँ आराम से रहें। मीर कासिम को भी आपकी डुआओं (दुआओं) का इंटजार है।'

और इसी तरह की चिकनी-चुपड़ी बातों से सम्राट अपनी पराजय भूलकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि चाहे देर से ही सही, इन्होंने अपनी गलती महसूस तो की। वह पटना में भारी शानोशौक़त से दाख़िल हुआ—साथ में चारों ओर अंग्रेज़ी फ़ौज भी चली।

पटना पहुँचकर 12 मार्च को बादशाह के पास नवाब मीर कासिम जो हाल ही में अंग्रेजो की कृपा से मीर जाफर की जगह बंगाल का नवाब बना था, उपस्थित हुआ और बादशाह को ससम्मान नजर पेश की। बादशाह ने नजर कबूल करके मीर क़ासिम को बंगाल के नवाब के पद पर स्थाई घोषित कर दिया और जश्न मनाये जाने लगे। यहाँ अंग्रेजों ने बादशाह के खर्च के लिए एक हजार रुपये रोज के बाँध दिये।

सम्राट यद्यपि सिंहासनरूढ हो गया था तथापि वह इमादुल्मुल्क व नजीबुद्दौला के भय से दिल्ली नहीं जा पा रहा था। इमाद उसका प्रारंभ से ही विरोधी था तथा नजीब भी नृशंस तथा निरंकुश था। अतः सम्राट ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से बातचीत करना चाहा कि वह दिल्ली पर आधिपत्य मे उसे मदद करे।

शुजाउद्दौला टालमटोल करता, उतनी ही सम्राट को दिल्ली जाकर अपने पूर्वजो के सिंहासन पर बैठने की उत्सुकता बढ़ती। एक दिन उसने शुजा को बुलाकर कहा—

'शुजा, हम काफ़ी दिनो से दिल्ली की तरफ़ कूच करने के ख़्वाहिशमंद हैं, मगर तुम लैहतलाली कर रहे हो—हमारे ख़याल से इस देर का ज़रूर कोई सबब होगा।'

'जहाँपनाह बजा फरमा रहे हैं। मैंने भी अपने मुसाहिबों और अफ़सरान फ़ौज से मशविरा किया है और इस पशोपेश में हूँ कि किस तरह इस काम में कामयाबी हो।'

'बोलो, बोलो, साफ क्यो नहीं कहते कि तुमने क्या तय किया है।'

'हुज़ूर मेरे ख़याल से तो हमें पहिले अपनी माली हालत सुधारना

ज़रूरी है—फिर थोड़ी सिपह[1] व मुल्क़ मे भी इज़ाफ़ा[2] हो जाये तभी दिल्ली पर कब्ज़ा करना आसान होगा। मैं यह नही चाहता कि किसी क़दर हमें नाकामयाबी का मुंह देखना पड़े क्योंकि यह शाही खानदान की इज़्ज़त का सवाल होगा।'

'बिलकुल दुरुस्त, लेकिन इसके लिए क्या करना होगा ?'

'जहांपनाह, मुझ नाचीज़ की राय मे तो हमें बुंदेलखंड पर हमला कर देना चाहिए ताकि वहां का इलाका हमारे हाथ आ जाये।'

'बिलकुल माकूल राय है वज़ीर, इसके लिए फ़ौरन तैयारियां शुरू कर दी जायें। हमारे ख़याल से बरसात गुज़रते ही हमे उधर का कस्द कर लेना चाहिए।'

'जो हुक्म आलमपनाह' और शुजा ने विदा ली।

शाहंशाह के शिविर यमुना के किनारे लगे थे, इलाहाबाद के पास ही, और तरह-तरह के जश्न मनाये जा रहे थे—साथ ही बुंदेलखंड पर चढ़ायी के लिए सभी सेनापतियों को हर तरह की तैयारियां करने के आदेश भी दे दिये गये थे।

आज अंग्रेज़ी गायकों का दल आया हुआ था सम्राट के हुज़ूर मे कुछ मनोरंजन पेश करने। दल में तीन तरुण तथा दो किशोरियां थी तथा यह दल कार्नेक का लिखा परिचय-पत्र भी लाया था। मंज़ूर अली खां ने बादशाह को यह पत्र पढ़कर सुनाया तो कार्नेक का नाम सुनते ही वह बहुत खुश हुआ और शाम को संगीतज्ञो की महफ़िल का हुक्म दिया।

शाम होते न होते, शिविर मे कई तरह के विदेशी बाजों की ध्वनि गूंजने लगी तथा दोनो लड़कियां थिरकने लगी। शाहंशाह को अंग्रेज़ी संगीत तो अधिक पसंद नही आया, किंतु दोनो किशोरियां उसे बहुत आकर्षक लगी। उसने मंज़ूर अली को इशारा किया और कान में कुछ फुसफुसाया। मंज़ूर जो ऐसी आज्ञाओ के पालन मे बहुत माहिर था, थोड़ी देर बैठा रहा और अचानक हार्वे, जो उस दल का अगुआ था, को इशारा करके बाहर ले गया।

---

1. फ़ौज, सेना 2. बढ़ोत्तरी

पता लगा कि एमिली अविवाहित है केवल सोलह वर्ष की आयु है, मैरीना की मगनी हो चुकी है और वह 20 के लगभग है। एमिली हिंदुस्तानी भी बोल सकती है और यदि सम्राट चाहें तो उनसे एकांत में भेंट कर सकती है। इससे आगे की कार्रवाई सम्राट तथा एमिली के पारस्परिक आकर्षण एवं स्वतंत्र निर्णय पर निर्भर होगी। शादी करना चाहें तो जहाँपनाह शादी कर सकते हैं उससे।

'शादी ? फिरंगी से शादी' जब मंजूर ने सारी बातें बतायीं तो बादशाह बोला।

'जी हाँ, आलमपनाह।'

'नहीं यह नहीं हो सकता।'

'जी आलमपनाह यही मैं भी सोच रहा हूँ कि फिरंगी को यह दर्जा कैसे नसीब हो सकता है।'

'हाँ मंजूर, यह तो मुमकिन नहीं, लेकिन किसी तरह इसे यहाँ कुछ दिनों रोककर शाहंशाहे हिंदोस्तान के हरम में रखने का इंतजाम तो करो।

'जी आलीजाह बंदा पूरी कोशिश करेगा, और इंशा अल्लाह कामयाब भी होगा।'

'हम जानते हैं, हम जानते हैं।'

और मंजूर अली ने इंतजाम कर दिया।

बादशाह के पास जब पहिले रोज एमिली पहुँची तो उसने बड़े अदब से कहा, 'योर मैजेस्टी, माइ्ट्य अर्ज—'

'तस्लीमात।'

'क्या इस्म है तुम्हारा ?'

'इस्म, इस्म क्या होता है, योर मैजेस्टी ?'

'नाम, नाम क्या है ?'

'ओह नाम' मुस्कराते हुए वह बोली, 'मेरा नाम एमिली है, योर मैजेस्टी।'

'यह क्या अल्फ़ाज़ बोलती हो तुम ! इयोर…?'

'जी योर मैजेस्टी।'

'हाँ, यह हमें अच्छा नहीं लगता, तुम हमें जहाँपनाह या आलमपनाह

कहो।'

'ओह अच्छा,' उसने बोलना सीखा, 'जेहा पेनाह या…'

'आलमपनाह' सम्राट ने दोहराया।

'हां, हां, आलम पेनाह' एक दो बार और बोलने के बाद उसने ठीक-ठाक-सा बोलना सीख लिया।

'टो आलम पेनाह हमका को पसड करना मांगटा या नई ?'

'ज़रूर ज़रूर हमने तुम्हें बहुत पसन्द किया है।

'ओह हमारा अच्छा किस्मट होना है, हमने भी योर—नहीं, आलम पेनाह को पसड करना मांगटा।'

'ज़रूर-ज़रूर शुक्रिया। आज तुम यही रहो।'

'इढर हम क्या करेगा ?'

'हमसे शादी करना।'

'ओह बहोट अच्छा, बहोट अच्छा।' वह खुश होकर बोली, 'जेहा पेनाह से शाडी करके हम क्या होगा, जेहां पनाही ?' वह बहुत ही भोलेपन से बोली।

'नहीं-नहीं' हँसकर कौतूहल से सम्राट बोला।

'टो ?' उसने प्रश्नात्मक मुद्रा बनायी, 'इढर औरट का वास्टे 'ई' लगाटा है न ?'

'कई जगह, लेकिन हर जगह नहीं। तुमको मलका कहेंगे।'

'अच्छा मान लीजिये जेहा पेनाह, हम शाडी करने सकटा टो क्या करना होगा ?'

'तो तुमको हमारे हरम में सब बेगमों के साथ रहना पड़ेगा। बाहर जाओगी तो पर्दे में जाना पड़ेगा।'

'ओ नो नइ, नई, हम पर्दा मे नई रहने सकटा ! हम टो आजाड घूमना चाहटा।'

'तो शादी नहीं हो सकती, हां तुम कभी-कभी हमारे साथ रह सकती हो।' वास्तव में सम्राट चाहता भी तो यही था।

'ओह जेहा पेनाह आप किटना अच्छा है, हमको बहुट मोहब्बट हो गया है टुम से—किटना अच्छा है टुम किटना खुबसूरट !'

'हाँ, हाँ, हम भी तुमको मोहब्बत करते हैं, तुम जब चाहो आ सकती हो, जब चाहो जहाँ चाहो जा सकती हो—सिर्फ़ हमको बताकर।'

'ओह सुप्रिम्मा, जेहा पेनाह आप किटना बहुट अच्छा है। किटना ग्रेट है—बडा डिल का है।'

और 'बड़े दिल के या ग्रेट' सम्राट को इस नयी प्रकार की भाषा बोलने वाली भोली-भाली बाला से भेंट कर बड़ा कौतूहल हुआ और उसे सहगामिनी बनाकर उसके इशारों पर चलने लगा।

....

लंदन नगर के चैरिंग क्रास नामक चौराहे पर प्रातःकाल महिलाओं और पुरुषों का तांता लगा था। कड़ाके की ठंड में भी लोग कौतूहलवश बढ़ते ही जा रहे थे।

'क्या है क्या है', एक महिला ने पूछा।

'कोई कुमारी एक बच्चा फेंक गयी है।' दूसरी ने बताया

'ओह कितना बड़ा है ?'

'बड़ा, अरे बड़ा कितना होगा, रात को जन्मा है जन्मते ही फिकवा दिया है।'

'पुलिस वाले क्या कर रहे हैं ?'

'करेंगे क्या वे देख रहे हैं—जीवित है या मृत !'

पुलिस प्रीफैक्ट विलसन ने अपने सहयोगी से कहा, 'शिशु जीवित है जल्द इसकी चिकित्सा का प्रबंध किया जाये।' और वे पुलिस की घोड़ा-गाड़ी में शिशु को ले आये। भीड़ छँटती जा रही थी। काफ़ी उपचार के बाद ठंड में सिकुड़ा हुआ शिशु थोड़ा हिलने-डुलने लगा और डॉक्टर वार्ड के मुख पर मुसकान छा गयी। उसे डॉक्टर वार्ड ने एक हाल ही की प्रसूता युवती मेरीना को जो उसी अस्पताल में भर्ती थी, लालन-पालन के लिए सौंप दिया। शिशु कन्या थी। युवती ने अपने पुत्र के साथ उसको भी घर पर ही रख लिया और पालन-पोषण करने लगी।

डॉक्टर वार्ड अविवाहित थे, अब 75 वर्ष की आयु में विवाह करते भी क्या, फिर उनकी डॉक्टरी इस धड़ल्ले से चल रही थी कि उन्हें घर-गृहस्थी के लिए फुरसत ही कहाँ मिलती थी। जैसे-जैसे यह बालिका बड़ी होती,

डॉक्टर का मोह उसके प्रति बढ़ता जाता। वे मैरीना के घर नियमित उसे देखने जाते और वह एक वर्ष की हो चली थी। डॉक्टर को देखते ही वह जोर से किलकती 'पा···पा!' और डॉक्टर का दिल भर आता। वह उसके निकट और निकट होता जाता। अब वह अपने दवाखाने पर भी कम ध्यान देने लगा लेकिन लड़की की विशेष देखरेख रखने लगा। जब लड़की का बपतिस्मा (ईसाइयों में नामकरण संस्कार) हुआ तो उसका नाम एमिली रखा गया था। एमिली तीन वर्ष की भी नहीं थी कि डॉक्टर वार्ड उससे विछोह होने पर व्याकुल रहने लगा। जैसे उसका कुछ खो गया हो। अतः एक दिन उसने एमिली को अपने घर ले आने का निश्चय कर लिया।

डॉक्टर वार्ड के पास अपार संपत्ति थी—अतः उसने एमिली की देख-रेख के लिए एक आया और एक नौकरानी और रख ली। यह तो केवल दिखाने मात्र को थी, अब अधिकतर डॉक्टर का समय बच्ची की देखभाल में निकलता था तथा दवाखाने पर बहुत कम ध्यान देता था। उसके रोगी जो पुराने थे उसके घर ही आने लगे और नयों की उसे पर्वा न थी। एमिली को अब माता और पिता दोनों का प्यार वार्ड से मिलने लगा और वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गयी।

डॉक्टर अब अस्सी वर्ष की आयु में पहुंच रहा था तथा दिनों-दिन अशक्त होता जा रहा था—फिर भी एमिली के कारण उसका जीवन बढ़ता ही जा रहा था। यों तो जिजीविषा मानव की सामान्य प्रकृति है किंतु जब जीना उद्देश्यपूर्ण हो तो जीने की ललक और बढ़ जाती है। वार्ड के जीवन का उद्देश्य अब एमिली में केन्द्रित था और वह गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते अपनी आयु से संघर्ष करता जा रहा था। फिर भी अब एमिली की चिंता उसे रात-दिन सताती रहती थी। और जब एक दिन उसे अपने महाप्रयाण का पूर्वाभास हुआ तो उसने वकील को बुलाया और एमिली के नाम अपनी पूरी संपत्ति का वसीयतनामा कर दिया। किंतु महाप्रयाण में तो अभी बहुत देर थी। डॉक्टर बिल्कुल ठीक हो गया। वसीयत के समय एमिली दस वर्ष की तथा पांचवीं कक्षा की छात्र थी। उसके कई बालक-बालिका मित्र हो गये थे अतः वह पहले की भांति डॉक्टर की ओर ध्यान नहीं देती थी। जब वह ग्यारह वर्ष की हुई तो उसे धन वैभव तथा स्वतंत्र जीवन के आनंद का

आभास होने लगा था और वह सतत् यह प्रतीक्षा करने लगी कि कब डॉक्टर मरे और कब वह सारी संपत्ति का स्वतंत्रतापूर्वक उपभोग करे। मित्रों और पड़ोसियों से उसे यह तो बखूबी ज्ञात हो गया था कि डॉक्टर उसका पिता नहीं है क्योंकि वह प्रारंभ से ही अविवाहित है।

कई मित्रों ने तो उसे और भी अधीर बना दिया और अब वह कभी-कभी बूढ़े डॉक्टर की उपेक्षा तथा अपमान भी करने लगी। डॉक्टर की अनन्य आत्मीयता व प्रेम तो एमिली में ही केन्द्रित था, अतः वह ऐसी छोटी-मोटी घटनाओं पर बड़ा उदार दृष्टिकोण अपनाता और एमिली को और अधिक प्यार करने लगता।

अभी वह तेरह वर्ष छह मास की थी कि डॉक्टर पुनः बीमार पड़ा, उसने काफ़ी लापरवाही बरती और एक दिन जब वह बहुत छटपटा रहा था—निशक्त, निस्तेज सा एमिली क्रूरतापूर्वक उसकी छाती पर चढ़ बैठी और अपनी पूरी ताकत से उसका गला घोंट दिया। डॉक्टर के निस्तेज हाथ विरोध एवं सुरक्षा में एमिली की बाँहों पर पहुँचे लेकिन कुछ प्रभाव न हो सका और डॉक्टर के प्राण-पखेरू उड़ गये। उसकी आँखें बाहर निकल आयी थी—अतः कई पड़ोसियों को कुछ संदेह हुआ तो पुलिस को सूचना दी गयी और पुलिस ने अपनी ओर से मामले की विस्तृत जाँच आरंभ कर दी।

नवाब शुजाउद्दौला ने बादशाह को संदेश भेजा कि बुंदेलखंड पर आक्रमण करने के लिए उपयुक्त समय आ पहुँचा है, सारी तैयारी हो चुकी है। वास्तव में उसने थोड़ी-सी फ़ौज ही तैयार की थी। बादशाही लश्कर तथा शुजाउद्दौला की फ़ौजें मिलकर वीर बुंदेला छत्रसाल के प्रपौत्र हिंदूपति से बुंदेलखंड में मुठभेड़ को रवाना हुई। रास्ता इतना अनुपयुक्त था कि दोनों फ़ौजें रास्ते में ही थककर पस्त हो गयीं। इधर हिंदूपति को जब ज्ञात हुआ कि बादशाह चढ़ाई कर रहा है तो पहले तो बहुत घबराया किंतु हिम्मत नहीं हारी और अपने राज्य की सीमा पर सेना जमा करने लगा। जब बादशाह की थकी-माँदी फ़ौज वहाँ तक पहुँची तो बुंदेले वीरों ने खाँडे और तीरों से उन पर

आमन्त्रित किया और गौरवपूर्वक इन्हें खदेड़ दिया—अतः बादशाह को बहुत आनन्दजनक दरबार मिले तथा लौट करके वह [illegible] और यमुना किनारे इलाहाबाद आकर ही टिका।

पूर्व में अंग्रेजों का जोर बढ़ता जा रहा था और बादशाह के द्वारा नियुक्त किया हुआ नवाब मीर क़ासिम जो अंग्रेजों का भी विरुद्ध था. अंग्रेजों ने हटाकर मीर जाफ़र को पुनः बंगाल का नवाब बना दिया। मीर क़ासिम ने एक बहुत ही अनुनयपूर्ण संदेश बादशाह के हुजूर में भेजा जिसका आशय था कि अंग्रेज अपनी बातों से बाज नहीं आते थे और खजाने को तरह-तरह से बर्बाद करते थे। साथ ही कंपनी के सभी अधिकारी अपना व्यक्तिगत सामान लाने में करों की चोरी करते थे इसलिए उसने उनका विरोध किया और फलस्वरूप उसे गद्दी से हटाकर मीर जाफ़र को नवाब बना दिया है। क्योंकि इसमें शाहंशाह की तौहीन है, इसलिए यह लाजिमी होगा कि पुनः हमला करके मुझे नवाब बनाया जावे और अंग्रेजी कंपनी की इस नाजायज दखलंदाजी पर तुरंत अंकुश लगाया जावे।

बादशाह पुनः बिहार-बंगाल विजय के स्वप्न देखने लगा। वास्तव में वह इस इलाक़े पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने को सदा लालायित रहता था। मीर क़ासिम शुजाउद्दौला के पास मदद के लिए आया था। इस तरह मीर क़ासिम, शुजाउद्दौला और सम्राट शाहआलम की फ़ौजें बिहार की ओर आगे बढ़ने लगी। उधर मेजर मुनरो के नेतृत्व में अंग्रेजी फ़ौजें भी इनका विरोध करने आगे बढ़ी। अंग्रेजी सेना के बहुत से हिन्दुस्तानी नायक व हवलदार शाही फ़ौज की मदद के लिए तैयार थे तथा इनके द्वारा तरह-तरह की गुप्त सूचनाएँ भी शाही खेमों में पहुँचाई जा रही थी। बड़े [illegible] से शाही सेना मुक़ाबिले के लिए आगे बढ़ी तथा ऐसा लगा कि
निश्चित है। शुजाउद्दौला भी तरह-तरह के सपने देखने लगा
भी विजय की पूरी आशा थी। इसी समय अंग्रेजी सेना
पर रुकी और उसने अनेक हिंदू व मुसलमान अधि
(फ़ौजी मुक़द्दमा) किया और उनमें से बहुत सों को
करीब सत्तर सिपाहियों को भी तोप के गोलों से
एक पूरी-की-पूरी पल्टन को भी अत्यंत

समाप्त कर दिया गया। अंग्रेजो ने इनके स्थान पर शीघ्रता से नयी भर्ती कर ली और पटना के पास आ डटे। अब बादशाही सेना का अंग्रेजी सेना से संपर्क बिलकुल समाप्त हो गया क्योकि अंग्रेजी सेना के वे ग़द्दार सिपाही और नायक वगैरह जिनके कारण बादशाही सेना अपनी विजय के प्रति निश्चित थी गिन-गिनकर मार दिये गये थे। जब शाही सेना में यह समाचार पहुँचा तो बड़े-बड़े अधिकारी, मीर क़ासिम, शुजा और स्वय बादशाह का मनोबल बुरी तरह टूट गया। यहाँ तक कि जब लड़ाई हुई तो मीर कासिम के कुछ सिपाही अंग्रेजो से जा मिले। शाही फ़ौज की बुरी तरह पराजय हुई और शुजाउद्दौला ने रणक्षेत्र से भागकर अपनी जान बचायी।

पटना के युद्ध से सबसे पहले मुगल सिपाही भागे। वे फुलवाड़ी की ओर जो पटना से लगभग सात मील है पहुँचे। सम्राट शाहआलम इन तमाम फ़ौजों के कई कोस पीछे था। अतः जैसे ही उसे इस भगदड़ की सूचना मिली तो वह भी शुजाउद्दौला के पास फुलवाड़ी पहुँचा। भविष्य के कार्यक्रम की योजना यही बनायी जाने लगी।

शाही फ़ौज मे मीर कासिम अली व शुजाउद्दौला की फ़ौज के अलावा राजा बलवतसिंह, जमीदार बनारस, इनायत खाँ रुहेला, हिम्मत बहादुर गोसाई एव उमराव गोसाई की नागा और गोसाइयो की पलटनें भी शामिल थी। यद्यपि इन सबमे 133 तोपो के साथ लगभग पचास हज़ार सवार व पैदल थे फिर भी विभिन्न सेनापतियो मे किसी प्रकार का सजीव सपर्क व सहयोग का अभाव होने से वे रास्ते भर आपस में ही लड़ते-भिड़ते और लूटते-खसोटते रहे थे।

फुलवाड़ी पहुँचे तो भयानक गर्मी शुरू हो गयी थी और बरसात का इतज़ार था। यहाँ से इनायत खाँ रुहेला तो मय अपनी फ़ौज के विदाई लेकर रुहेलखड चला गया लेकिन बादशाह, आलीजाह मीर क़ासिम अली और नवाब शुजाउद्दौला ने यही तय किया कि बरसात के तुरत बाद पुनः संगठित रूप से अंग्रेजो से लोहा लिया जाये। और वे पुन. रंगरेलियों में डूबे रहे। जून मास में ये सब फ़ौज सहित बक्सर पहुँचे और वर्षा ऋतु की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

सम्राट हसीना, रशीदन और अपने हरम की अन्य महिलाओं को तो इलाहाबाद में ही छोड़ आये थे, किंतु एमिली बराबर उनके साथ ही रहती थी। वह बादशाह के काफ़ी मुँह लग गयी थी तथा कई सेनापतियों से भी बहुत कुछ घुलमिल गयी थी।

बादशाह प्राय: अपने हरम की स्मृति में डूबा रहता। खास तौर से रशीदन (जिसका नाम सम्राट ने नगमा रख दिया था) उन्हें बहुत याद आती क्योंकि थोड़े ही दिनों में नगमा ने उसे अपना बना लिया था। इधर नगमा भी सम्राट के बिछोह में अनमनी-सी रहती और उसे नज़ीर फिर याद आने लगता। नज़ीर की हवेली में जब वह कैद रही थी तब के नज़ीर के व्यवहार की एक-एक स्मृति उसे कुरेदती और कभी-कभी वह महसूस करने लगती कि उसे नज़ीर से मुहब्बत हो गयी है। वह उसको अपने मस्तिष्क से हठात् दूर करने का प्रयत्न करती किंतु वह रह-रहकर उसके सम्मुख उपस्थित हो जाता।

इधर सम्राट की रातें तो एमिली के साथ तरल होतीं, दिन में भी बहुत कुछ वह अपना मन बहलाव उसी से करने लगा था। इसी तरह बरसात बीत गयी और शाही फ़ौज ने पुन: बिहार पर आक्रमण करने की तैयारियाँ शुरू कर दी। यह लोग बक्सर में ही डटे थे कि मेजर हैक्टर मुनरो के नेतृत्व में अंग्रेज़ी फ़ौजें आ पहुँची। अंग्रेज़ी सेना में कुल सात हज़ार पियादे व सवार थे जिनमें से आठ सौ बावन गोरे व शेष हिंदुस्तानी थे। तोपों की संख्या कुल बीस थी। 23 अक्टूबर के दिन दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। सम्राट, शुजा-उद्दौला एवं मीर कासिम की सेनाओं ने अंग्रेज़ी सेना पर आक्रमण किया किंतु बुरी तरह हार गयीं। लगभग दो हज़ार सवार व पैदल खेत रहे तथा मुख्य-मुख्य सरदारों में मियाँ ईसा, मुर्तज़ा खाँ, गुलाम कादिर, गुलाम यासीन, अब्दुल रज़्ज़ाक़, अली अकबर और मुहम्मद रज़ा खाँ मारे गये। अंग्रेज़ी सेना ने सम्राट पक्ष की 133 तोपें भी अपने अधिकार में कर ली। मुगल सेना में भगदड़ मच गयी। इस भगदड़ को देखकर मुग़ल सेना के सिपाही आपस में ही मारकाट करने लगे और तुरंत मैदान साफ़ हो गया। अंग्रेज़ी सेना के कुल 847 आदमी ही काम आये।

मुगल सेना इतनी सरलता से हारने वाली नहीं थी किंतु अंग्रेजों ने

बनारस के जमींदार राजा बलवंतसिंह को अपनी ओर मिला लिया था। इस सेनापति ने अपने मोर्चे में अंग्रेज़ी पल्टन को प्रवेश दे दिया था, इसीलिए उसकी चढ़ बनी थी।

बक्सर से शुजाउद्दौला लखनऊ पहुँचा और वह इतना हौल दिल हो गया था कि अपने कुटुंब व धन-दौलत को लखनऊ में रखना उसे ख़तरे से ख़ाली नहीं नज़र आया— अतः वह सबको एकत्रित करके बरेली पहुँचा और वहाँ शरण ली। मीर कासिम अली खाँ ने रामपुर आँवले के पास अतरछिडी में जाकर शरण ली थी। उसके परिवार को जो पहले इलाहाबाद में ही था, वज़ीर शुजाउद्दौला की फ़ौज ने लूट लिया था। अतः वह सबको साथ लेकर अतरछिडी पहुँच गया था। इधर मेजर फ्लेचर और स्टुअर्ट ने लखनऊ पहुँचकर दो पल्टनों की सहायता से अवध पर कब्ज़ा कर लिया और वहाँ का शासन-प्रबंध अपने हाथ में ले लिया।

देहली से कूच करने के बाद अब्दाली कई स्थानों पर पड़ाव करता हुआ सरहिंद के करीब आ पहुँचा था और उसकी फ़ौज ने एक बड़े मैदान में डेरे लगा रखे थे। मीलों लम्बे ये डेरे रात्रि में एक बड़े नगर की भाँति दिखायी देते थे। हाल ही में होली हो चुकी थी, चारों ओर गेहूँ के खेत बुढ़िया कर अपने पकने का आभास दे रहे थे—सरसों की हरियाली व पीले फूल भी अब सुनहरे नज़र आने लगे थे तथा जगह-जगह किसान फ़सल काटने में व्यस्त थे—तभी इस टिड्डी दल ने मीलों तक फसल का सफ़ाया कर दिया और रास्ते के गाँवों को बुरी तरह लूट लिया। जगह-जगह अमराइयों में आम पर बौर आ रहा था और कहीं-कहीं छोटी केरियाँ उभर आयी थीं—सारा वातावरण सुगंधित-सा हो रहा था इनके आसपास। ऐसी ही एक अमराई के पास अहमद शाह दुर्रानी का तंबू लगा था। आसपास मीलों तक उसके फ़ौजियों के डेरे लगे थे। दुर्रानी ने प्याले की तरफ़ इशारा किया और एक गुलाम सुंदरी ने वह लबालब भर दिया। दुर्रानी ने नाक-भौं चढ़ाकर अपने वज़ीर से कहा, 'शाहवली, यह होली भी क्या बेहूदा जश्न है—छिः छिः कितना गलीज़! इसे ये त्यौहार कहते हैं—ये हिंदुस्तानी भी अजीब सिर-

फिरे होते है।'

'जी आलीजाह, मेरा खादिम बता रहा था कि जब मोतीनगर गाँव को लूटने वे लोग पहुँचे तो सब लोगों पर वहशत[1] सवार थी और पूरा का पूरा गाँव कीचड और मिट्टी मे सना हुआ था। आदमी इतने गलीज कि उन्हे कत्ल करने मे भी नफरत होती थी और औरतो को हाथ लगाना, हय तौबा, तौबा—हसीन मे हसीन छोकरी भी भूतनी नजर आती थी—बमुश्किल तमाम पूरे गाँव मे से सिर्फ़ दो छोकरियाँ छाँट पाये। गोबर, मिट्टी, कीचड, मैला व जाने क्या-क्या लपेटते है ये लोग एक-दूसरे पर।' शाहवली ने कहा।

'हाँ यही तो मैं कहता हूँ, आलमपनाह, यह हिंदुस्तान भी एक अजीब मुल्क है। कई जगह तो ऐसे-ऐसे लोग मिले कि सरासर देख रहे हैं कि पूरी फ़ौज मौजूद है और वह सिर्फ दस आदमी है, फिर भी लाठी, नेज़े, तलवार से मुक़ाबिला करने की जुरअत करते है। पिछले हफ़्ते सिर्फ़ पाँच आदमियो ने 20-25 सिहाहियों को घायल कर दिया—एक तो बाद मे मर ही गया।' क़ासिम ने कहा।

'उफ्फ ओ', शाह ने कहा, 'इतनी जुरंत ! इन लोगो का कलेजा भी कमाल का है। वाकई इसे हिम्मत कहना चाहिए। यह तो इन लोगो मे फूट व निफ़ाक बर्बादी का बाअस[2] है वर्ना इस मुल्क पर फतह पाना कोई दिल्लगी नही !'

'जी जहाँपनाह', शाहवली खाँ ने दाद दी ही थी कि खेमो मे चारो तरफ हंगामा मच गया। ढाल, तलवारो की खटाखट निस्तब्धता में सुनायी दे रही थी। एक सवार ने हाँफते हुए वजीर को बताया कि क़रीब 3-4 सौ सिखो ने छावनी पर हमला कर दिया है। सब बग़ले झाँकने लगे। आधे घंटे में यह हंगामा ख़त्म हुआ।

दुर्रानी के डेरे से करीब आधी मील दूर एक सिख सरदार इन्दरसिंह ने सौ सवार लेकर एकदम हमला कर दिया था। आन की आन मे इन दिलेर बहादुरो ने करीब डेढ सौ दुर्रानी सैनिको को मार गिराया और जब तक बाकी लोग तैयार हों तब तक नौ दो ग्यारह हो गये थे। उनके केवल नौ

1. पागलपन 2. कारण

आदमियो की लाशें ही छावनी मे मिली।

इस हमले से दुर्रानी सैनिक इतने घबरा गये थे कि वे अपने सिर पर पैर रखकर इधर-उधर भागकर छुप गये और अँधेरे के पर्दे मे अपनी जान बचायी। इस अप्रत्याशित हमले मे महिला क़ैदियो के शिविरो में भी भगदड़ मच गयी और बहुत-सी कैदी स्त्रियाँ अंधेरे के सहारे मुक्त होकर जहाँ-तहाँ भाग गयी।

अज़ीम भी ऐसी ही एक महिला शिविर मे था। उसने बहुत ही अच्छा मौक़ा देखकर तुरंत कुछ कपडे बगल में दबाये और भाग निकला। वह कई मीलो तक भागता रहा, भागता रहा और अंत में एक बरसाती पुलिया के नीचे जा छुपा और उसे नींद आ गयी। घबराहट मे जब नींद खुली तो वह फिर चलने लगा। दुर्रानी सैनिको ने हंगामे के बाद दूर-दूर तक भागे हुए कैदियो को मशालो के सहारे ढूंढा। कुछ लडकियाँ पकड़ मे भी आयी लेकिन अधिकांश गायब हो गयी थी और सुबह अहमदशाह ने फिर कूच का हुक्म दिया। अज़ीम बिना कुछ खाये-पिये तीन दिन रात बराबर चलता रहा। उसने जब पुलिया के नीचे शरण ली थी तभी अपने जनाने कपडे बदलकर साथ लाये हुए मर्दाने कपडे पहिन लिए थे। यह कपडे उसे अहमद ने लाकर इसीलिए दे दिये थे कि उचित अवसर पर उनका उपयोग हो सके। चलते-चलते अज़ीम के पैरो मे छाले पड़ गये थे और अब छाले फूटने लगे थे—कभी-कभी पैरो से ख़ून निकलने लगा था—लेकिन उसे एक ही छटपटाहट थी—मुक्त होने की और अभी भी उसे डर था कि कही दुर्रानी सैनिक पुनः उसे गिरफ़्तार न कर लें, हालांकि दुर्रानी फौज कोसों दूर पहुँच चुकी थी।

अज़ीम ने एक गाँव नारंगपुर मे देखा कि कुछ बैलगाड़ियाँ अनाज से लादी जा रही हैं। उसने मजदूरी का काम करने को कहा तो किसान ने बताया कि अगर करनी है तो गाडी के साथ शहर तक जाना पडेगा। रात को चौकसी रखनी है गाड़ियो की और वहाँ माल उतरवाना पडेगा। वह तो शहर जाना ही चाहता था मजदूरी तय कर ली और रात भर गाडी पर गेहुँओं के बोरो पर सोता रहा और पौ फटते ही देपालपुर पहुंच गया।

वहाँ लगभग एक सप्ताह रहकर अज़ीम ने करनाल पहुँचने की जुगत बिठा ली। करनाल मे कोई सस्ती सराय ढूँढ़ने निकला—एक सराय नन्हे

खां मे जैसे ही घुसा कि अहमद उसके गले में बाँहें डालकर लिपट गया।

'वाह भाई जान खूब मिले', कहते-कहते अज़ीम के आँसू आ गये। अहमद की आँखें भी तरल थी।

अज़ीम और अहमद ने अपने-अपने मुक्त होने से लेकर करनाल पहुँचने तक की दास्तानें एक-दूसरे को सुनायी। इस तरह अचानक मिल जाने को भी वे खुशक़िस्मती समझे थे और अब दोनों दिल्ली पहुँचने की योजना बनाने लगे।

पहुंचने को वे दिल्ली पहुंच गये लेकिन अपने टूटे-फूटे मकान में हसीना को न पाकर उन्हें बड़ा दुख हुआ। दोनों भाई घंटो तक पिछले खुशनुमा दिनों की याद कर-करके रोते रहे। घर मे कुछ सामान तो बचा ही नही था, दोनों रात-दिन परिश्रम करके आवश्यक सामान जुटाने में लग गये और दिल्ली के कोने-कोने मे अपनी बहिन की टोह लगाते रहे। कभी-कभी वे इंतज़ार करते कि शायद हसीना स्वतः ही घर चली आये—लेकिन सब निरर्थक था। हसीना तो दिल्ली से सैकड़ो मील दूर सम्राट के शिविर मे थी। अज़ीम ने एक सराय मे नौकरी कर ली थी और अहमद अपने किसी रिश्तेदार की सिफ़ारिश से दफ़्तर-मीर बख़्शी मे लिखने-पढ़ने के काम पर मुलाज़िम हो गया था। सब कुछ सामान्य रूप से चल रहा था किंतु अहमद और अज़ीम दोनो रात-दिन हसीना के बारे मे चिंतित रहते और उसे किसी प्रकार ढूंढ़ निकालने की योजना बनाते।

अभी डॉक्टर वाईं का अंतिम संस्कार हुआ ही था कि एमिली तुरत वकील के पास गयी और वसीयत के संबंध मे चर्चा की। वकील ने तुरत वसीयतनामा निकालकर एमिली के सम्मुख रख दिया। एमिली ने सरसरे तौर पर पढ़ा तो धक से रह गयी। इसमे केवल दो हजार पौंड की एमिली के नाम वसीयत थी बाक़ी सारी संपत्ति डॉक्टर ने विभिन्न शिक्षण सस्थाओं को दान-स्वरूप वसीयत मे दे दी थी। एमिली घंटो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर वसीयतनामे को देखती रही। उसकी निगाह एकदम छितरी-छितरी हो गयी थी और एक शब्द भी पढ़ने मे नही आ रहा था। उसके मर मे एक

असहनीय पीड़ा हो रही थी। वह तुरंत घर वापिस आ गयी और इतनी रोयी, इतनी रोयी कि अब उससे और नहीं रोया जा रहा था। शाम को जब उसके कुछ साथी-संगी आये तो सब हाल सुनाया। सबकी आँखें फटी की फटी रह गयी। 'अरे चिड़िया जाल समेत फुर्र हो गयी'। सब एक साथ बोल रहे थे और निराशा से अपने-अपने घरों का रास्ता लिया।

असल में पिछले दिनों जब डॉक्टर वार्ड ने एमिली के रंगढंग देखे तो वह समझ गया कि न तो अब यह सुधर सकती है और न ऐसी लड़की को अपनी गाढ़े खून-पसीने की कमायी ही देना न्यायसंगत होगा, अतः उसने एक दिन अपने वकील को बुलाकर चुपचाप वसीयत बदलवा दी थी।

डॉक्टर की मृत्यु के समय आँखें उभर आयी थी अतः पुलिस ने विस्तृत जाँच-पड़ताल करके कत्ल का मामला दर्ज कर लिया था। कई तरह की जाँच की गयी, गुप्तचरों से भी मदद ली लेकिन कोई सबूत नहीं मिला। इसी सिलसिले में मिस्टर स्लीमैन जो एक प्राईवेट गुप्तचर था एमिली के संपर्क में आया। उसने तरह-तरह के प्रश्न किये किंतु डॉक्टर के कत्ल का कोई सबूत नहीं मिल पाया। यद्यपि स्लीमैन के अनुभव ने यह पूरी तरह विश्वास कर लिया था कि क़ातिल सिवा एमिली के कोई नहीं है फिर भी केवल परिस्थितिजन्य सबूत के अलावा और कुछ न मिल सका। फिर एमिली की भोलीभाली सूरत, डॉक्टर की चर्चा आते ही नौ-नौ आँसू बहाना, भी साधारणतः किसी भी आदमी को यह विश्वास नहीं होने देते थे कि कत्ल एमिली ने किया होगा। एमिली पर मुकद्दमा तो चला किंतु वह साफ बच गयी।

जो भी हो स्लीमैन एमिली के इस दोहरे व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ क्योंकि उसमें भोलेपन के साथ मक्कारी, ढीठपन और चालाकी कूट-कूटकर भरे थे। स्लीमैन ने सोचा कि ऐसी लड़की जासूसी का काम बहुत कुशलता से कर सकेगी। उसने एमिली से संपर्क कर उसे अपनी गुप्तचर एजेंसी में काम करने का प्रस्ताव रखा। एमिली तो चाहती ही थी कि कहीं काम मिले और जासूसी का नाम सुनकर उछल पड़ी। स्लीमैन के यहाँ उसने तीन माह प्रशिक्षण प्राप्त किया और फिर नियमित रूप से काम में लग गयी। स्लीमैन की देश-विदेशों में भी गुप्तचर एजेंसी थी अतः एमिली

को जब उसने इस योग्य पाया कि वह विदेशों में भी जासूसी बड़ी कुशलता से कर सकती है तो उसे और प्रशिक्षण दिया। जब एक दिन ईस्ट इंडिया कंपनी ने उससे योग्य गुप्तचरों की माँग की तो स्लीमैन ने एमिली का भी नाम भेज दिया और उसके भाषा अनुविभाग में उसे हिंदुस्तानी सिखायी जाने लगी।

एमिली सोलहवें वर्ष में चल रही थी कि एक दिन डॉक्टर स्लीमैन ने उसे ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में भारत जाने को कहा। एमिली तुरंत तैयार हो गयी और कुछ दिनों फोर्ट विलियम रहकर भारत के बारे में कई प्रकार की जानकारी प्राप्त करती रही। ईस्ट इंडिया कंपनी की फ़ौजों के सेनापति जनरल कार्नेक ने उसे फ़ौजी गुप्तचरी का ज्ञान भी करा दिया और वह एक संगीतज्ञों के दल में बादशाह शाहआलम के डेरों में जा पहुँची और वहीं की हो गयी। एक ओर तो वह बादशाह का अपने अनुपम रूप-सौंदर्य से मनोरंजन करती और दूसरी तरफ़ विभिन्न शाही खेमों में जा-जाकर तरह-तरह की अफ़वाएँ फैलाती तथा सूचनाएँ एकत्रित करती। इनमें से जो भी काम की सूचना होती वह तुरंत अंग्रेज़ी सेना तक पहुँचा देती। जेम्स नामक व्यक्ति जो उससे पहले से निश्चित किये हुए विभिन्न स्थानों पर मिलता रहता था, यह सब खबरें अंग्रेज़ी सेनाओं में पहुँचा देता। जब अंग्रेज़ी सेना के ग़द्दार नायकों व सिपाहियों का उसे पता लगा तो मेजर मुनरो ने उन्हें तोप के गोलों से उड़वा दिया था और एक पूरी पल्टन को बहुत ही अपमानित करके समाप्त कर दिया था।

एमिली सिर्फ़ इतना ही नहीं करती थी—वह मुग़ल सेनाओं के सिपाहियों को भी कई तरह से दम दिलासा देकर ऐन लड़ाई के समय हथियार डाल देने या भाग जाने को भी राज़ी कर लेती थी। इस सबमें वह इतनी सावधानी बरतती थी कि उस पर किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं होता था।

राजा बलवंतसिंह जो अपार सम्पत्ति का स्वामी था तथा बनारस का विख्यात ज़मींदार था, एमिली के संपर्क में आया तो मदहोश हो गया। देह तुष्टि तो उसे प्राप्त होती ही साथ ही काफ़ी धन-दौलत का लालच भी उसे दिया जा चुका था। कुछ पेशगी धन भी अंग्रेज़ों ने एमिली के माध्यम से—

उसके हवाले कर दिया था।

यही कारण था कि बक्सर की लड़ाई में राजा बलवंतसिंह की गद्दारी के कारण पराजय हुई। उसने अपने मोर्चे के पार्श्व में अंग्रेजी सेना को सरलता से प्रविष्ट हो लेने दिया था।

बक्सर की लड़ाई में जब भगदड़ व लूट-खसोट हुई तो एमिली अंतर्ध्यान हो गयी और उसके बाद हजार कोशिशों के बावजूद वह शाहआलम को नहीं मिल सकी। वह वर्षों प्रतीक्षा करता रहा लेकिन एमिली उसके जीवन के इतिहास से सदा के लिए लुप्त हो चुकी थी।

सम्राट शाहआलम बक्सर की पराजय के बाद बिलकुल अकेला पड़ गया था। शुजाउद्दौला ने इस अभियान के समय सम्राट की उपेक्षा करके कई बार अपमानित किया था। इधर फोर्ट विलियम कलकत्ता में ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर हेनरी वेंसीटार्ट ने यह उचित समझा कि सम्राट से सुलह की चर्चा करना कंपनी के हित में होगा अतः जैसे ही वेंसीटार्ट का प्रस्ताव सम्राट को मिला सम्राट तुरत राजी हो गया क्योंकि वह अंग्रेजों की मदद से देहली का वास्तविक अधिकार पाने के लिए बहुत आतुर था। अंग्रेजों ने उसे अवध का सूबा देने का वचन दिया और बातचीत चलती रही।

सम्राट फिर सब कुछ भूलकर रंगरेलियों में डूब गया। नगमा (रशीदन) और हमीदा दोनों एक-से-एक खूबसूरत थी और इन दिनों वे ही मुख्यतः उसके मन बहलाव का साधन थीं। लेकिन इस मनोरंजन के समय भी सम्राट को एक टीस सदा ग्रसित करती रहती। 'क्या शाहशाह? शाहंशाहे हिंदोस्तान! बाप-दादों का तख्त कब से खाली पड़ा है और हम हैं कि खानाबदोश ज़िंदगी बिता रहे हैं। उफ़, यह भी कोई बादशाहत हुई। बादशाह, लेकिन कोई रिआया नहीं, शाहशाह, लेकिन कोई मुल्क नहीं—ताज नहीं, तख्त नहीं—कुछ नहीं! सूत न कपास जुलाहे को लट्ठम लट्ठा! या परवर दिगार! यह भी क्या आलम है!' और फिर वह मराठों, अंग्रेजों, राजपूतों या जाटों में अपना कोई मददगार ढूंढ निकालने की कोशिश करता और इस दिमाग़ी कसरत के बाद भी कोई हल न निकल

पाने के कारण घंटों शून्य मे ताका करता। कुछ योजना बुनता, फिर उधेड़ डालता और फिर कोल्हू के बैल की तरह वही के वही।

आज ऐसे ही विचारों मे डूबा था शाहशाह। नगमा उसी पलंग पर अलसाई आँखें लिए सोच रही थी कि दिल्ली कितनी दूर है यहाँ से—उफ़ प्यारी दिल्ली, पता नही कभी जिंदगी मे देखने को मिलेगी भी या नही और फिर उसके मनस पटल पर छा गया नजीर!

वह सोच रही थी, 'नज़ीर को मैं प्यार क्यों करने लगी हूँ? यह मुहब्बत कैसी बला है जो उसकी मौजूदगी मे दिल मे नफरत भरती रही, लेकिन पीठ मुड़ते ही मुझे सौ-सौ फनो से डस रही है। अगर मुहब्बत करनी ही थी नज़ीर से तो उसकी इतनी इल्तजा क्यों ठुकरायी मैंने? कौन रोक रहा था मुझे? उफ़ नफरत—कातिल से नफरत, मेरे वाल्दैन के कातिल से नफरत। नही, नही वह कातिल कहाँ है—वह शरीफ़ज़ादा तो सिर्फ फँसा लिया गया था। लेकिन वे कातिल? क्या नाम था उसका, हाँ वह कमीना सुल्तान, वह हरामज़ादा अज़ीज। अगर कभी देहली पहुँच गयी तो एक-एक को नेस्तनाबूद कर डालूंगी—गिन-गिन के बदला लूंगी। और नज़ीर से? हाँ नज़ीर से भी! उसके हृदय के एक क्रूर-कोण से आवाज उठी और फिर सारे विचार गड्ड-मड्ड हो गये—सारा तारतम्य टूट गया। सोचना जैसे तूफ़ान मे फँस गया हो—एक भी लहर साफ़ नहीं—बिखरी-बिखरी, छितरी-छितरी और तभी सम्राट ने उसकी ओर करवट ली। उसके मांसल चिकने नितंबों पर हाथ फेरते हुए सम्राट ने अपनी ओर खींचकर उसे हृदय से लगा लिया।

प्रायः सम्राट अपने नशिश्त में बैठा मंजूर अली से कुछ मन्त्रणा कर रहा था कि एक कनीज ने आकर बताया कि कुछ फिरंगी आये हुए है और उससे मिलना चाहते हैं। सम्राट ने पहरेदार को बुलाकर पूछा कि कौन हैं। उसे ज्ञात हुआ कि कंपनी की ओर से जान कार्नक उससे भेंट करने आया है।

मई 1865 में जैसे ही क्लाइव पुनः भारत आया तो वह हेनरी वेंसीटार्ट की जगह फोर्ट विलियम का गवर्नर हो गया। क्लाइव अत्यंत दूरदर्शी और चतुर था। उसे सम्राट को अवध दे देने का वायदा बिलकुल अनुचित लगा

क्योंकि वह भली-भाँति जानता था कि उस प्रांत पर अशक्त सम्राट बिना अंग्रेजी मदद के अधिकार नहीं जमाये रख सकता। यही नहीं इस तरह की व्यवस्था से आये दिन नये-नये झंझट पैदा होते जायेंगे। अतः उसने कार्नेक को सम्राट से नये सिरे से चर्चा हेतु भेजा था।

सम्राट ने कार्नेक को अंदर भेजने का आदेश दिया। कार्नेक ज़मीबोस करने के बाद बोला, 'जहाँपनाह मुझे क्लाइव साहिब ने आपके हुजूर में पेश होने का हुक्म दिया है। कंपनी सरकार आपसे सुलह करना माँगटी है और अब आपको इलाहाबाद और कोड़ा के जिले डैना चाहटी है। आपकी हिफ़ाज़ट करना हमारा काम होगा और आपकी वफ़ादार अंग्रेज रिआया की टरफ से एक अफ़सर आपके पास रहेगा।'

'वह अफसर क्या करेगा ?' त्यौरी चढ़ाकर शाहंशाह ने पूछा।

'वह आपका खिडमट करेगा, अगर कोई डुश्मन आपको नुकसान पहुँचायेगा टो अंग्रेजी फ़ौज बुला लेगा और योर मैजेस्टी का मडड करेगा।'

'अच्छा, अच्छा लेकिन हमसे हमारी वफ़ादार अंग्रेज रिआया इसके बदले में क्या उम्मीद रखती है ?'

'उम्मीड, उम्मीड टो कुछ नहीं—बस एक फ़रमान चाहती है, बाडशाही फ़रमान।'

'फ़रमान, कैसा फ़रमान ?'

'बगाल की डीवानी का फ़रमान।'

'बंगाल की दीवानी का फ़रमान, लेकिन बंगाल मे तो तुमने मीर जाफर को नवाब बनाया है ! फिर हमारा फ़रमान क्यों चाहते हो ?'

'योर मैजेस्टी, नवाब और शाहंशाह मे ज़मीन-आसमान का फ़र्क होटा है। सारे मुल्क के असली हक़डार टो आप ही रहेंगे—आपका फ़रमान हमारे लिए बहुट इज्जट का बाइस होगा।'

और तैमूरिया तख्त के हकदार शाहशाह शाहआलम की आँखें चमकने लगी। आज भी हमारी शान है—इज्जत है ! आज भी हमारी अंग्रेज रिआया हमारे फ़रमान की जुस्तजू रखती है। सीना फुलाकर बादशाह ने अपनी सुंदर लम्बी डाढ़ी पर गर्व से हाथ फेरा और कार्नेक से कहा, 'ठीक है ठीक है, हम इसके बारे मे सोचेंगे और जल्द कोई फ़ैसला देंगे।'

'जहाँपनाह, फ़ैसला हमारे हक़ में होना चाहिए।'

'देखो इलाही ख़ैर करे—इंशाअल्लाह जो कुछ होगा तुम्हारे हक़ में अच्छा ही होगा।' और सम्राट खड़ा हो गया। जमींबोस करता हुआ कार्नक पीछे की ओर क़दम रखता हुआ बाहर आ गया और अपने शिविर की ओर चला गया जहाँ गवर्नर क्लाइव के किसी भी दिन आ पहुँचने की संभावना थी।

कई तरह के सलाह-मशविरे के बाद सम्राट अंग्रेजों की सभी शर्तें स्वीकार करने को तैयार हो गया और उसने बंगाल की दीवानी का अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के हक़ में फ़र्मान जारी कर दिया। कंपनी ने इसके बदले उसे 26 लाख रुपये सालाना की पेंशन देने का इकरार किया और इलाहाबाद और कोड़ा ज़िले उसे दे दिये। सम्राट इलाहाबाद में ही रहने लगा और एक अंग्रेजी कमांडर उसकी सुरक्षा के लिए सुलह की शर्तों के अनुसार उसके साथ रहने लगा।

इस सब व्यवस्था में जहाँ सम्राट पर क्लाइव ने एक बड़ा अहसान किया वहाँ अंग्रेज कंपनी तथा स्वयं के लिए एक सुगम मार्ग भी ढूँढ लिया। सम्राट, जिसको उत्तर से दक्षिण तक पूर्व से पश्चिम तक अब भी बहुत से लोग हिंदोस्तान का न्यायसंगत शासक मानते थे तथा कई बार उसे बंगाल आदि विजय करा के पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करते थे, अब उनके हाथ की कठपुतली बन गया था तथा उसके द्वारा जो बंगाल विजय कर लेने पर कंपनी को भारी नुकसान होता, उसकी संभावना टल गयी। क्लाइव ने अवध का इलाका इलाहाबाद तथा कोड़ा के ज़िलों को छोड़कर, शुजाउद्दौला से संधि करके उसे सौंप दिया अतः उत्तर पश्चिम की ओर अंग्रेजों ने अपनी सीमाओं पर एक मित्र स्थापित कर दिया जो इतना शक्तिशाली भी नहीं था कि कभी कंपनी के क्षेत्र पर हमला करे तथा अहसान से भी दब गया था। बंगाल की दीवानी प्राप्त कर क्लाइव को एक ऐसा अधिकार मिल गया था कि नवाब की आज्ञाओं की सरलता से अवमानना कर सकता था तथा उस प्रदेश से अधिकाधिक वित्तीय लाभ भी प्राप्त कर सकता था। यद्यपि क्लाइव को भलीभाँति ज्ञात था कि सम्राट बिलकुल शक्तिहीन है तथापि ब्रिटेन तथा अन्य देशों में विरोधपूर्ण आलोचनाओं से बचने के लिए

अभी भी शाहंशाह का फ़रमान बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि सभी देश अभी तक बादशाह को ही, जो कि इतने महान वंश से संबंधित था, संवैधानिक शासक मानते थे।

एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अंग्रेज़ों को यह भी हुई कि इस सब लेनदेन में उन्हें अपनी गाँठ से कुछ भी नहीं देना पड़ा।

बंगाल के लिए ही नहीं, सारे देश के लिए यह एक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी कि फिरंगियों ने मजबूती से अपना शिकंजा फैला दिया और उसे इतना कसा कि संपूर्ण देश में उन्हीं का साम्राज्य स्थापित हो गया जिसके कारण लगभग डेढ़ शताब्दी तक देश गुलामी की बेड़ियों में छटपटाता रहा। बंगाल की दीवानी तो अंग्रेज़ों ने हथिया ली लेकिन वहाँ के प्रशासन के उत्तरदायित्व से बिल्कुल मुक्त थे—यह एक बहुत ही विसंगतिपूर्ण व्यवस्था थी जिसका भार बंगाल बरसों तक ढोता रहा। लेकिन उस समय संपूर्ण देश ही प्रशासनहीन था। जिसकी लाठी उसकी भैंस का युग चल रहा था। मराठे, रुहेले, जाट, सिख, जो जहाँ बन पड़ता वहीं अपना अधिकार जमा लेता था तथा आम आदमी के सामने जो भी लगान या कर की माँग करता वही अपनी लाठी के बल पर प्राप्त कर लेता। कौन शासक हो कौन नहीं इसमें आम जनता की बहुत कम दिलचस्पी थी।

शाहआलम की सेवा में एक अंग्रेज़ रेज़ीडेंट नियुक्त कर दिया गया और इसी तरह दिन गुज़रते गये।

शाहआलम पहले कुछ दिनों इस नयी शांतिपूर्ण व्यवस्था से काफ़ी संतुष्ट रहा। धन भी उसे 26 लाख रुपये वार्षिक मिलता था किंतु उसके व्यक्तिगत मामलों तथा स्वतंत्रता में क़दम-क़दम पर बाधा डाली जाने लगी तो वह इस तरह के जीवन से ऊब गया। उसका अंग्रेज़ रेज़ीडेंट बार्टन पहले तो काफ़ी सम्मानपूर्वक व्यवहार करता रहा किंतु थोड़े ही दिनों में उसने कई तरह बादशाह पर यह प्रकट कर दिया कि वह अंग्रेज़ों से पेंशन पाने वाला मात्र एक क़ैदी है। यही नहीं बार्टन उसके दैनिक व्यक्तिगत जीवन में भी दख़लदाज़ी करने लगा।

एक दिन फ़्रांस से शराब के कुछ जार आये तो बादशाह के व्यक्तिगत ख़ादिम अख़्तर को बार्टन ने अपने कार्यालय में बुलाया और उसे कहा,

'यह क्या टमाशा बना रखा है टुम लोगों ने ? फ्रांस से अब भी शराब मँगाटे हो—हमारा वज़ीफ़ा पाने वाला हमारे दुश्मन मुल्क से शराब मंगाये ! सब जार इढर लाओ।'

जब बादशाह तक यह ख़बर पहुँची तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने जार भेजने से इन्कार कर दिया। बार्टन घोड़े पर सवार होकर बादशाही खेमे तक आ गया था कि मज़ूर अली ने बीच-बचाव करके बार्टन को समझा दिया कि इस शराब को वापस करने में बादशाह की बहुत तौहीन होगी लेकिन आइंदा फ्रांसीसी शराब नहीं मँगायी जायेगी।

एक दिन बादशाह के दो मुसाहिब मोहसिन अली खाँ और रहमत खाँ घोड़े पर सवार होकर जा रहे थे कि उधर से बार्टन कुछ सिपाहियों के साथ आ निकला और मोहसिन का रास्ता रोककर बड़े असभ्य ढंग से खड़ा हो गया और पूछने लगा—

'कहाँ जाटे हो ?'

'आपको क्या मतलब।'

'मटलब, मटलब, हमसे पूछना माँगटा ? जानटा नहीं हमारा ख़िराज[1] पाटा है टुमारा मालिक। टुम इढर लखनऊ की टरफ जा रहा है !'

मोहसिन ने बग़ैर जवाब दिये घोड़े की लगाम खींची और एक तरफ़ से आगे बढ़ने लगा कि बार्टन के सिपाहियों ने रास्ता रोक लिया, लेकिन रहमत जो मोहसिन के पीछे था आगे बढ़ गया। मोहसिन ने तलवार खींच ली और घुमाता हुआ बिजली की तेज़ी से आगे बढ़ गया और घोड़े को सरपट दौड़ा दिया।

बार्टन के एक सिपाही की बाँह कट गयी और दूसरे के गाल पर गहरा घाव लगा। वह सिपाहियों को आज्ञा देता हुआ ख़ुद भी उसी तरफ़ चला, लेकिन दोनों मुग़ल सरदार काफ़ी दूर निकल चुके थे। दो-तीन मील घोड़ा दौड़ाकर वह वापस इलाहाबाद की तरफ़ मुड़ा और अपने मकान पर आकर दम ली। उसने अपने नायब को बुलाया और तुरत बादशाह को एक पत्र लिखवाकर भेजा कि जब भी आपका कोई आदमी इलाहाबाद से बाहर

1. पेंशन

जायेगा हमसे इजाजत लेगा और इन क़सूरवारों को जिन्होंने हमारे सिपाहियों को जख़्मी किया है माक़ूल सजा दी जाये। बादशाह ने कई बार पत्र पढ़वाया और सन्न से रह गया। अच्छी रही हमारी रिआया कि जिसको हमें कदम-क़दम पर इजाजत लेनी चाहिए। ये व्यौपारी तो दिन-ब-दिन सर पर चढ़े आ रहे हैं। शाहंशाह की धमनियों में बाबर का खून खौलने लगा, समझ क्या रखा है इन कमीनों ने। क्या हम कोई क़ैदी हैं! 26 लाख-26 लाख रुपये, हर वक़्त यही धौंस! इसके बदले में ये बनिये तो बंगाल, बिहार और उड़ीसा से करोड़ों रुपये बनाते हैं। बादशाह दाँत पीस-पीसकर रह गया। 'अगर एक बार देहली का तख़्त हासिल कर लूँ तो इस कमीने रेंज़ीडेंट को तो कुत्तों के सामने डलवा दूँगा। गीदड़ शेर का मुँह चाटने की जुरअत कर रहे हैं!'

फिर भी मीर मजूर अली व आकबत खाँ ने बादशाह को तरह-तरह से समझाकर तसल्ली दी।

'जहाँपनाह वक़्त की बात है, एक वह भी वक़्त था कि यही फिरंगी शाहंशाह खुल्द नशी[1] जहाँगीर के पास गुरबत और मुफ़लसी की हालत में अजमेर आकर गिड़गिड़ाये थे और शाहंशाह ने इन्हें तिजारत के लिए अहम सहूलियतें दी थीं—और आज'' ' आकबत कह रहा था।

मजूर बीच में ही बोला, 'हुजूरेवाला वह वक़्त नहीं रहा तो यह भी नहीं रहेगा।'

शाहंशाह शून्य में ताकने लगा, 'उफ़, क्या माहौल है, कहीं भी किसी को भेजते हैं तो यह कमीना रेंज़ीडेंट जासूसी करता है। मंजूर, हमारी नजर में तो हिंदुस्तान में मराठे ही हमारी मदद कर सकते हैं—सिर्फ़ मराठे और कोई नहीं।'

'जी आलमपनाह, मेरा भी यही ख़याल है।

'देखो ना, रेंज़ीडेंट रखा तो था हमारी नयाबत करने, हमारी इमदाद के लिए और यह है कि क़दम-क़दम पर हमें मायूस करता है—हमारे मुलाज़िमों के साथ बदसलूकी करता है।'

---

1. स्वर्गवासी

'लेकिन जहाँपनाह के हुजूर में पेश होता है तो बिलकुल भीगी बिल्ली बन जाता है।' आकबत ने कहा।

'भीगी बिल्ली। बिलकुल मेमना बन जाता है मेमना।' मंजूर ने कहा।

'लेकिन वह मेमने की खाल में भेड़िया है भेड़िया, ये सारे के सारे इंगरेज भेड़िये है—मेमने की खाल ओढ़े हुए भेड़िये!' एक गहरी निश्वास लेकर सम्राट ने कहा।

तभी एक ख़ादिम ने आकर बताया कि दिल्ली से आये कुछ सवार हुजूर की ख़िदमत मे पेश होना चाहते है।

'उन्हें फ़ौरन भेजो।' सम्राट ने आज्ञा दी।

मोहम्मद यासीन ने बादशाह को जमींबोस किया और हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। जब बादशाह ने अपना मक़सद[1] बताने की आज्ञा दी तो उसने, अपनी कमर से एक ख़रीता[2] निकाला और मंजूर अली को थमाते हुए एक ही साँस मे कह गया, 'जहाँपनाह बड़ा क़हर बरपा रहा है जाब्ता खाँ किले मे, इसीलिए अजहद परेशानी के बाअस मलका-ए-ज़मानी बेगम और दीगर मलकाओं ने यह ख़त ख़िदमत मे भेजा है। आलमपनाह, किसी क़दर दिल्ली मे रौनक-अफ़रोज[3] होकर जाब्ता खाँ और दीगर रुहेलो को माकूल सजा दें।'

'अच्छा, अच्छा, मजूर ख़त पढ़ो' बादशाह ने कहा और यासीन को इशारे से चले जाने की इजाजत दी।

मंजूर ने ख़त पढ़ा तो सम्राट धक् से रह गया। उस बदबख्त की यह जुरअत? शाही हरम मे दाख़िल होने की कोशिश और ख़ैरुन्निसा के साथ इस हद तक बद-सलूकी। हमारी बहिन ख़ैरुन्निसा! शाहंशाह की हमशीरा[4]।

'आकबत अब मामला हद से गुजर गया है। हमें कुछ-न-कुछ जल्द करना ही होगा। तुम कल दोपहर को तहव्वर खाँ, नसरुल्ला और दीगर मुसाहिबों को लेकर हमारे हुजूर मे पेश हो, मजूर तुम भी।' और इशारा समझकर दोनों ने सम्राट से विदा ली।

---

1. अभिप्राय 2. लिफ़ाफ़ा 3. सुशोभित 4. बहिन

शाहआलम को पूरी रात नींद नहीं आयी। जाब्ता खाँ ने ज़ैनब और खैरुन्निसा को मोतीमहल में बुलाया था, हालांकि वे टालती रहीं। ख़ुद भी हरम में प्रवेश का प्रयत्न किया लेकिन कामयाब न हुआ। कुछ लाला शीतलदास ने, जो क़िले में शाही ख़ज़ाची थे, समझाया तो कुछ अन्य समझदार लोगों ने धिक्कारा। लेकिन एक दिन हरम के सदर दरवाज़े पर पहुँचकर उसने खैरुन्निसा को जबरन बाहर तक बुलाया और उसकी ख़ूबसूरती पर अश्लील टिप्पणियाँ करते हुए बोला—

'मेरी जान, यह शबाब[1] और ये तन्हाइयाँ[2], तुम मेरे साथ क्यों नहीं चलती।'

'तुझ जैसे कुत्ते के साथ, कमीने इस गुस्ताख़ी की तुझे जल्द ही सजा मिलेगी।' शाहज़ादी ने तड़पकर कहा।

जाब्ता शायद और भी कुछ कहता कि लाला शीतलदास को जैसे ही ख़बर लगी वे आ धमके और कुछ बुजुर्ग अमीरों को साथ ले आये। सबने जाब्ता खाँ को समझाकर खैरुन्निसा को हरम में भिजवाया और उसे बाहर ले आये—वह शराब में धुत्त था।

इसी तरह की और भी कुछ घटनाएँ हुईं। मलका-ए-ज़मानी और साहिब महल बेगम जब ऐसी घटनाएँ देखती तो छाती पीट लेतीं। वैसे तो वे कब से अली गोहर को दिल्ली आ जाने के लिए आग्रहपूर्ण पत्र भेज रही थीं लेकिन इस बार उन्होंने बहुत ही कातर भाव से अत्यंत मर्मस्पर्शी पत्र लिखा था। शाहआलम रह-रहकर उसी के बारे में सोचता रहा, कुछ कर गुज़रने को तड़प-तड़प उठा। कभी अपने कटे पंखों की ओर देखता तो कभी कुछ ऐसा मंसूबा बनाता कि वह सारी दुनिया को अपने अधीन कर ले, बेइन्साफ़ी और बेईमानी को पैरों तले रौंद डाले, गुस्ताख़ों की खाल खिंचवा ले, और जो शाही ख़ानदान की तरफ़ आँख भी उठाये उसकी आँखें निकलवा ले। लेकिन इस सबके लिए तो कुव्वत[3] की ज़रूरत है, यह कुव्वत तो तैमूरिया तख़्त से कब की ग़ायब हो चुकी है। वह सोचता, लेकिन फिर हिम्मत बाँधता और मददगारों की तलाश में उसका दिमाग़ पूरे हिंदुस्तान

1. यौवन 2. अकेलापन 3. शक्ति

का चक्कर लगा आता। रात भर इसी पशोपेश में सम्राट को नींद नहीं आयी।

दूसरे दिन शाहंशाह ने दरबार-ए-खास में अपने मुसाहिबों से सारी स्थिति पर चर्चा की तो तहव्वर खाँ ने सुझाव दिया, 'जहाँपनाह, मेरे खयाल से आप इसके लिए इंग्रेजी कंपनी से इसरार[1] करें कि वह आपको दिल्ली के तख्त पर रोशन अफ़्रोज[2] होने में इमदाद करें।'

'खयाल तो दुरुस्त है अमीर, लेकिन इस इंग्रेज कमांडर के रवैये से तो कुछ उम्मीद नजर नहीं आती।'

'हुजूर, यह तो बहुत गुस्ताख है।' नसरुल्ला ने कहा। तभी बादशाह को कल की घटना याद आयी, 'हाँ मोहसिन क्या हुआ था कल बार्टन के साथ', मोहसिन फैजाबाद से वापस आ गया था और इस दरबार में हाजिर था।

'जहाँपनाह, यह इंग्रेज तो बिलकुल साँप का बच्चा है। बेमतलब हुजूर के मुलाजिमों को हैरान व परेशान करता है, इसीलिए मैंने उसे कल एक सबक सिखाना चाहा था।' और उसने आरंभ से अंत तक की सारी घटना बयान कर दी।

शाहंशाह का ऊपर वाला होंठ फड़कने लगा, गुस्से से चेहरे पर लालिमा दौड़ने लगी और दाढ़ी फटकारता हुआ बोला, 'तू कौन कि मैं ख़्वामख़्वाह। अरे इस कमीने को क्या सरोकार कि कौन कहाँ जा रहा है. मजूर उस खत का जवाब लिख दो इंग्रेज कमांडर को कि इसमें हमने अपने आदमियों को कसूरवार नहीं पाया लिहाजा सजा देने का कोई सवाल ही नहीं उठता।' बस मुख़्तसिर-सा जवाब।

'जी आलीजाह।'

'तो तहव्वर, तुम्हारा ख़याल है कि इंग्रेज मदद करेंगे हमारी ?' सम्राट ने कहा।

'आलमपनाह, उम्मीद तो बहुत कम है, मगर कोशिश कर देखने में क्या हर्ज है, मुझ नाचीज के ख़याल से मौजूदा हालात में यही एक क़ौम

1. आग्रह 2. सुशोभित

जहाँपनाह की रिआया में ऐसी है जो काफ़ी दमख़म रखती है और जिस किसी की मददगार हो जाती है उसे कामयाबी हासिल हो जाती है।'

'बिलकुल दुरुस्त, बिलकुल दुरुस्त, मंजूर अली एक ख़त हमारी वफ़ादार इंग्रेज रिआया के सूबेदार क्लाइव को लिखो और उससे इसरार करो कि देहली पर काबिज होने में हमारी मदद करे और इसके बदले में इंग्रेजों को मुँह माँगा इनाम दिया जायेगा।' सम्राट ने कहा।

'हुजूर मेरे ख़याल से हमें मराठों से भी ख़तोकिताबत करनी चाहिए।' नसरुल्ला खाँ ने कहा।

'हाँ, हाँ, मोहसिन को कल लखनऊ भेजा था न, सिंधिया का सिपहसालार वहाँ आया हुआ था, क्या हुआ मोहसिन।'

'आलमपनाह वह दो रोज पहले ही फ़ैजाबाद से चला गया, किधर गया है, कुछ मालूम नहीं।'

'कोई हर्ज नहीं, कोई हर्ज नहीं, हम सीधे माधो सिंधिया से ख़तोकिताबत करेंगे। मंजूर अली—एक खत सिंधिया को भी भेज दो—किसी मोतबिर आदमी के जरिये भेजो।' और स ाट उठ खड़ा हुआ, यानी दरबार बरख़ास्त हुआ।

मराठाओं के पास मोहसिन अली खाँ को भेजा गया और क्लाइव के पास रहमान को।

इधर बार्टन साहब, कमाण्डर, शाहशाह के मामूली से जवाब से आगबबूला हो गया और उसने एक बड़ा लम्बा प्रतिवेदन गवर्नर क्लाइव के पास भेजा और कहा कि इन परिस्थितियों में हमें अपने पालित बादशाह को उसकी सही स्थिति बता देना चाहिए ताकि वह मूर्खता के स्वर्ग में नहीं रहे।

मगर क्लाइव को अभी और कुछ दिनों आवश्यकता थी सम्राट को मूर्खता के स्वर्ग में रहने देने की। अतः बार्टन को लिखा गया 'मामले को ज्यादा गहराई से न लिया जाये और बादशाह से यथासंभव संबंध न बिगाड़े जायें।' बार्टन खून का घूँट पीकर रह गया।

जब क्लाइव के पास रहमान सम्राट का पत्र लेकर पहुँचा तो क्लाइव ने काफ़ी विचार-विमर्श किया। लगभग एक सप्ताह में वह यह फ़ैसला कर

पाया कि हमें कंपनी के क्षेत्र से अधिक दूर उत्तर में दिल्ली जाकर देश की परिस्थितियों में दखलंदाज़ी करना ठीक नहीं—हमें तो अपनी स्थिति अपने इलाके में सुदृढ़ बनानी है। रहमान को जवाब थमा दिया गया जिसका आशय था कि जहाँपनाह की वफ़ादार अंग्रेज़ रिआया फ़िलहाल बहुत ज़रूरी कारगुजारियों में उलझी है लिहाजा किसी तरह की इमदाद देने में असमर्थ है और खेद प्रकट करती है।

मराठा दरबार में मोहसिन अली खाँ पेश हुआ तो उन्होंने बादशाह की तहरीर को बड़े उत्साह से देखा। माधोजी सिंधिया जो पानीपत की लड़ाई में बिलकुल अशक्त हो गया था, पुनः उत्तर की ओर धावे मारने लगा था, दूसरे मराठे सरदार भी कई जगह उत्तर के प्रदेशों पर पुनः छाने लगे थे। माधोजी (या महाद जी) सिंधिया ने मोहसिन अली खाँ को आश्वासन दिया कि हम सम्राट की मदद अवश्य करेंगे लेकिन उसके लिए हमारी भी कुछ शर्तें सम्राट को मजूर करनी होंगी लिहाजा हम अपना वकील उन शर्तों पर बादशाह की रज़ामंदी लेने इलाहाबाद भेज रहे हैं। मोहसिन खाँ बहुत खुश हुआ, वापिस इलाहाबाद चला आया और सम्राट को यह शुभ संदेश दे दिया। दो दिन बाद ही मराठा सरदार शिंदे भी इलाहाबाद पहुँच गया और बादशाह के हुजूर में पेश होने की दरख्वास्त की।

बादशाह ने शिंदे को बुलाया। सारी शर्तों पर ग़ौर किया और अपने मुसाहिबों से काफी लंबे विचार-विमर्श के बाद कुछ संशोधन सहित सभी शर्तें मजूर कर ली।

इन शर्तों के अनुसार मराठों ने वायदा किया कि वे किसी-न-किसी तरह बादशाह को दिल्ली के शाही तख्त पर बिठा देंगे लेकिन इसके बदले में उन्हें चालीस लाख रुपया देना पड़ेगा साथ ही कोड़ा और इलाहाबाद के जिले भी मराठों के सुपुर्द करने पड़ेंगे।

देहली जाने की तैयारियाँ होने लगी थी। यह था मई का महीना अंग्रेजी साल थी 1771 ई०।

इधर जब अंग्रेजों को ज्ञात हुआ कि बादशाह ने मराठों से मदद लेकर देहली जाने का इरादा किया है तो उन्होंने अपने कई प्रतिनिधियों द्वारा सम्राट से कई तरह से आग्रह किया कि वह मराठों के साथ न जायें—इसमें

ख़तरा और घोटाधड़ी की संभावना है। लेकिन सम्राट तो दृढ संकल्प कर चुका था अपने पूर्वजों के सिंहासन पर बैठकर सही माइनों में शाहंशाह बनने का। उसे काफ़ी हतोत्साहित किया गया किंतु वह सब कुछ सोचकर अपनी ज़िद पर अड़ा रहा क्योंकि किसी तरह का ऐश्वर्य में अभाव न होते हुए भी वह स्वयं को एक कैदी की तरह महसूस करता था और अंग्रेज कमांडर उसे किसी-न-किसी तरह अपमानित करता रहता था।

अंत में हारकर अंग्रेजों ने उसे शांतिपूर्वक विदाई दे दी।

इस बीच शाहआलम ने भारत के कई राजाओं-रजवाड़ों को भी पत्र लिखे कि वे उसके देहली सिंहासनारूढ होने के समय जुलूस व जलसों में शरीक हों। इसी तरह का एक पत्र रुहेलों के महत्वपूर्ण सरदार हाफ़िज़ रहमत खाँ को भी ख़ासतौर से लिखा। इस पत्र का कुछ अंश इस तरह था, 'हमारा इरादा देहली जाने का है, तुम भी आकर शरीक दौलत हो और हमराह चलकर जश्न में शिरकत करो और अगर तुम न आ सको तो नवाब ज़ाब्ता ख़ाँ को अपनी तरफ़ से लिख भेजो कि बिला तवक्कुफ़[1] देहली से दस्तबरदार[2] हो जायें और अगर वह तामील न करें और बगावत पर आमादा हों तो तुम उनकी मदद न कीजियेगा क्योंकि तुमसे कभी नाफ़र्मानी ज़हूर में नहीं आयी है।'

हाफ़िज़ रहमत ख़ाँ तो शरीक दौलत नहीं हुए क्योंकि उन्होंने देख लिया था कि बादशाही दौलत अब दौलत न रहकर दरिद्रता के निकट पहुँच चुकी है मगर नवाब ज़ाब्ता ख़ाँ को लिखकर भेज दिया कि तुम देहली छोड़ दो और बादशाह की इताअत करो। नवाब फ़ैज़अल्ला ख़ाँ को भी रहमत ख़ाँ ने नजीबाबाद ज़ाब्ता ख़ाँ के पास इस आशय से भेजा कि वह देहली का कब्ज़ा छोड़ दें और बादशाह से मुकाबिला न करें बल्कि उनका स्वागत करें। सैय्यद फ़ैज़अल्ला ने ज़ाब्ता ख़ाँ को बहुत कुछ समझाया मगर वह नहीं माना और इसी ज़िद पर अड़ा रहा कि बादशाह से लोहा लिया जाये। इसी विचार से वह अपनी फ़ौज बढ़ाकर सुदृढ़ करने की व्यवस्था करने लगा।

---

1. ढीलढाल 2. संबंध छोड़ दें

बादशाही जुलूस मराठों की फ़ौज के साथ बड़ी शान-शौकत से आगे बढ़ रहा था। कई पड़ावों के बाद यह सवारी अलीगढ़ के आसपास पहुँच चुकी थी। दिसंबर का महीना था—काफ़ी ठंड पड़ने लगी थी। सरसों के पीले-पीले खेत अपनी छटा बिखेर रहे थे किंतु उसी रात जब पड़ाव किया गया तो बहुत ज़ोरों के ओले पड़े और उसके बाद जमकर पाला। ओले व पाले ने सारे खेतों को बर्बाद कर दिया। कल ही जो पौधे हर्षोल्लास में लहलहा रहे थे, आज धराशायी हुए पड़े थे। अगला पड़ाव खुर्जा के पास हुआ। रात को जहाँपनाह के कक्ष में शराब के दौर चल रहे थे कि गीदड़ों की 'हुवा-हुवा' की आवाज़ सुनायी दी।

शाहंशाह ने मंज़ूर से पूछा, 'मंज़ूर ये इतने गीदड़ मिलकर शोर क्यों मचा रहे हैं?'

मंज़ूर ने झट से कहा, 'ये आलमपनाह की तख़्तनशीनी की पेश्तर से ख़ुशियाँ मना रहे हैं।'

बादशाह विचारों में डूब गया। गीदड़ ख़ुशियाँ मना रहे हैं? ये तो एक मनहूस-सा शोर मचा रहे है। लेकिन अनिष्ट की आशंका से उसने कुछ नहीं कहा।

तभी नसरुल्ला ख़ाँ ने सफ़ाई दी, 'जहाँपनाह इन्हें ठंड लग रही है इसलिए परेशान होकर हुवा-हुवा कर रहे हैं।'

गीदड़ फिर रोने लगे।

बादशाह ने सोचा, 'हुवा-हुवा क्या, ये तो रो रहे है। सिर्फ़ रो ही नहीं रहे बल्कि मातम-सा मना रहे है।'

दूसरे दिन बादशाह ने अपने हाथी पर से देखा कि एक जंगली चूहा शायद बीमारी की वजह से धीरे-धीरे सरक रहा है कि एक चील आयी और उसे पंजो में दबाकर झपट ले गयी।

गाज़ियाबाद और शाहदरा होती हुई इस फ़ौज ने यमुना पार की और दिल्ली की तरफ़ बढ़े।

ज़ाब्ता ख़ाँ के सिपाहियों ने जब मराठा और बादशाही फ़ौज के आगमन के बारे में सुना तो उनमे घबराहट फैल गयी। यह फौज उसने लाल किले की हिफ़ाज़त के लिए रखी थी। मराठों के पहुँचने से पहले ही ज़ाब्ता

खाँ के सिपाहियों में भगदड़ मच गयी। बादशाही जुलूस ने बड़ी आसानी से क़िले में प्रवेश किया और सेना ने उस पर कब्ज़ा कर लिया।

बादशाह के साथ दिल्ली के अनेक अमीर-उमरा और मराठे थे। इन्होंने भारी सम्मान के साथ उसका स्वागत किया और उसे लाल क़िले में ले गये।

दिसंबर का अंतिम सप्ताह था। किले में पहुँचने के पश्चात सम्राट को सिंहासनारूढ़ कराने की तैयारियाँ होने लगीं। आज किले में चारों ओर भारी चहल-पहल थी। तोशेख़ाने से निकलवाकर तरह-तरह के क़ालीन जगह-जगह बिछाये जा रहे थे। बरसों से बंद पड़े कक्षों, बरामदों आदि की खुलकर सफ़ाई हो रही थी। बादशाही तख़्त को नयी दुलहिन की तरह सजाया जा रहा था।

किले में प्रवेश करते ही बादशाह ने अमीरों व मराठा सरदारों को आराम करने की इजाज़त दी और हरम में प्रविष्ट हुआ। सबसे पहले मलका ज़मानी बेगम और साहिब महल बेगम से मिलकर आदाब बजाया—फिर अपनी बहिनों खैरुन्निसा, कमरुन्निसा और भतीजी ज़ैनब से मिला। सबकी आँखों में आँसू छलक रहे थे। सम्राट का कवि-हृदय भी प्रेम-विह्वल हो पिघल पड़ा और कई मोती उसके गालों पर लुढ़क पड़े। किसी को गले लगाता, किसी को प्यार करता, किसी को आँखों के इशारे से जवाब देता। कई घंटों तक वह हरम में ही रहा फिर नित्य कर्म में व्यस्त हो गया। किले पर धूप निकल रही थी कि तभी दूर तक फैले हुए बादलों ने अपनी काली छाया से सारी दिल्ली को ढँक लिया।

जब मुगल सम्राट का मराठों के संरक्षण में देहली जाने का समाचार फ़ोर्ट विलियम पहुँचा तो अंग्रेज अधिकारियों ने माथा पीट लिया। काफ़ी दिनों तक यह विचार-विमर्श होता रहा कि अब मुगल सम्राट से किसी तरह का संबंध रखा जाये या नहीं। उन्होंने देखा कि सम्राट उनके संरक्षण से उनकी इच्छा के विरुद्ध मराठों के पास चला गया है अतः जो संधि सम्राट से हुई थी वह टूट गयी है, अतः सम्राट को पेंशन देते रहना न तो न्यायसंगत

ही है और न राजनैतिक बुद्धिमानी। क्योंकि मराठा तो कंपनी के शत्रु थे और सम्राट को 26 लाख रुपये सालाना देना अपने शत्रुओं की परोक्ष रूप से सहायता करना होगा। अतः यह तय कर दिया गया कि सम्राट को दी जाने वाली 26 लाख रुपये वार्षिक पेंशन बंद कर दी जाये। हेस्टिंग्ज के इस निर्णय को कंपनी की कौंसिल तथा डाइरेक्टरों ने भी अनुमोदित कर दिया।

अब वारेन हेस्टिंग्ज के सम्मुख प्रश्न था कोड़े और इलाहाबाद के क्षेत्रों के विषय में कोई रुख अपनाने का। सम्राट ने इन्हें मराठों के नाम कर दिया था—अतः अंग्रेजों के सामने चार विकल्प थे : इन जिलों को मराठों के अधिकार में दे दें, अथवा स्वयं इस पर कब्जा करें या सम्राट को इनका आधिपत्य दें। चौथा विकल्प था इन जिलों को अवध के नवाब को लौटा दिया जाये। शुजाउद्दौला इनके बदले में कंपनी सरकार को 50 लाख रुपया देने को तैयार था। अतः हेस्टिंग्ज ने चौथा विकल्प ही अपनाया। ऐसा करने में उसने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। एक तो मराठे और नवाब इन पर अधिकार के संबंध में आपस में ही लड़ते रहेंगे और अंग्रेजी इलाकों पर हमला नहीं कर सकेंगे, दूसरे अवध के नवाब को, जो अंग्रेजों का मित्र था कृतज्ञ करके अपनी सीमाओं की सुरक्षा से आश्वस्त रहेंगे। तीसरे कंपनी, जिसकी आर्थिक स्थिति अत्यंत खराब चल रही थी, पचास लाख रुपये पाकर काफी लाभान्वित होगी।

यद्यपि यह निर्णय हेस्टिंग्ज ने बिलकुल एकांगी लिए थे तथापि इनमें कंपनी का हित था अतः सबने अनुमोदित कर दिये। इन निर्णयों की इंग्लैंड तक में बहुत कटु आलोचना हुई। बड़े-बड़े विचारकों, संसद-सदस्यों आदि ने इसका घोर विरोध भी किया। राबर्ट बार्कर ने इसे बिलकुल अनुचित करार दिया और बर्क ने इसे 'आघातपूर्ण, भयानक एवं विद्रोहपूर्ण विश्वासघात' की संज्ञा दी।

जेम्स मिल ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये : 'यदि इस व्यवस्था में कहीं भी उदारता का स्थान होता तो वह इस असहाय सम्राट के लिए अभूतपूर्व शक्ति से अनुनय करती···सम्राट, जो एक महान राजवंश का प्रतिनिधि था तथा अब उसके लिए सिर ढँकने को छत तक दूभर हो गयी

थी।...'

आक्षेप पर आक्षेप होते रहे, लोकमत कंपनी के विरुद्ध हुआ भी किंतु जो हानि होनी थी हो ही गयी—कोई भी सूरत ऐसी नहीं निकल सकी जो उसे पूरा कर पाती। कंपनी के अधिकारी तो अपना और कंपनी का स्वार्थ देखते थे साथ ही धीरे-धीरे अजगर की तरह, समूचे भारत को थोड़ा-थोड़ा करके निगल जाना चाहते थे।

लाल किले में भारी हलचल थी। फ्रांसीसी सैनिक एवं अधिकारी जहाँ एक ओर क्रिसमस का त्यौहार मना रहे थे वहीं शाहआलम के राज्यारोहण की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी। लाला शीतलादास, पंडित बृजवासीलाल से मुहूर्त घड़ी पल सब कुछ अच्छी तरह निकलवा लाये थे। सूर्योदय से चार घंटे पैंतालीस मिनट बाद का मुहूर्त था। शहनाइयाँ बजने लगी, किले तथा शहर के सभी दरवाज़ों के नक्कारखाने एक बार फिर गूँजने लगे। नृत्यांगनाओं की तो जैसे आज चाँदी थी। क़िले के विभिन्न कक्षों में उनकी छम-छम की आवाज अनोखा रंग दे रही थी। कहीं रियाज[1] चल रहा था तो कहीं कोई मनचला अमीर दिन में ही महफ़िल का मज़ा ले रहा था। हरम की सभी बेगमें और शाहज़ादियाँ कई तरह के इंतज़ाम करा रही थी—उन्होंने ज़रदोज़ी के रंग-बिरंगे अत्यंत आकर्षक वस्त्र धारण किये थे और सारा हरम ऐसा लग रहा था मानो स्वर्ग की अप्सराएँ ही उतर आयी हो यहाँ।

तभी ठंडी शीत लहर ने क़िले के सिपाहियों का कलेजा कँपा दिया। शायद पहाड़ों पर बर्फ़ गिरी होगी। ये पहाड़ भी क्या हैं—इतनी दूरी होते हुए भी ग़रीबों को शीत लहर से नोच-नोच लेते हैं। आज दिल्ली में ही क्या सारे देश में यह अपना प्रकोप दिखायेगी—कइयों को तापने के लिए लकड़ी तक नसीब नहीं, कपड़ों का तो कहना ही क्या।

किले में तैयारियाँ जारी थी। कन्नौज के इत्र विक्रेता आज इत्रों के

---

1. अभ्यास

ढोल के ढोल उलीच रहे थे—कहीं मुश्क कहीं अंबर और कहीं हिना।

सकीना जब से शाही खेमे मे आयी कभी क़िले तक नही पहुँची थी—आज उसे महसूस हो रहा था कि वह वाकई बेगम है। इतना बड़ा होगा क़िला उसने तो स्वप्न मे भी अंदाज़ा नही किया था।

इधर हसीना और नग़मा (रशीदन) इधर से उधर, उधर से इधर छमाछम छम-छम फुदकती फिरती थी कि हसीना को अपने भाइयो की याद हो आयी। वह नगमा से कहने लगी, 'हम लोग दिल्ली तो आ पहुँचे लेकिन यह किला तो एक अलहदा-सी दिल्ली है—यहाँ तो जैसे हमारी दिल्ली से कोई सरोकार ही नही! लेकिन अहमद और अजीम दिल्ली मे कहाँ से आये होगे! नग़मा बीबी, मुझे तो पक्का इत्मीनान है कि अजीम को अब्दालियों ने कत्ल कर दिया होगा और अहमद ने उसी के अफ़सोस मे खुदकुशी कर ली होगी।' और वह रोने लगी।

नग़मा ने उसे रोने के लिए मना किया, 'बीबी यह क्या कर रही हो आज जहाँपनाह की तख़्तनशीनी के दिन यह ठीक नही, देखो मारने वाले से बचाने वाला जबर्दस्त होता है, अल्लाह ताला ने चाहा तो तुम्हारे दोनों भाई मिल जायेंगे—ज़रूर कही-न-कही सही सलामत होगे।' उसने तसल्ली दी और फिर नज़ीर की स्मृति मे खो गयी। हसीना ने झट से आँसू पोछे और बाहर चली गयी।

रह गयी नगमा। कितनी विवश थी वह। 'हसीना अपने भाइयो को याद करके मुझसे गुफ़्तगू तो कर लेती है, लेकिन मैं—मैं तो नज़ीर के बारे में एक लफ़्ज़ भी नही बोल सकती। हाय कितना प्यारा था नज़ीर, हाय नज़ीर मैंने तुम्हारे साथ अजीब बेरहमी की। तुमने बेरहम होते हुए भी मुझ पर रहम किया, मुझे बर्बाद होने से बचा लिया—अपने अरमानो की कुर्बानी देकर मुझे महफ़ूज़ रखा और मेरी ख्वाहिश के बिना एक कदम भी नही उठाया—उफ् नज़ीर, नज़ीरुल्लाह, नज़ीरुल हुसैन—कहाँ मिल सकोगे तुम! यह तड़पन जो आज मुझमे है तुम्हारी उस हवेली मे क्यो नही पैदा हुई। तब तो मैं तुमसे नफ़रत ही करती रही—नफ़रत, नफ़रत, नफ़रत—यह क्या माजरा है—क्या नफ़रत से ही प्यार की पैदाइश है—ज़रूर होगी वर्ना यह मुहब्बत जो मैं अर्से से कलेजे में दबाये बैठी हूँ कहाँ से आयी। जब

से तो मैंने नज़ीर को देखा तक नहीं।' तभी एक क़नीज़ ने आकर अर्ज़ किया कि तख़्तनशीनी की तैयारी हो चुकी है और नग़मा हरम की सब औरतों के साथ झरोखों में जा बैठी।

बाअदब बा मुलाहिज़ा, होशियार, ख़बरदार जहाँपनाह शाहंशाह शाह-आलम सानी पादशाह ग़ाज़ी की तशरीफ़ आवरी हो रही है'''।' नक़ीब ने ऊँची आवाज़ में पुकारा। सब अमीर-उमरा अपनी-अपनी जगह पर साव-धान हो गये और शाहंशाह कई क़नीज़ों से घिरे हुए प्रकट हुए। कई क़नीज़ें चँवर डाल रही थीं—एक ने सोने का छत्र जो बादशाह के सर के ऊपर था थाम रखा था—पीछे सिंधिया भी हो लिए और सम्राट तख़्त तक पहुँचे ही थे कि सिंधिया ने बड़े अदब से गुज़ारिश की :

'जहाँपनाह, तख़्त पर रौनक़ अफ़ोज़ होने की मेहरबानी करें।' और शाहंशाह बड़ी शान से तख़्तनशीन हुए।

सिंधिया ने उन्हें शाही खंजर भेंट किया जिसे सम्राट ने कमर में लटका लिया। चारों तरफ़ बाजे बजने लगे, नफ़ीरी, ढोल, ताशे। हर तरफ़ शमा-दान व क़दील सजा दिये गये और रात को पूरा लाल क़िला जगमगाने लगा। बड़ी-बड़ी दावतें दी गयीं—शाही दस्तरख़्वान पर 150-200 सरदारों व मेहमानों ने दावत उड़ाई। बावर्ची लोग बराबर लगे रहे थे और 151 तरह के विभिन्न पदार्थ परोसे गये। क़ोरमा, कबाब, बिरियानी व कोफ़्तों की ही कई क़िस्में थीं, खीर, सिवई, मिठाइयों की गिनती नहीं। पिस्ते, बादाम, काजू किशमिश वग़ैरह मेवों का भरपूर उपयोग किया गया था।

कई दिनों तक जश्न मनाये जाते रहे और शाही हरम में भी काफ़ी चहल-पहल रही।

ताजपोशी के दिन शाहंशाह ने बहुत से लोगों को इनाम बाँटे। मंजूर अली को मालामाल कर दिया और लाल किले का नाज़िर बनाया। उसे मुसाहिब ख़ास का ख़िताब भी दिया। उसी दिन नगमा (रशीदन) को नूर महल और हसीना को शम्शाद बेगम का ख़िताब मिला। गरीब गुर-बाओं को ख़ैरात बाँटी गयी और दरगाहों पर बेशक़ीमती चद्दरें चढ़ायी गयीं।

जाब्ता ख़ाँ जो अब तक दिल्ली का मीरबख़्शी था नजीबाबाद चला

गया था और उसकी फ़ौज भी बादशाह के आगमन की सूचना मिलते ही भाग छूटी थी लेकिन दफ़्तर मीरबख़्शी के सभी मुलाज़िमान बदस्तूर काम कर रहे थे और फ़िलहाल बादशाह ने उन्हीं को रख लिया था। इसी दफ़्तर में अहमद काम करता था। कभी-कभी फ़ुरसत में होने पर वह महल में सैर-सपाटे को निकल जाता था। कई पहरेदारों से उसने दोस्ती गाँठ ली थी अतः उसको बहुत कम जगह रोका जाता था।

शाहंशाह जश्न से फ़ुरसत पाकर राज्य के काम की ओर मुख़ातिब हुआ तो पता चला कि वह फूलों के नहीं वरन काँटों के सिंहासन पर बैठा है। ख़ज़ाना सारा ख़ाली हो चुका था। बहुत से सिपाही अपना वेतन माँग रहे थे और उधर मराठे वचनानुसार 40 लाख रुपये की माँग कर रहे थे। वह काफ़ी चिंता में पड़ गया अत: उसने फ़िलहाल अपने हरम में रंगरेलियाँ मनाते रहना ही उचित समझा। इस अवधि में वह हर समस्या को ठंडे दिमाग़ से सोचकर उसका हल भी ढूंढ़ सकता था। वह प्रारंभ से ही कठिनाइयों का सामना करता रहा था तथा इनका आदी हो चुका था। अतः वह व्यर्थ की चिंता में फँसकर अपनी तख़्तनशीनी की ख़ुशियों को फीकी नहीं करना चाहता था। उसे अपने पूर्वजों का वह तख़्त मिल गया था जिसके लिए वह पिछले दस-ग्यारह सालों से प्रयत्नशील था।

हसीना आज बादशाह की अंकशायिनी होने वाली थी, उसे नाज़ों ने हर कोण से ऐसा सजाया-सँवारा था कि वह बिना पंखों की परी नज़र आ रही थी—लेकिन पंखों के अभाव ने उसे और भी सुंदर बना दिया था क्योंकि मानव के सौंदर्य-बोध में किसी रूपसी के पंख होना भी एक विसंगति है।

जब वह हमकुंड से स्नान करके निकली तो झरोखों के पास खड़ी हो गयी और जाली में से नीचे की तरफ़ देखने लगी। देखते ही स्तब्ध रह गयी। एक युवक खड़ा सिपाहियों से कुछ बातचीत कर रहा था। बिलकुल अहमद जैसा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ—उसने कई कोणों से जाँचकर अपनी ग़लतफ़हमी दूर करनी चाही लेकिन नहीं, कोई ग़लतफ़हमी नहीं हू-ब-हू उसका भाई अहमद था। यदि झरोखा खुला होता तो वह अवश्य ही कूदकर अपने भाई के गले में बाहें डाल देती—अगर ज़िंदा रह पाती तो!

लेकिन ईश्वर की अनुकंपा से चारों तरफ़ कोई खुला मार्ग था ही नही। वह बाज़ द्वारा झपटी जाने वाली फ़ाख़्ता की तरह फड़फड़ाकर रह गयी। भाई मिला भी और नही भी मिला। लेकिन इस सबसे उसके हृदय में आशा का संचार ज़रूर हुआ—कम-से-कम अहमद ज़िंदा है, हो सकता है अज़ीम भी शकुशल हो। वह सब-कुछ भूलकर नग़्मा के पास भागी गयी और हाँफती हुई बोली—

'बहिन मैंने अपने भाई अहमद को अभी देखा है।'

'ज़हे क़िस्मत, लेकिन कहाँ देखा ?'

'यहीं क़िले में नीचे।'

'ओ हो यह तो बहुत ख़ुशी की बात है हसीना' कहकर उसने ताली बजायी और क़नीज़ को आज्ञा दी कि एक रक़ाबी में मिठाई लाये। जैसे ही क़नीज़ मिठाई लायी उसने हसीना के मुँह में ठूँस दी।

'तुमने बहुत बड़ी ख़ुशख़बरी सुनायी है।'

'लेकिन बहन सबसे पहले तो तुम्हीं ने ये ख़ुशनुमा अल्फ़ाज़ अपनी ज़ुबान से निकाले थे कि अहमद और अज़ीम बख़ैरियत होंगे और मिल जायेंगे। लो बहन तुम भी तो हक़दार हो मिठाई की।' और उसने भी नग़्मा की तरफ़ हाथ बढ़ाया। नग़्मा ने चिड़िया के बच्चे की तरह मुँह खोला और हसीना ने उसका मुँह अच्छी तरह भर दिया।

'मगर बीबी वह मिलेगा कैसे, पता नही कहाँ रहता है, क्या करता है।'

'तुमने जब देखा तो क्या कर रहा था ?'

'एक-दो सिपाहियों से गुफ़्तगू !'

'अजनबी की तरह या जाने-पहचाने आदमी की तरह ?'

'ठीक-ठीक तो नही कह सकती, लेकिन लग ऐसा ही रहा था कि बहुत बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रहा हो।'

'अगर तुम्हारा क़यास सही है तब तो वह इसी किले में किसी सीगे[1] में मुलाज़िम होगा। मामूली तौर से कोई बाहर का आदमी यहाँ नहीं आता।'

---

1. विभाग

'तो फिर ?'

'फिर क्या, जहाँपनाह के पास तो तुम बहुत सारी रात रहोगी, उन्हीं से गुज़ारिश करना।'

'तो वे क्या करेंगे ?'

'अरे मेरी भोली बहन ढूँढ़वायेंगे उन्हें' खिलखिलाकर नग़मा ने कहा।

और तभी से हसीना सम्राट को यह ज़िक्र करने की भूमिका बनाती रही, जैसे किसी देश पर विजय का मंसूबा बना रही हो।

आज नग़मा बहुत बेचैन थी। उसे हसीना के भाई के मिलने की तो अत्यधिक प्रसन्नता हुई लेकिन अपने माँ-बाप व दादी की याद कचोटने लगी। भाई तो उसके कोई था ही नहीं। जिन कमीनों ने उसका घर बर्बाद किया उनसे बदला लेना भी तो ज़रूरी था। हाँ अब वह बदला लेने की स्थिति में थी। उसके सम्मुख सुल्तान व अज़ीज़ का क्रूर चेहरा नाचने लगा। वह सबको पहचान सकती है, हाँ, और सबको सज़ा दिलवायेगी—सज़ा-ए-मौत, एक-एक को सज़ा-ए-मौत। एकदम उसके दिमाग़ में नज़ीर का नाम कौंध गया। क्या नज़ीर को भी सज़ा-ए-मौत ? हाँ, हाँ, वह भी तो क़ातिलों में शामिल था, क़ातिल का साथी क़ातिल, उसके दिमाग़ ने कहा। लेकिन नग़मा का नारी हृदय हज़ार-हज़ार आवाज़ों से पुकारने लगा, नहीं-नहीं, उसे मैं प्यार करती हूँ—वह मेरा महबूब है—लेकिन उसका प्यार पाना क्या आसान है अब ! नहीं बादशाही हरम में फ़ाहशापन की सज़ा सिर्फ़ मौत होती है। मगर मैं नज़ीर को सज़ा-ए-ज़िंदगी दूँगी। और उसने मन में ही सज़ा-ए-ज़िंदगी की एक परिभाषा भी बना डाली।

सुल्तान ने इस तरह न जाने कितने घर उजाड़े होंगे—नहीं उसे मौत की सज़ा काफ़ी नहीं होगी—उसे तो तड़पा-तड़पाकर मारना चाहिए। सुना है क़िले में कुत्ते भी हैं, वे मुजरिमों[1] को नोंच-नोंचकर खा जाते हैं। तड़पा-तड़पाकर जान ले लेते हैं। हाँ बिलकुल ठीक यही सज़ा सुल्तान को मिलनी चाहिए और उसके साथियों को ! वह सोचती रह जाती लेकिन कुछ तय नहीं कर पाती। हाथी से कुचलवाना ठीक रहेगा। मगर नज़ीर कैसे बच

---

1. अपराधियों

हसीना का भाई अहमद सकपका गया। वह पुराने मीरबख़्शी जाब्ता ख़ाँ का मुलाज़िम था लिहाज़ा कहीं बादशाह ऐसे लोगों को सज़ा तो नहीं देंगे। वैसे हमारा क़सूर तो कुछ नहीं है—हाँ ज्यादा-से-ज्यादा नौकरी से बर्ख़ास्त कर देंगे। जो भी हो देखा जायेगा। थोड़ी ही देर में 32 अहमद नाम के मुलाज़िमान सम्राट के सामने ज़मींबोस करके हाथ बाँधे खड़े काँप रहे थे। हरम की तरफ़ चिक में कुछ हलचल हुई और हसीना ने अपना भाई फ़ौरन पहचान लिया और बादशाह को कहला भेजा। क़नीज़ ने आकर बादशाह से धीरे से कहा, 'तुर्की टोपी हरा कुर्ता, गोरे रंग वाला।'

बादशाह ने समझते ही उस अहमद को रोक लिया और बाक़ी सबको जाने का आदेश दिया।

एक कमरे में दोनों की मुलाकात का इंतज़ाम किया गया और सम्राट अहमद को अपने साथ लेकर चला गया। कमरे में दाख़िल होते ही हसीना अहमद से लिपट गयी, 'भाई जान भाई जान, अज़ीम कहाँ है?'

अहमद उसे बेगम के वेश में देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और रोते हुए कहा, 'अज़ीम भी यहीं दिल्ली में है और ख़ैरियत है।'

इन भाई-बहनों का मिलन देखकर बादशाह की आँखें भी नम हो आयी थीं।

उन्होंने अहमद से पूरा किस्सा सुना, अब्दाली के ज़रिये गिरफ़्तार किये जाने से लेकर मुक्त होने तक का। अब्दाली की छावनी के बारे में भी उसने बड़ी दिलचस्पी से अहमद के तजुर्बे सुने और इसी तरह तीनों को बातचीत करते घंटों बीत गये। दूसरे दिन अज़ीम को लेकर आने की ताकीद करके सम्राट अहमद के साथ बाहर निकला और हसीना ख़ुशी से लगभग नाचती हुई-सी नगमा के पास पहुँची और सारा हाल बयान कर दिया। नग़मा ने उस दिन पूरे हरम में मिठाइयाँ बँटवायीं।

'अट्ठा-अट्ठा था'

'नहीं दुग्गी'

'नहीं अट्ठा' कौड़ियाँ हाथ में खड़खड़ाते हुए एक खिलाड़ी ने कहा।

'अच्छा तो दूसरी बार डाल देता हूँ।'

'दूसरी बार कैसे डालोगे, इसमे तो सौ रुपये का एर-फेर है।'

'होगा उससे क्या।'

'इससे कैसे नही, दुबारा नही चलने देंगे, दुग्गी है दुग्गी ही मानेंगे।'

'क्या मजाक है!'

'यह मज़ाक नही वाक़या है, खेल खेलना सीखो पहिले।'

'आप क्या सिखायेंगे मुझे।'

'मैं अभी दस साल सिखाऊँगा।'

'जाओ मियाँ, तुम जैसे सैंकडो टाँगो के नीचे से निकाल दिये।'

'ओह, बदतमीज़ी!

'अच्छा यह गुस्ताखी!' और उसने खंजर निकाल लिया।

'मियाँ ख़ंजर तो हम भी रखते है, लो इन्ही से फैसला हो जाये।'

और सब खिलाड़ी एक तरफ़ बैठ गये और दोनों गुत्थम-गुत्था हो गये। कई जगह दोनो के मामूली चोटें आयी, थोडा खून भी निकल रहा था लेकिन फैसला नही हो पा रहा था।

ठक, ठक, ठक दरवाजे पर दस्तक लगी लेकिन दोनो लडाको ने कहा नूरे दरवाज़ा मत खोलना पहिले फ़ैसला कर लें।

'ठक, ठक, ठक, !' दरवाज़ा नही खुला।

'धड़, धड़, धड़ाम', और दरवाजे के दोनो पल्लू कमरे में आ पड़े और इस अधकच्चे से कमरे मे एकदम 20-25 सिपाही आँधी की तरह पिल पड़े। सबके हाथों मे नंगी तलवार।

नायक ने कहा, 'ख़बरदार जो कोई अपनी जगह से हिला, लड़ाई बद करो।'

अप्रत्याशित घटना देखकर लड़ाई बंद हो गयी और दोनों लड़ाके खड़े हो गये, खजरों पर खून की बूँदें थी।

नायक ने ऊँची आवाज़ में कहा, 'इन सबको गिरफ़्तार करो।'

सिपाहियों ने घेरा डाल दिया, बैठे लोग उठ खडे हुए। आठ के आठ आदमियों को गिरफ़्तार कर लिया गया—हाथों में हथकड़ियाँ पहिना दी गयीं।

नायक ने एक सिपाही को हुक्म दिया, 'ये सारी कौड़ियाँ समेट लो और सिक्के भी।' दूसरे को हुक्म दिया, 'इनके गंजर कब्ज़े में कर लो और हरेक की खानातलाशी लो।'

तीन हज़ार रुपये मिले, पास ही पड़ी एक थैली में डालकर नायक ने लिखा-पढ़ी की, 'तुम्हारा नाम ?'

'जी नूरे'

'बाप का नाम'

'जी अफज़ल खाँ'

'तुम्हारा ?'

'सुल्तान'

'बाप का नाम ?'

'मुहम्मद यासीन।'

'तुम्हारा ?'

'.........'

'तुम्हारा ?'

आठों के नाम, बाप के नाम, सकूनत वग़ैरह लिखकर नायक ने चलने का हुक्म दिया और कोतवाली की तरफ़ चले गये।

नगमा ने अपना मसूवा तैयार कर लिया था। और एक दिन मौका पाकर शाहंशाह को उसने पुरानी बातें याद दिलाते हुए कहा कि मेरे वाल्दैन के ख़ूनियों को सज़ा दिलाने का वक़्त आ पहुँचा है। बादशाह को सारा किस्सा याद था, उसने फ़ौरन शहर कोतवाल को बुलाया और सुल्तान नाम के गुंडे को जल्द अज़ जल्द गिरफ़्तार करके पेश करने को कहा। अज़ीज़ का नाम भी बता दिया। संयोग की बात थी कि जुओं के अड्डों पर पता लगाते-लगाते विक्रमाजीत नायक को ख़बर मिली कि सुल्तान आजकल बल्लीमारान के फलाँ अड्डे पर जमा रहता है और विक्रमाजीत ने मौक़े पर जाकर गिरफ्तारी कर ली।

आठ गिरफ़्तारों में थे, सुल्तान, अज़ीज़, नूरे, नन्हें खाँ, यासीन अली, अफ़ज़ल, नियाज़ और हबीब। सुल्तान और अज़ीज़ दो मुल्ज़िम मिल गये थे जिनका नाम बादशाह ने बताया था। लेकिन रमज़ानी और नज़ीरुल

हुसैन का कुछ पता नही लगा। बाकी गिरफ़्तार किये हुए आदमियो से बादशाह का वास्ता था या नही यह कोतवाल को पता नही था लिहाज़ा सुल्तान को कोतवाली के चौक में नीम के पेड पर उल्टा लटकाया गया और सिपाही बुदे खाँ ने कोडे को हिलाते हुए पूछा—

'रमज़ानी का पता बताओ ?'

'मुझे नही मालूम।'

'किसे मालूम है ?'

'मैं क्या जानूं।'

'अच्छा।' और सांप की तरह लहराता हुआ कोड़ा उसकी नंगी पीठ की थोड़ी-सी खाल लेकर फिर हवा मे लहराने लगा था। सुल्तान के मुँह से एक चीख निकल गयी थी।

'बोलो रमजानी कहाँ है ?'

'जी आजकल नन्हे लुहार की दुकान पर काम करता है।'

'पूरा पता बताओ।'

और दूसरा कोड़ा पड़े उससे पहिले ही रमज़ानी का पता मिल गया था।

अब सुल्तान और अजीज दोनों ने नज़ीर का पता भी बता दिया। 'अक्सर यह फीरोज कोटला की दरगाह मे आता रहता है, हमारे साथ तो बरसो से नही रहा। मकान उसका हवेली खान जमा खाँ के पास है। रात को यही रहता है।'

'अच्छा, तो और कौन-कौन थे तुम्हारे साथ जब दाउद खाँ को क़त्ल किया था ?'

'दाउद खाँ, कौन दाउद खाँ ?' सुल्तान ने अपने दिमाग पर ज़ोर देकर याद करने की कोशिश की।

अब एक तरफ अज़ीज़ को भी उलटा लटका दिया था।

'अज़ीज़ को मालूम होगा।'

'अज़ीज़, हरामज़ादे तू बतला।'

'नही हुज़ूर, मुझे तो कुछ याद नही आ रहा।'

सड़ाक्...। यह अज़ीज़ की पीठ पर कोड़े की आवाज़ थी।

'सुल्तान तुम बताओ ?'

'सरकार याद नही आ रहा' वह एक-दो नही पिछले दस साल में हज़ारों क़त्ल कर चुका था।

'कूचा बीबी गौहर मे तुमने दाउद ख़ाँ, उसकी बीबी और वाल्दा का क़त्ल किया था और सारा माल लूट लाये थे, अब याद आया ?'

'ओह, हाँ हाँ', कूचा बीबी गौहर का नाम सुनते ही सुल्तान चौंका, 'लेकिन हुज़ूर यह तो 10-12 साल पहिले की बात है ! हुज़ूर इतने पहिले किये हुए क़त्ल को क़त्ल नही कहा जाना चाहिए। वर्ना दिल्ली का हर आदमी क़ातिल होगा।'

'हाँ, हाँ, 10-12 साल पहिले ही तो।' सिपाही ने कहा, 'क्या वह क़त्ल नही है ? वाह, वाह !'

अज़ीज़ और सुल्तान थोड़ी देर सोचते रहे और फिर दोनों एक साथ बोल पड़े, 'एक तो ये हबीब ही है, दूसरा अमानुल्ला, एक गोपाल, एक लल्लू, एक था ख़ैरातीलाल, उसे अहमदशाह अब्दाली के सिपाहियों ने गिरफ़्तार कर लिया था।'

'एक-एक करके बोलो उल्लू के पट्ठो !' सिपाही ने कहा—और मुंशीजी एक काग़ज़ पर नाम लिखने लगे।

'कुल कितने आदमी थे तुम ?'

'जी कुल नौ थे।'

'मगर ये तो अभी आठ ही हुए, बताओ मादर...।' गाली देते हुए सिपाही ने एक-एक कोड़ा दोनों की पीठ पर जमा दिया।

'नौवाँ लल्लूलाल था।' अज़ीज़ ने कहा।

'अबे कमीन की औलाद, लल्लूलाल तो बता दिया' मुंशी ने कहा।

'जी तो नौवाँ इर्शाद था, उसके पूरे घर को अब्दाली सिपाहियों ने क़त्ल कर डाला था हुज़ूर।' सुल्तान बोला।

'अबे, हुज़ूर के बच्चे, हरामी के पिल्ले, उसके घर को नही पूछ रहे वह ख़ुद कहाँ है।' कोड़ा फिर लहरा रहा था।

'सरकार उसको भी क़त्ल कर दिया।' अज़ीज़ बोला।

'जी हुज़ूर, वह भागने की कोशिश कर रहा था कि एक सिपाही की

नज़र पड़ी, वह पीछे भागा और जब इर्शाद और भी तेज भाग रहा था तो सिपाही ने पीछे से ही उसकी गर्दन उडा दी।' अजीज बोला।

'अबे स्साले कुत्ते की औलाद, तुझे कैसे मालूम? तू वहाँ था क्या?'

'जी नही हुज़ूर, मैं तो फ़रीदाबाद जाकर छुपा रहा था।'

'सुल्तान के बच्चे तू कहाँ था तब?'

'हुज़ूर मैंने मेहरोली में अपने खालू[1] के पनाह ली थी।'

'मादर''', कमीनों की औलाद, अल्फाज़ तो ऐसे बोलते है जैसे कोई बादशाह या रईस हों और काम करते हैं कंजरो का—पनाह ली थी!' सिपाही मुँह चिढा रहा था।

'तुझे मालूम है सुल्तान के बच्चे इर्शाद का पता?'

'हुज़ूर मैंने भी मोहल्ले वालो से यही सुना है जो अजीज कह रहा है।'

'कौन से मोहल्ले वाले?'

'बस्ती सीताराम पुरा वाले, वही था उसका मकान। कुछ लोग पक्की ऊँची हवेलियों मे महफ़ूज बैठे छुप-छुपकर देख रहे थे, उन्ही लोगो ने बताया था।'

'अच्छा अब सबके पते लिखाओ।'

सबके पते नोट कराये गये और दोनो को फिर काल-कोठरियो में डाल दिया गया।

सिपाही कोतवाली के आसपास अपने-अपने काम मे लग गये।

विक्रमाजीत ने शब्बीर से कहा, 'यार मामला बहुत संगीन नज़र आता है।'

'कैसे?'

'यार, दस-बारह साल पुराने मुलजिम, बज़ातख़ास आलमपनाह ने तलब किये हैं!'

'हाँ, हाँ, तब तो जरूर इसमे कोई मसलहत है।'

'कोई जबर्दस्त मसलहत है वर्ना सैकड़ो-हजारो क़त्ल हो गये, कोई गिनती नही, औरतो की अस्मतें लुट गयी, घरो मे आग लग गयी, खानकाहे

———

1. मौसा

उजाड दी गयी, मंदिर लुट गये, बच्चों को पैरों तले रौंद दिया गया या नेज़ों से छेद डाला गया. आज तक किसी ने ख़बर नही ली।'

'भई, पिछले ज़माने की क्या बात करते हो, धनीधोरी था ही कौन दिल्ली का, लेकिन अब तो शाहंशाह शाहआलम आन पहुँचे हैं और तख़्तनशी भी हो गये हैं।'

'हाँ, किसी ने शिकायत कर दी होगी। 10-12 साल से बादशाह था ही कौन, दिल्ली यतीम थी यतीम!'

'लेकिन भाई जान सुना है, अब भी शाहंशाह मराठों के हाथ की कठ-पुतली बने हुए हैं।'

'मराठों ने उन्हें तख़्त जो दिलवाया है, कुछ तो उनकी भी बजानी ही पड़ेगी मगर आखिर बादशाह तो बादशाह ही होता है—कुछ-न-कुछ तो तरक़्क़ी आयेगी ही—'

'हाँ, हाँ, तरक़्की तो आयी भी है। रोज़ाना कोई-न-कोई नया फर्मान आ रहा है—कोतवाल मियाँ भी आजकल चौकन्ने हो गये हैं, सिपह बढ़ा दी गयी है और रात की गश्त फिर चालू हो गयी है। रोज़ाना किसी-न-किसी को कोतवाली में सज़ा-ए-ताज़ियाना[1] मिलती है या धुप्पी में बंद कर दिया जाता है।'

'इलाही, दिल्ली में अमनो-अमान[2] क़ायम करें।'

'देखो, उम्मीदें तो बहुत कुछ है।'

तभी एक आदमी ने डरते-डरते कोतवाली में प्रवेश किया और विक्रमाजीत की ओर बढ़ा—उसने झुककर सलाम करते हुए कहा, 'हुज़ूर से कुछ गुज़ारिश करना है।' आदमी काफी अच्छे घर का मालूम होता था, इसलिए विक्रमाजीत उसे एक तरफ़ ले जाकर उसकी ओर मुख़ातिब हुआ, 'फ़रमाइये क्या काम है?'

'जी नायब कोतवाल, जनाब ही हैं ना।'

'नहीं मैं तो नहीं हूँ—क्या नाइब साहब से मिलना है, महादेव परशाद साहिब से—'

---

1. कोड़े की सजा 2. शांति

'जी हाँ, जी हाँ, उन्ही से।'

'तो वो तो अभी बाहर तशरीफ़ ले गये हैं।'

'तो शायद हमारा काम आपके ज़रिये ही हो जाये।'

'कहिये-कहिये।'

'जी कुछ मुल्ज़िम अभी पकड़े गये हैं।'

विक्रमाजीत सतर्क हो गये, 'कौन से मुलजिम ?'

'जो बल्लीमारान से पकड़े गये थे।'

'बल्लीमारान से तो बहुत से पकड़े गये हैं।'

'जी सुल्तान, अज़ीज़ वग़ैरह।'

'तो, उनके बारे मे क्या कहना है. वे तो कातिल हैं, डकैत हैं, चोर हैं। आप तो शरीफ आदमी नजर आते हैं, क्या चाहते हैं आप ?' विक्रम का स्वर काफ़ी कडक हो गया था।

'जी उनकी रिहाई।'

'रिहाई, कातिलों की रिहाई !'

'हुजूर की मर्ज़ी मुआफ़िक ख़िदमत हो जायेगी।'

'कैसी ख़िदमत ?'

'पाँच हजार रुपया।'

'नही-नही—'

'दस, पंद्रह—बीस हज़ार, हुज़ूर मान लीजिये।'

'नही, यह नही हो सकता।'

'पचास में—।'

'क्या बहकी-बहकी बातें कर रहे हो. लाख, दो लाख, पाँच लाख किसी भी कीमत पर नही हो सकता, कोई ताकत नही कर सकती, समझे और आप तशरीफ ले जा सकते हैं।'

'जनाब पहले तो पाँच-दस हज़ार मे हमने कई बार यह फैसले कराये थे, नायब साहब को मालूम है, आपको भी पता होगा।'

'हाँ, हाँ, सब मालूम है लेकिन अब वह जमाना नही रहा वक़्त बदल गया है, देहली में अब बादशाह शाहआलम तशरीफ़ ला चुके हैं—भूल जाइये वो हवाएँ।'

इतने मे नायब कोतवाल महादेव प्रसाद आ निकले—। उन्होंने भी आगंतुक को, सारा मामला समझकर वही जवाब दिया और वे चले गये।

क़िले में मजमा लगा था। बादशाह अपने तख़्त पर बैठे थे, इधर-उधर मुसाहिब खड़े थे।

शहर कोतवाल और नायब कोतवाल पेश हुए और ज़मींबोस करके हाथ बाँध लिए।

उन्होंने मंजूर अली से कहा कि मुलजिम हाज़िर हैं। सिर्फ़ एक अभी अकबराबाद गया हुआ है और दो में से एक अब्दाली की सिपह ने क़त्ल कर दिया और एक को गिरफ़्तार करके ले गये—इनमें एक मुसलमान और दूसरा हिंदू था। बाक़ी छह मुलजिम हाज़िर हैं।

मंजूर ने बादशाह को यह सब बताया। बादशाह ने मुल्ज़िमान को हाज़िर करने की आज्ञा दी—

छह के छह मुल्ज़िमान खड़े काँप रहे थे, चारों तरफ़ सिपाही नंगी तलवारें उनके सरो पर खड़ी किये थे।

मंजूर अली ने पूछताछ की और बादशाह को बताया गया। आख़िर सुल्तान ने अपना क़सूर कबूल किया, अजीज और गोपाल ने भी उन्हें बताया कि उस रोज उन्होंने ही तीनों को मारा था—बाक़ी सबने बताया कि हम लोग साथ थे मगर क़त्ल नही किये सिर्फ लूटमार मे शरीक थे, हुज़ूर क़त्ल तो हमने आज तक कोई नही किया।

नग़मा ने सभी मुलजिमों की शनाख़्त कर ली थी और बादशाह को कहला दिया था कि तीनों कातिलों को कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिए।

बादशाह ने फ़ैसला दिया, 'इन तीनो बदबख़्त कातिलों को क़िले के चौगान में हाथी के पाँवों से बँधवाकर पहले घसीटा जाये फिर कुचलवा दिया जाये।' तीनो थर-थर काँप रहे थे, 'सरकार रहम, हुज़ूर रहम।' लेकिन किसी ने नही सुना।

नग़मा पर्दे में से देख रही थी कि यही सुल्तान जो एकदम ख़ौफ़नाक शैतान की तरह नजर आता था आज कितना छोटा हो गया था, मरियल

टट्टू-सा, और किस तरह गिड़गिड़ा रहा है। न जाने कितने आदमी, औरत इसके सामने गिड़गिड़ाते रहे होंगे। सज़ा बिलकुल माकूल मिली है।

बादशाह की बुलंद आवाज फिर सुनायी दी, 'और बाकी तीन को ताजिंदगी कैद की सजा दी जाती है।'

जल्लाद तैयार होकर हाजिर हुए और वही मैदान मे बँधे हाथियो की तरफ़ इन्हे पकड़कर ले गये। तीनो गिड़गिड़ाते रहे बादशाह की तरफ़ मुड़-मुड़कर, 'रहम, जहांपनाह रहम कीजिये' और हाथी के पैरो से लम्बी साँकलो से बाँध दिये गये। तीनो हाथी तेज़ी से मैदान मे चक्कर लगाने लगे और लगाते रहे। पहले ये तीनो चीख़ते, पुकारते, कराहते रहे। जब तक कि उनके शरीर लोथड़े नही बन गये हाथी चक्कर लगाते रहे और आख़िर उन पर पैर रखकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

नगमा विश्वास नही कर सकी कि शाही सज़ा इतनी भयंकर होती है लेकिन आज उसे पूरी तसल्ली थी। कलेजा ठंडा हो गया उसका, बदला जो ले लिया था उसने अपने वाल्दैन के क़ातिलो से।

लेकिन नजीर तो आया ही नही, सज़ा अधूरी ही रही। वह बड़ी उत्सुक निगाहों से ताकती रही कि कही नजीर दिखायी दे। लेकिन वह कही नही था। वह बहुत ही निराश हुई। एक कैदी बच ही गया सजा पाने से। वह ठीक-ठीक नही सुन पायी थी बाक़ी तीन मुलजिमों के बारे में, अतः जब बादशाह ने बताया तो वह बहुत चिंतित हुई। क्या जरूरी है कि एक पकड़ा जाना है वह नजीर ही हो। बादशाह ने नाम तो बताया नही था, 'पूछती भी कैसे, शायद जहाँपनाह को ख़ुद ही ख़याल न हो' उसने सोचा। 'कही नजीर को अब्दाली के आदमियो ने···।'

नहीं वह ऐसी मनहूस बात नही सोच सकती। उसने तोबह कर ली, कान पकड़े फिर मुँह पर हाथ रख लिया। 'लेकिन अगर अब्दाली की गिरफ़्त मे ही हो।' उसने सोचा और उसका सर घूमने लगा। वह एकदम निर्जीव हो गयी। फिर अंत.करण से आवाज आयी, 'नही वह ज़िंदा होगा, ज़िंदा, उसे तो अभी बहुत ज़िंदा रहना है। उसने क़त्ल नही किया है। उसे सजा-ए-ज़िंदगी मिलेगी, जरूर मिलेगी' और उसने इस सजा की परिभाषा फिर से अपने मन मे दोहरायी।

मौका देखकर उसने बादशाह को याद दिलायी कि एक मुलज़िम अभी भी पकड़ा जाना है।

बादशाह ने कोतवाल को एक परवाना भेजा कि उस मुलज़िम का फ़ौरन से पेश्तर पता लगाकर हुज़ूर मे पेश किया जाये।

सम्राट् बाहर निकल ही रहे थे कि क़नीज़ ने ख़बर दी कि दफ़्तर मीर बख़्शी के अहमद हुज़ूर में कुछ गुज़ारिश के ख़्वाहाँ[1] हैं।

बादशाह फ़ौरन रंगमहल पहुँचे जहाँ अहमद उनका इंतिज़ार कर रहा था। बादशाह ने अंदर बुलाया तो अहमद और अज़ीम दोनों ज़मींबोस करते खड़े हो गये। अज़ीम से मिलकर बादशाह सलामत बहुत खुश हुए और पूछा कहाँ काम करते हो।

'सराय बुन्दे खाँ में, जहाँपनाह।'

'अरे, अरे, अब तो हमारा-तुम्हारा मामला बहुत वाहिद[2] हो गया है। तुम भी मीर बख़्शी, नहीं नहीं, खाने सामान के दफ़्तर मे काम पर लग जाओ। आज से ही, अभी से। हम परवाना जारी किये देते हैं। उन्होंने ताली बजायी, कनीज़ आयी, उसे हुक्म दिया, 'इस्माइल को बुलाओ।'

इस्माइल बेग हाज़िर हुआ तो शाहशाह ने अज़ीम की तकर्रुरी का परवाना[3] जारी करने का हुक्म दिया और दोनो को लेकर हरम की तरफ़ चला।

हसीना अज़ीम को देखते ही लिपट गयी। चारों की आँखों से आँसू बह रहे थे। खुशी जैसे आंखो से छलक-छलक पड़ रही हो।

फिर सारी दास्तान सुनायी अज़ीम ने। बादशाह ने भी पूरी तवज्जह[4] से सुनी और बहुत मज़ा आया।

हसीना और नग़मा आज हरम मे सबसे ज्यादा खुश नज़र आ रही थी। आज नगमा ने मिठाइयो के ढेर लगा दिये और यतीमो को ख़ैरात के लिए सैंकड़ो रुपये सरफ़राज़ ख्वाजा सरा के हाथ भिजवा दिये।

लेकिन नगमा को जहाँ हसीना की खुशी में खुशी थी वहीं उसे नज़ीर के न मिल पाने की टीस भी थी। जहाँ सुल्तान और उसके साथियों को

1. इच्छुक 2. एक 3. नियुक्ति-पत्र 4. ध्यान

सज़ा दिलाकर उसकी छाती ठंडी हो गयी थी वहीं नजीर के बच जाने की उसे बेचैनी थी।

मानव हृदय भी बहुत रहस्यपूर्ण है। दुख के साथ सुख, सुख के साथ दुख का अनोखा सम्मिश्रण रहता है इसमे, और कभी-कभी जब हम बहुत खुश नज़र आते हैं तो हमारा अंत:करण रो रहा होता है।

बादशाह को आये दिन पैसे की तंगी रहने लगी। मराठे भी अपना वायदा पूरा करने पर बार-बार ज़ोर दे रहे थे—उधर ज़ाब्ता ख़ां की तरफ़ से आये दिन समाचार मिल रहे थे कि वह अपनी फ़ौजी तैयारियां कर रहा है। एक तो इसी कारण तथा दूसरे तख़्तनशीनी के वक़्त उसके वकील के हाज़िर न होने से बादशाह काफ़ी नाराज़ थे। बादशाह ने कई ख़त भेजे लेकिन वह बादशाह की इताअत[1] करने से ही गुरेज़ नहीं कर रहा था बल्कि बादशाह के मुक़ाबिले के लिए फ़ौजें भी जमा कर रहा था। अतः सम्राट ने मराठों से सलाह करके यही तय किया कि उस पर चढ़ाई की जाये। मराठे तो चाहते ही यह थे—उन्होंने पहले भी बादशाह को राय दी थी कि रुहेलों पर चढ़ाई करने से काफ़ी पैसा मिल सकेगा और लम्बा-चौड़ा मुल्क भी। असल में अब्दाली की रुहेलों ने सहायता नहीं की होती तो पानीपत की लड़ाई में मराठों की हार शायद न होती। मराठे, जो रुहेलों से खार खाये बैठे थे, उन्हें अच्छा-ख़ासा सबक़ सिखाना चाहते थे। लेकिन होलकर की ज़ाब्ता ख़ां से दोस्ती थी, अत: तुकोजी ने बादशाह से उसका क़सूर मुआफ़ करने की सिफारिश की मगर बादशाह ने क़बूल नहीं की और मराठों और अपनी फ़ौजों को कूच का हुक्म दिया।

जब रुहेले सरदार हाफ़िज़ रहमत ख़ां ने यह सुना तो नवाब फ़ैज़ उल्लाह ख़ां को नजीबाबाद भेजकर ज़ाब्ता ख़ां को कहलाया कि बादशाह का मुक़ाबिला नहीं करना चाहिए बल्कि इताअत करनी चाहिए। नवाब फ़ैज़ उल्लाह ने बहुत समझाया मगर उसने एक न सुनी और यही जवाब

---

1. वफ़ादारी दिखाना

दिया, 'मैं जरूर मुकाबिला करूँगा।'

बादशाही फ़ौज के सिपहसालार नजफ़ खाँ और मराठों के सेनापति थे माधवजी सिंधिया, तुकोजी होलकर और बीसाजी। सम्राट स्वय भी क़िले से निकलकर फ़ौज के साथ चले। तुकोजी जाब्ता खाँ से मित्रता रखता था, अतः उसे सम्राट ने आज्ञा दी कि तुम शाही लश्कर से दस कोस आगे रहो। सम्राट को इसकी ओर से पूरा विश्वास नही था। जाब्ता खाँ ने क़रीब साठ हज़ार पैदल और सवारों की फ़ौज खड़ी कर ली थी। उसने अपने बीवी-बच्चो और कुटुम्ब-परिवार व धन-दौलत को नजीबाबाद मे सुरक्षित रखा और स्वय गंगा नदी पार करके इधर सक्करताल में मय अपनी फ़ौज के ठहर गया और अपने भाइयों को थोड़ी-थोड़ी फ़ौज देकर चाँदपुर नगीना की ओर भेज दिया ताकि वे रसद वग़ैरह का प्रबंध करते रहें। जाब्ता खाँ ने गंगा के घाटों पर भी सुरक्षा के लिए कुछ सेना छोड़ दी। बादशाही फौज ने सक्करताल का घेरा डाल दिया और उस पर विजय पाने के बहुत-कुछ प्रयत्न किये किंतु सफलता नही मिली। तब मराठों ने एक युक्ति निकाली। उन्होंने योजना बनायी कि कुछ सेना तो सक्करताल का घेरा डाले पड़ी रहे ताकि जाब्ता खाँ यह समझे कि कुल फ़ौज यही है और सेना का अधिकांश भाग लेकर नजीबाबाद पर आक्रमण करें। उस समय गंगानदी मे पानी बहुत अधिक था अतः पार जाना सरल नही था फिर भी बादशाही सैनिक सरलता से पार उतरने के स्थान खोजने के लिए किनारे पर इधर से उधर घूमने लगे। इस समय जाब्ता खाँ ने अन्य रुहेले सरदारों को लिखा कि मरहठों को अभी तक पार उतरने के स्थानो की जानकारी नही हुई है अत. आप लोग ऐसी जगहो की सुरक्षा के लिए गंगा किनारे पर अपने सैनिक नियुक्त कर दो वरना शाही लश्कर मेरे सारे मुल्क का सत्यानाश मार देगा और मुझसे फ़ुरसत पाकर तुम्हारे इलाक़ो पर चढ़ाई करेगा। अतः इन सरदारो ने फतेह खाँ को घाटो की सुरक्षा के लिए भेजा।

जाब्ता खाँ ने सक्करताल के नीचे की ओर गंगा पर एक नावों का पुल तैयार करा लिया था ताकि इसके द्वारा उसे रसद पहुँचती रहे। उसने फतेह खाँ से मिलकर विचार-विमर्श किया और यह तय किया कि सक्करताल के

बराबर से लेकर गंगा के ऊपर के घाटों पर अपनी सेनाएँ बीस-बीस कोस तक नियुक्त कर दें। घाटो की रक्षा के लिए सआदत खाँ और सादिक़ खाँ आफ़ीदी और कल्लू खाँ व मल्लू खाँ, करम खाँ, पायन्दा खाँ और अमान खाँ को इन सेनाओं के साथ रख दिया। फतेह खाँ सक्करताल के नीचे के घाटों की रक्षा के लिए स्वयं रहे।

इस सारे प्रबंध को देखकर नजफ़ खाँ और मराठा सरदारों की समझ मे आ गया कि जरूर गंगा कहीं-कहीं पार उतरने लाइक है। अतः बीसाजी और महादजी सिंधिया ने सम्राट से इजाज़त लेकर एक दिन आधी रात को कूच के नक्कारे बजवाये और मुग़ल सेना को साथ लेकर कई घाटो के पास होकर इस तरह आगे बढ़ गये कि रुहेलों ने समझा कि मराठा व मुग़ल सेना आगे बढ़ गयी है और अब वापिस नही आयेगी। अतः घाटों पर नियुक्त रुहेले सिपाही लापरवा हो गये और इधर-उधर मिलने-जुलने चले गये। जो वहाँ रहे वह भी सावधान नही थे। तभी यकायक मुग़ल और मराठा सेना लौट पड़ी और घाट पार करने का प्रयत्न करने लगी। इस घाट पर करम खाँ नियुक्त था। उसने थोड़े बहुत लोगो को जमा किया और एक टीले पर खड़ा हो गया। आसपास के घाटों के दो-तीन रुहेले सरदार और आ पहुँचे। सबसे पहले शाही सेनाध्यक्ष मिर्ज़ा नजफ़ खाँ अपनी फ़ौज को बढ़ाकर गगा मे घुस पड़ा और जब वह पानी मे ही था कि रुहेलों ने अपने बान और बदूकों की मार शुरू कर दी। नजफ खाँ के साथ ज़बूरक[1] मौजूद थे अतः उसकी फ़ौज ने उनकी बाढ़ मारना शुरू कर दिया। एक-दो घटे लड़ाई हुई और रुहेलों के तीन-चार अफ़सर काम आये—करम खाँ, आफ़ीदी वगैरह सभी बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए मारे गये। सरदारो के मरने से रुहेलो के पैर उखड़ गये और आपस में ही लूटमार शुरू कर दी। जो कुछ हाथ लगा लूटकर सब भाग खड़े हुए। जब यह खबर दूसरे घाटो तक पहुँची तो सब इतने भयग्रस्त हो गये कि वे भी आपस में मारकाट और लूटमार करके भाग खडे हुए। नजफ खाँ और मरहठे भी बिना पार गये ही वापिस लौट आये। जब सब रुहेले घाटो से नौ-दो-ग्यारह हो गये तो बादशाह गगा उतर-

---

1. बहुत छोटी तोप

कर पार हुए। मुगल व मराठा फ़ौजें भी आसानी से इस पार आने लगी।

जब मिर्ज़ा नजफ़ खाँ ने करम खाँ और सआदत खाँ रुहेले सरदारों के सर बादशाह को नज़र किये तो वह अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसे मलबूस ख़ास[1] ढाल और मोतियों की माला प्रदान की। और भी बहुत से सरदारों और सिपाहियों को इनाम बाँटे।

इसके बाद सम्राट ने तुरंत आज्ञा दी कि पत्थरगढ़ को घेर लिया जाये ताकि ज़ाब्ता खाँ अपना माल असबाब तथा ख़ज़ाना वहाँ से निकाल नहीं पाये। पत्थरगढ़ नजीबाबाद के पास किला था। जैसे ही ज़ाब्ता खाँ को ख़बर लगी कि शाही फ़ौजें नजीबाबाद की तरफ़ हमला करने बढ़ रही हैं तो वह बहुत घबराया और सक्करताल के नीचे की ओर से गंगा पार करके नवाब फ़ैज़उल्लाह के पास आया जो नजीबाबाद से आकर गंगा के किनारे ठहर गये थे। जब ज़ाब्ता खाँ ने उनसे अपनी परेशानी के बारे में बताया और मदद चाही तो उन्होंने साफ़ कह दिया, 'मैं क्या करूं, मैं सिर्फ़ तुमको समझाने आया था, जब तुमने मेरी राय नहीं मानी तो तुम जानो तुम्हारा काम जाने।'

इस उत्तर से ज़ाब्ता बहुत परेशान हुआ और पुनः सक्करताल की तरफ़ आया लेकिन जब देखा कि मराठों व मुगलों की सेना सामने खड़ी है तो घबराकर पुनः फ़ैज़ उल्लाह खाँ के पास आया और उनके साथ तुरंत भागकर रामपुर की तरफ़ चला गया।

जब सक्करताल के सैनिकों को यह समाचार मिला कि ज़ाब्ता खाँ भाग गया है तो वे आपस में ही लूट-खसूट करके अधिक-से-अधिक माल हथियाकर भाग छूटे और शाही सेनाओं ने सरलता से सक्करताल पर अधिकार जमा लिया।

उधर पत्थरगढ़ (नजीबाबाद) में ज़ाब्ता की फ़ौजें इसलिए डटी थीं कि सक्करताल से शीघ्र सहायता आ जायेगी, लेकिन कुमुक पहुँचने के बजाये जब यह संदेश पहुँचा कि सक्करताल शाही सेना ने जीत लिया है तो वहाँ भी भगदड़ मच गयी। एक तूफ़ान-सा आ गया। जिसके जो हाथ

---

1. विशेष शस्त्र

लगा लेकर भागा। बहुत से आपस में ही लड़-झगड़कर घायल हुए या मारे गये और बाकी भाग गये।

जैसे ही सम्राट व मराठों की सेना वहाँ पहुँची तो शेष रही ज़ाब्ता खाँ की फ़ौज ने सम्राट से अमान[1] के लिए दरख्वास्त की। उन्होंने तुरंत शाही अधिकारियों को क़िले पर अधिकार दे दिया। बादशाह ने आज्ञा दी कि सब सामान पर कब्ज़ा कर लिया जाये।

मुग़ल व मराठा फ़ौजों ने बहुत से लोगों को मौत के घाट उतार दिया, क़िले में एक मुग़ल सैनिक ने एक किशोर पर तलवार उठायी ही थी कि बादशाह के नाज़िर मंज़ूर अली खाँ ने जो वहीं उपस्थित था। लड़के के ऊपर अपना शाल डाल दिया और हाथ उठाकर कहा—

'ख़ुदा के वास्ते इस बेगुनाह मासूम पर रहम करो।' सैनिक की तलवार उठी-की-उठी रह गयी, उसने मंज़ूर अली की तरफ़ देखा और आगे बढ़ लिया।

'या इलाही, इतना हसीन छोकरा' मंज़ूर अली ने सोचा और 'क्या नाम है तुम्हारा?' पूछ लिया।

'जी गुलाम कादिर, साहिबज़ादा गुलाम क़ादिर।' किशोर खड़ा-खड़ा काँप रहा था।

'डरने की ज़रूरत नहीं है—तुम अब बिलकुल महफ़ूज़ हो।' मंज़ूर ने ढाढ़स बँधाया।

मंज़ूर अली खाँ, नाज़िर-महल शाही, कोई मामूली आदमी नहीं था—वह बादशाह के यौवनकाल के सभी रहस्यों का जानकार था और अब मुसाहिब-ख़ास था। गुलाम कादिर का सौंदर्य देखकर वह एकबारगी विश्वास न कर पाया। 'कोई आदम-ज़ाद इतना ख़ूबसूरत भी हो सकता है!' बादशाह के हर ऐब से परिचित मंज़ूर ने सोचा, 'वह बादशाह ही क्या जो मुख़्तलिफ़ किस्म के शौक न रखता हो!' और मंज़ूर अली ने जब सम्राट के शिविर में पहुँचकर गुलाम क़ादिर को उसके सम्मुख पेश किया तो बादशाह की लार टपकने लगी।

---

1. शांति

'इस लड़के को दिल्ली ले चलो।' उसने हुक्म सुनाया।

शाही सेना ने नजीबाबाद के महलों में उथल-पुथल मचा दी। नजीबुद्दौला का पिछले 30 वर्ष से एकत्रित किया हुआ खजाना, महल से संबंधित कारखाने वग़ैरह सबको जब्त कर लिया गया और जाब्ता खाँ के समस्त कुटुम्बियों को औरतों व बच्चों समेत गिरफ़्तार कर लिया। जनानखाने में हायतौबा मच गयी। मुग़ल व मराठे सिपाही औरतों को हाथ पकड़-पकड़ के बाहर खींच लाये और जिन्होंने विरोध करने की कोशिश की उनकी चोटी या बाल पकड़कर घसीटा। कई तरह से उन्हें अपमानित किया गया। जिस समय यह सब हो रहा था गुलाम कादिर वहीं था और सब-कुछ देखकर तड़प-तड़पकर रह गया।

सबको जान के लाले पड़े थे।

मराठों ने जाब्ता खाँ के राज्य में भी लूटमार मचा दी और 2-3 करोड़ रुपये इकट्ठे कर लिए। उन्होंने गुस्से में आकर नजीबाबाद में नजीबुद्दौला की क़ब्र को भी खाद डाला। शाही सेना के हाथ जाब्ता खाँ का तमाम तोपखाना भी लगा जिसमें 200 के करीब तोपें थी।

लेकिन मराठों ने खज़ाना, अच्छे-अच्छे हाथी-घोड़े और बढ़िया माल-असबाब तो स्वयं हथिया लिया और बेकार व रद्दी सामान बादशाह के लिए रखा। वैसे उन्होंने पहले बादशाह को यह आश्वासन दिया था कि लूट के माल का उचित रूप से बँटवारा किया जायेगा। बादशाही फ़ौज के कई अधिकारियों ने, खासकर जुल्फ़िकार-उद-दौला ने मराठों के इस रवैये का विरोध किया किंतु बादशाह ने उन्हें सांत्वना देकर झगड़ने से रोक लिया और कहा कि दिल्ली पहुँचकर इस मामले में कोई कार्रवाई करेंगे और अगर मुमकिन हुआ तो मराठों को अपने मुल्क से हमेशा के लिए रुख़सत कर देंगे। शाही अफ़सर खामोश रह गये। और बात आयी-गयी हो गयी। मराठों को जब पता चला कि जाब्ता खाँ रामपुर की तरफ़ भाग गया है तो उन्होंने उधर जाने का इरादा किया लेकिन फिर इरादा बदल दिया और सम्राट व मराठों की सेना ने देहली की तरफ कूच किया।

दो सिपाही अँधेरी रात मे लाल किले के एक सुनसान भाग में चले जा रहे थे। हल्की-सी रोशनी रास्ता देखने के लिए कभी-कभी उनके पैरों के आस-पास हो जाती थी। शायद कोई छोटी-सी मशाल थी एक के हाथ मे, चारों ओर से ढकी हुई मशाल। वे यद्यपि बहुत तेज किंतु सतर्कता से चल रहे थे फिर भी निस्तब्ध रजनी मे उनकी पदचाप क़िले की पक्की विशाल दीवारों में टकराकर गूंज उठती थी। आसपास काफी काँटे व सूखे पत्ते पड़े थे जो इनके पैरों तले आकर कभी-कभी खड़खड़ा उठते थे। वे एक सदर दरवाजे पर पहुँचे तो नंगी तलवार लिए एक पहरेदार ने कड़ककर रोका 'ठहरो' एक युवक ने तुरंत उत्तर दिया 'शामियाना', और सिपाही ने तलवार झुका ली। हल्की कंदील की रोशनी में उन्हें देखा, दोनों उसी की-सी वर्दी पहने जवान थे, एक के माथे पर त्रिपुंड तिलक लगा हुआ था और दूसरा बिना तिलक का था। एक को पहचानते हुए पहरेदार ने कहा, 'अरे यासीन, इस वक़्त कहाँ?' 'यार नाजिर साहब ने एक ख़ास काम से भेजा है' और पहरेदार ने सदर फाटक की खिड़की खोलकर दोनों को अंदर जाने दिया।

कई गलियारों में होकर यह चलते गये, दो जगह सिपाहियों ने फिर रोका तो शाहंशाह की मुहर ख़ास का काग़ज उन्हें दिखा दिया गया और वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ दुर्गंध के मारे खड़ा होना कठिन था। पीपल का पेड़ खड़खड़ाया तो ऐसा लगा जैसे कोई महाकाय दैत्य हड्डियाँ चबा रहा हो। तिलकधारी के रोंगटे खड़े हो गये। दोनों आगे बढ़े तो सीखचों से घिरा हुआ एक विशाल फाटक आया। वहाँ पहुंचकर उन्होंने पहरेदार के बोलने से पहले अपने-अपने दोनों हाथ ऊँचे किये और पहरेदार इशारा पाकर तुरंत ताला खोलने लगा। किच-किच करता हुआ फाटक खुला और वे अंदर घुसे। चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा और सियार खरगोशों के रहने योग्य माँदें-ही-माँदें। ऐसी ही एक माँद के पास ये पहुँच रहे थे कि संतरी ने यासीन के कंधे पर हाथ रख दिया, और धीरे से फुसफुसाया, 'यार बहुत देर कर दी, कब से इंतिज़ार कर रहा हूँ!' यासीन ने इशारे से कुछ उत्तर दिया और तभी एक उसी की वर्दी मे संतरी सामने आकर खड़ा हो गया। 'चलो।'

'चलो।'

और तीनो चल पड़े, उस मार्ग से नहीं, एक और गुप्त मार्ग से जहाँ एक सीखचों का दरवाज़ा मार्ग रोके हुए था। यासीन ने धीरे से पुकारा, इकराम, इकराम। वहीं झपकी लेता हुआ एक सिपाही चौंककर खड़ा हुआ और तीनों को गौर से देखा, जेब से चाबी निकाली सीखचों का फाटक खोल दिया और कहा, 'खुदा हाफ़िज़।'

तीनों ने लगभग एक ही स्वर में उत्तर दिया 'खुदा हाफ़िज़' और आगे बढ़ गये। सौ कदम चलने के बाद ही चारों तरफ़ कूड़े-करकट के ढेर पड़े थे और आगे थी क़िले की विशाल दीवार जिसके उस पार विशाल खाई थी। वे दीवार के सहारे बड़े ऊबड़-खाबड़ मार्ग से बायीं ओर को बढ़े और लगभग पंद्रह मिनट में किले के एक सदर दरवाज़े पर थे। दस सिपाही नंगी तलवारों से पहरा दे रहे थे। तिलकधारी सिपाही ने एक हाथ ऊँचा किया तो एक पहरेदार पास आया। तिलकधारी ने कहा, 'चचाजान कहाँ हैं ?' उसने पहचाना तो अपने नायक को अंदर से बुला लिया। नायक ने सिपाहियों को हुक्म दिया, 'जाने दो' और फाटक चरमराकर खुल गया था। तीनों बाहर निकले और गहरी निश्वास ली। थोड़ी देर तक तीनों तीव्र गति से साथ-साथ चलते रहे फिर तिलकधारी चाँदनी चौक की ओर बढ़ लिया और दोनों काश्मीरी दरवाज़े की तरफ़। अभी मुश्किल से एक घंटा हुआ होगा कि दो सवार काश्मीरी दरवाज़े की ओर बढ़े चले जा रहे थे 'टप-टप-टपा-टप' घोड़े की टापों की ध्वनि उषाकाल की अनेक दूसरी आवाज़ों में मिल गयी थी और दोनों काश्मीरी दरवाज़े जा पहुँचे। एक वही तिलकधारी सिपाही था और दूसरा कोई नवयुवक सिपाही, फ़ौज की वर्दी में। काश्मीरी दरवाज़े पर एक घुड़सवार प्रतीक्षा में था। इनके पहुँचते ही वह बोला, 'चलो।'

उत्तर मिला 'चलो' और दो सवार बादशाही फौज की वर्दी में सरपट उड़े जा रहे थे। टेढ़े-मेढ़े रास्ते से ये धौला कुआँ पहुँचे फिर दिन निकला गुड़गाँव में। ये सीधी सड़क पकड़ने के बजाय कच्चे रास्ते से ठहरते-ठहराते दो दिनों में बहरोड़, कोटपुतली होते हुए चदवाजी पहुँच गये थे जो जयपुर राज्य में था। वहीं एक खंडहर-सी सराय में इन्होंने रात्रि विश्राम किया और दिन निकलते ही घोड़ों को एड़ लगा दी। आमेर तक पहुँचते-पहुँचते

सूरज काफी निकल आया था। रास्ता एकदम जंगल का था, चारो ओर शेर-बघेरे आदि जानवरों का खतरा था लेकिन दोपहर तक इस रास्ते पर काफ़ी चहल-पहल रहने के कारण सभी जानवर रास्ते से दूर घने जंगल में दुबके रहते थे। इधर इन घुडसवारों को तो जयपुर पहुँचने की जल्दी थी। वे तो चाहते थे कि जल्दी उस बडे नगर की भीड मे मिल जायें। दोनो ने फ़ौजी वर्दी उतारकर सादा मुसलमान युवको का लिबास पहन लिया था।

नगर की छटा देखकर दोनो का मन मुग्ध हो गया और हवामहल तक पहुँचते-पहुँचते दोनो एक साथ बोल उठे, 'अरे यह तो दिल्ली से भी खूबसूरत शहर है।' आराम करने की इच्छा होते हुए भी वे शहर की हर सडक पर घूमने लगे। जनेव चौक, हवामहल, जतर-मंतर, सरगा-सूली, त्रिपोलिया—एकदम सीधी सडकें और चौडी कितनी हैं, जैसे कई चाँदनी चौक यहाँ इकट्ठे हो गये हो। शाम को वे घाट दरवाजे की तरफ़ एक सराय मे आकर ठहर गये—दूसरे दिन सुबह होते-न-होते वे सागानेर की ओर चल दिये और दिन भर मे टोंक तक की मजिल तय कर ली।

'यह मराठो का इलाका आ गया है', एक ने कहा और अब मुगल फ़ौजो का कोई डर नही लेकिन फिर भी होशियार रहना ही अच्छा है। दूसरे ने बात समझकर सिर्फ सिर हिलाया।

टोंक में रात्रि विश्राम किया और झालावाड की ओर निकले। 5-6 दिन मे रामपुरा, भानपुरा होते हुए ये लोग मदसौर जा पहुँचे थे। यह होलकर का राज्य था। मदसौर मे वे नदी के किनारे सैर-सपाटे करने निकले और फिर विश्राम किया और रतलाम होते हुए 4-5 दिन में धार जा पहुँचे। सुबह जब चले तो दोनो ने अंगरखा पायजामा आदि पहनकर हिंदुओ का वेष धारण कर रखा था। धार से निसरपुर पहुँचे तो अतिथि की तरह एक हवेली के द्वार पर जा पहुँचे। सेठ करोडीमल ने परिचय प्राप्त कर उनका आदर सत्कार किया और उन्ही की बैठक मे इन्होने रात्रि विश्राम किया। बड़े वाले युवक ने देखा कि महिलाएँ गणगौर पूजने निकल रही थी। 'निसरपुर की गणगौर का आनद भी लो, कल चले जाना।' गाँव के लोगों ने आग्रह किया और ठहर गये।

रमणियो के गीत दूर-दूर तक गूँज रहे थे—

'जल मरने रणुबाई आई, सग मे बालुडो लाई
कुण की बहू, कुण की बेटी, कुण की नारि कहाई।'

दोनों युवक इस उत्सव का मजा लेते रहे और दूसरे दिन आगे बढ़े। चार-पाँच दिन में किसी प्रकार हरसूद जा पहुँचे। यहाँ कुछ मुगल सिपाही इधर-उधर जाते दिखायी दिये फिर कुछ सवार भी जो बादशाही फ़ौज के से लगते थे, सामने से आते दिखायी दिये। ये बहुत घबराये और तुरंत घोड़े सड़क से दायी ओर को मोड़ दिये और पिपलानी गाँव मे जा पहुँचे।

गणगौर पूजने रंग-बिरंगे वस्त्राभूषणों में रमणियाँ झुंड की झुंड जा रही थीं—उनके गीतो का अर्थ तो ये लोग नही समझ पाये पर वे गा रही थी बडे मोहक स्वर मे—

'तुम बिन हो धणियेर राजा, हो ईसर राजा।
सूनी पडी रे म्हारी कुज गलियाँ
अपणा शहर मे जमराल्यो बसंत है—
कुरकई की बालद लाओ राजा बुलाओ राजा।

सदासुख गीते, एक नार्मदेय ब्राह्मण का परिवार था अतः वे उन्ही के अतिथि बने और दो-तीन दिन तक वही रहे ताकि मुगल सैनिको से सामना होने की संभावना नही रहे। यहाँ से नर्मदा पार उतरकर ये दोनो हरदा से होशंगाबाद होते हुए लगभग पद्रह दिन में भोपाल जा पहुँचे। उन दिनो यहाँ नवाब हयात मुहम्मद ख़ाँ, भोपाल के शासक थे। दोनों युवक शहर घूमघाम कर एक सराय में जा टिके।

रास्ते मे उन्हे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा, कही जंगल, कही नदियाँ, कही बादशाही सैनिको का डर, कही चोर-लुटेरों का ख़तरा। इतना लम्बा रास्ता कि महीनो चलते ही रहना—लेकिन फिर भी अपने गंतव्य पर पहुँचकर इतने आल्हादित हुए कि जिसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

•

कर्नाल शहर की ओर क़रीब-क़रीब चालीस-पचास घुड़सवार सरपट चाल से घोड़ों को दौड़ाते हुए चले जा रहे थे। उन्होंने शहर में पहुँचकर राज-

महल की राह ली और तोरण द्वार पर पहुँचकर पहरेदारों को अपना मंतव्य बताया। एक सिपाही अंदर की तरफ़ गया और लगभग आधे घंटे में लौटकर आया, उन्हें प्रवेश की आज्ञा दी और सारे सवार अंदर प्रविष्ट हुए। पहले चौक में दस को छोड़कर सब रुक गये। दस सवारों ने भी अपने-अपने घोड़े वहीं छोड़ दिये।

दो-तीन बड़े-बड़े चौक पार करके राजा गनपतसिंह के सिंह महल की ओर सिपाही ले गया और एक रक्षक से कुछ कहा। रक्षक ने अंदर जाने की इंगित की और ये लोग कक्ष में दाखिल हुए। राजा गनपतसिंह इनकी प्रतीक्षा कर रहा था, इन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और बड़े तपाक से बोला—

'आइये, आइये, नवाब साहब क्या हो खुशकिस्मत हैं हम कि आज आपके दीदार हुए।'

'जनाबे आली, खुशकिस्मती तो हमारी है कि अपने पुराने खानदानी अजीजों से एक अर्से बाद मुलाकात हो रही है।'

'हाँ-हाँ काफी अर्सा हो गया, आपके मरहूम वालिद साहब के साथ ही पाँच साल पहले आपसे मुलाकात हुई थी, कल की-सी बात लगती है।'

'जी हाँ, जी हाँ, कल की-सी।'

'फरमाइये क्या लीजियेगा, शरबत ? लस्सी ? मियाँ सरदारों के तो लस्सी ही चलती है, आपकी जो मर्जी हो वही लीजिये।'

'जी क़िब्ला[1], हम लोग भी लस्सी ही लेंगे, वैसे ठंड कुछ तेज होने लगी है मगर दोपहर मे लस्सी ठीक रहेगी।'

'लक्ष्मनसिंह लस्सी लाओ।' राजा ने आज्ञा दी।

'फ़रमाइये कैसे तशरीफ लाये हैं।'

'क़िब्ला...'

'अरे भाई क़िब्ला-शिब्ला छोड़ो, सीधे से चचा कहो चचा, मैं आपके वालिद का दोस्त था और वे भी मुझे अपने हकीकी छोटे भाई की तरह समझते थे।'

---

1. श्रीमान

'जी चचा जान, फिलहाल एक गजब की मुसीबत में पड़ा हूँ।'

'मुसीबत, दुश्मनों पर आये मुसीबत, जब तक आपके वालिद मरहूम मीर बख्शी साहब ज़िंदा थे, उन्होंने कभी मुसीबतों को मुसीबत नहीं समझा, यही वजह थी कि जहाँ हाथ डाला वहीं कामयाब हुए।'

'जी हुजूर, देखिये आपको ही कि जवाँमर्दी से बचा लाये थे। वे भरतपुर के जाटों की फ़ौज से···' यह मुंशी मनसुखराय, मुसाहिब कह रहे थे।

'हाँ, हाँ, कमाल दिखाया था उन्होंने उस जंग में वर्ना मैं तो बर्बाद ही हो गया था।'

'हाँ; और क्या बखूबी वहीं-का-वहीं पैसों का भी इंतिज़ाम करा दिया था उन्होंने' मुंशीजी ने कहा।

'जी हाँ, जी हाँ, उनको तो रोज याद करते हैं हम लोग, हाँ जनाब नवाब साहब कहिये क्या मुसीबत है।'

'जी बादशाह से मुकाबिला किया था।'

'जंग हुई और हमारी फ़ौजों की शिकस्त फाश[1] हुई और मैं भागकर आपके यहाँ पनाह लेने आया हूँ।' वह घुटनों के बल बैठकर राजा को आदाब बजाने[2] लगा।'

'हत्तेरे की हार हो गयी! जंग का तो मुझे पता था मगर आपकी हार हो गयी यह अभी मालूम हुआ है, लेकिन नवाब साहब, बादशाह के ख़िलाफ़ पनाह देना भी तो बग़ावत होगी।'

'काम मुश्किल तो है, देख लीजिये चचा जान।'

मुंशीजी ने कहा, 'हुजूर नवाब मरहूम के अहसानों का ख़याल फरमायें, इस वक़्त आपके अलावा हमें कोई सहारा नहीं है, बादशाह भी आप जैसे बहादुरों का कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

सरदार का सीना फूल गया था, 'खालसा कभी पनाह के लिए आये हुए को नाउम्मीद नहीं करता, ठीक है नवाब साहब आप यहाँ ठहरिये।'

'चचा जान मैं आपका वाक़ई भतीजा बनना चाहता हूँ।'

'वह तो तुम हो ही।'

---

1. भारी पराजय 2. अभिवादन करना

'नहीं अभी नहीं, मैं गुरुद्वारे का अमृत चखना चाहता हूँ, सही माइनी में सिख बनना चाहता हूँ, ताकि आप जैसे बहादुर चचा का'''।'

'वाह, वाह, वाह गुरु की फतह वाह गुरु का खालसा, यह तो बड़ा अच्छा ख़्याल है, इसमें देर मत करना, आज ही गुरुद्वारे जाकर अमृत चख लो और बन जाओ सिक्ख !'

और राजा गनपतसिंह ने सच्चे दिल से नवाब जाब्ता खाँ को शरण दे दी। जाब्ता खाँ उसी दिन गुरुद्वारा पहुँचा, इतनी बड़ी संगत में शामिल हुआ और सबके सामने अमृत चख लिया। उसने जाब्ता खाँ की खाल उतारकर रख दी और सरदार धरमसिंह बन गया पंच क-कार धारण कर लिए और अपने चच्चा राजा गनपत के पास आकर पाँवों में सर रख दिया। चाचा ने अश्रुपूरित आँखों से उसे उठाकर छाती से लगा लिया और दुआएँ बरसा दीं। जाब्ता खाँ उर्फ धरमसिंह अब मंसूबे तैयार करने लगा।

राजा गनपतसिंह ने अपने अमीरों में से एक मनबहार सिंह नाम के सरदार को जाब्ता खाँ के साथ लगा दिया। वह सरदार बड़ा चतुर और चीते की-सी तेज़ी वाला था लेकिन बड़ा धर्मपरायण और गंभीर भी था। वह अपने साथ 50-60 खालसा सवार भी रखता था। गनपतसिंह ने मनबहार सिंह को अच्छी तरह समझा दिया था कि जान-में-जान रहते जाब्ता खाँ की रक्षा करना, हमने उसे वचन दे दिये हैं, देखो उसका बाल भी बाँका न हो। और उसी दिन से मनबहार सिंह उसका शरीर-रक्षक बन गया, कवच की तरह।

जाब्ता खाँ ने भी कुछ मनबहार सिंह की मदद से और कुछ राजा गनपतसिंह की सहायता से अपनी सेना तैयार करना शुरू किया। वह अच्छी तरह जानता था कि मराठों का सम्राट पर काफ़ी प्रभाव है और वैसे भी अब वे उत्तरी भारत में फिर से जोर पकड़ रहे हैं अतः उसने अपने मित्र तुकोजी होलकर की सहायता से लाभ उठाना चाहा और उससे संपर्क साधना शुरू किया। तुकोजी जाब्ता खाँ से काफी सहानुभूति रखता था क्योंकि मल्हारराव होलकर और जाब्ता खाँ के पिता नजीबुद्दौला में गहरी दोस्ती थी और नजीब अच्छी तरह जानता था कि भारत के भावी अधिष्ठाता मराठे ही होंगे। अतः वह अपने पुत्र को तुकोजी के संरक्षण में सौंप गया था।

तुकोजी ने ज़ाब्ता ख़ाँ को वायदा किया कि मैं बादशाह से तुम्हारा क़सूर मुआफ़ करा दूँगा और एक दिन बादशाह के हुज़ूर मे उसने गुज़ारिश भी की कि ज़ाब्ता ख़ाँ से बहुत बड़ा क़सूर हुआ है लेकिन अब वह मुआफ़ी का ख़्वाहिस्तगार है और अपने किये पर बजहद् शर्मिंदा है। लिहाज़ा उसका कसूर मुआफ़ फरमाया जावे।

यह सुनकर बादशाह आगबबूला हो गया, 'उस कम्बख़्त का अफ़् कसूर[1] हरगिज नही हो सकता।'

'जहाँपनाह, अगर सुबह का भूला शाम तक घर आ जाये तो उसे भूला नही कहते। वह हुज़ूर में पेश होकर इताअत करने तैयार है।'

'मगर उस बदबख़्त ने हमारी एक मर्तबा नही, बारहा[2] हुक्म-उदूली[3] की है, नही तुको यह हरगिज नही हो सकता। हरगिज नही।'

'आलीजाह मामले पर नजरसानी[4] फ़रमायें…'

'नही, नही, किसी कीमत पर नही।' और बादशाह खड़ा हो गया। यह तुको को चले जाने का इशारा था।

तुकोजी अपना-सा मुँह लटकाये चला आया।

नजीबाबाद पर चढ़ाई में विजय तो बहुत सफलता से हुई लेकिन जो लूट का माल मिला उसका कोई हिसाब मराठों ने सम्राट को नही दिया था। उनका कहना था कि जो चालीस लाख रुपया बादशाह ने उन्हे देने का वचन दिया था उसका आधा भी उन्हें प्राप्त नहीं हुआ है और न मेरठ वगैरह के इलाके मे कुछ गाँव देने का वायदा ही पूरा हुआ।

तुकोजी ने महादजी सिंधिया और बीसाजी को भी सम्राट की ओर से भड़का दिया और उनकी फ़ौजों ने अपना रुपया वसूल करने के लिए दिल्ली शहर को लूटना शुरू किया। सारे शहर मे भगदड़ मच गयी और बहुत से लोग अकबराबाद, सोनपत कोल या अन्य इलाकों में भाग गये—एक बार पुनः दिल्ली की बर्बादी हुई। सारी आबादी थर-थर कांपने लगी। चारों तरफ़ काले साये मँडरा रहे थे।

हासिमुद्दौला ने मराठों को समझा दिया था कि बग़ैर लड़ाई किये

---

1. अपराध क्षमा 2. कई बार 3. आज्ञा का उल्लंघन 4. फिर सोचें

बादशाह ज़ाब्ता खाँ का कसूर मुआफ़ नही करेंगे अतः मराठे लड़ाई की तैयारियाँ करने लग गये। बादशाह को ज़ुल्फ़िक़ारुद्दौला और दूसरे लोगों ने भड़का दिया और कहा कि तुकोजी होल्कर और सिंधिया में आपस में मन-मुटाव है। अतः सिंधिया इस लड़ाई मे कोई भाग नही लेगा, अतः अकेला तुकोजी क्या कर सकता है। वफ़ादार अमीरों ने बादशाह को न लड़ने की भी सलाह दी मगर बादशाह नही माने।

बादशाही फ़ौजें मीर बख़्शी चहारुम नजफ़ खाँ के नेतृत्व मे मराठो से मुकाबिले के लिए बढ़ी, घमासान लड़ाई हुई। हासिमुद्दौला मराठो से मिल गया था अतः उसने अपने मोर्चे में ढील दे दी और ख़ाली तोपें चलाना शुरू कर दिया। अंत में बादशाही फ़ौजों की भारी पराजय हुई और मराठों ने दिल्ली शहर व लाल किले पर पूरी तरह से कब्ज़ा कर लिया। सम्राट को मराठी फ़ौजों के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा।

अब मराठों की मनमानी की बारी थी। उन्होंने नजफ खाँ को अपने पद से हटवा दिया और अपने पिट्ठू ज़ाब्ता खाँ को दिल्ली मीर बख़्शी नियुक्त करा दिया और उसे अमीर-उल-उमरा का ख़िताब भी दिया गया।

स्थिति इतनी ख़राब हो गयी थी कि सम्राट को पैसे-पैसे के लिए दूसरों का मुँह देखना पड़ता था। उसने खालसा, व अपने निजी खर्चे के लिए नियत इलाकों को अपने अधिकार में लेना चाहा लेकिन कतई सफलता नही मिली और उसके सैनिक रात-दिन अपना वेतन पाने के लिए हल्ला मचाने लगे। इस तरह की कठिन परिस्थितियो मे सम्राट जी रहा था।

नजीबाबाद (पत्थरगढ़) की विजय के बाद सम्राट व मराठों की सेनाओं ने ज़ाब्ता खाँ के महल की औरतों को काफ़ी बेइज्जत किया था। उनके साथ ही सम्राट ने मजूर अली खाँ को आज्ञा दी थी कि गुलाम कादिर को भी दिल्ली ले चलो। ग़ुलाम कादिर अनुपम सौंदर्य का किशोर था अतः बादशाह पर वहशीपन सवार हुआ और उसे काफ़ी अर्से तक अपने दुर्व्यसन का शिकार बनाता रहा।

अब ग़ुलाम कादिर किशोर से तरुण होता जा रहा था, प्रारंभ से ही

उसे हरम में जाने-आने की इजाजत बादशाह ने दे रखी थी।

एक दिन बादशाह रंगमहल में बैठा था कि हरम से बुलावा आया और वह तुरंत वहाँ पहुँचा।

'यह तुम्हारा चहेता गुलाम क़ादिर तो बहुत हरामज़ादा निकला।' साहब महल बेगम ने शिकायत की।

'क्यों क्या हुआ?'

'अभी बताती हूँ, लेकिन पहिले वायदा करो कि उसे माकूल सज़ा दी जायेगी।'

'दादी जान पहिले से वायदा क्यों चाहती हैं आप, क्या आपको हमारा इत्मीनान नहीं!'

'इत्मीनान क्यों नहीं, मगर वह तुम्हारी आँखों का नूर जो है, उसके तो तुम हजार गुनाह भी शायद मुआफ़ कर दोगे।'

'हरगिज़ नहीं, यह कैसे हो सकता है, पहेली क्यों बुझा रही हैं दादी जान, जल्दी बताती क्यों नहीं उसने क्या किया' सम्राट अधीर था।

अब मलका-ए-ज़मानी बोली, 'मगर तुम वायदा क्यों नहीं करते कि उसे माकूल सज़ा दोगे।'

'उफ़, ओ, इसमें आपको शको-शुबह किसलिए हो रहा है, लीजिये वायदा करता हूँ वैसे क़ादिर है तो बहुत भोला-भाला।'

'लो, आ गयी न वही बात, मैं जानती थी'''।' ज़मानी बेगम ने कहा।

'मगर, मगर वायदा भी करा लिया और असल बात अब भी टाल रही हैं आप फ़रमाइये न क्या हुआ!' बादशाह परेशान होकर बोला।

'वह शाहज़ादियों से छेड़छाड़ करने की कोशिश करने लगा है!'

'शाहज़ादियों से छेड़छाड़, उसकी यह जुरअत, उसका हरम में आना बंद क्यों नहीं कर दिया गया अब तक।'

'वह तो हमने आज ही ख़्वाजासराओं को हुक्म दे दिया है।' दोनों बुज़ुर्ग बेगमें एक साथ बोलीं, 'लेकिन उसने जो कुछ किया है उसकी सज़ा तो मिलनी चाहिए उसे।'

'किस शाहज़ादी से गुस्ताख़ी की, किस तरह की, उसको मेरे सामने

बुलवाइये न।'

'किसको बुला रहे है।'

'जी शाहज़ादी को।'

'उफ ओ, तो अब शाहज़ादियाँ भी जनाब शाहंशाह-ए-हिंदोस्तान के सामने आकर बयान देंगी और वह भी अपने हाथ हुई बेहूदा'''।'

'अच्छा कुछ तफ़सील तो मिलनी चाहिए।'

'तफ़सील यही है कि शाहज़ादी ज़ैनब की तरफ़ गुस्ताख़ निगाहों से ताक रहा था कम्बख़्त और बेहूदा इशारे भी कर रहा था।'

बादशाह का ख़ून खौलने लगा, तभी पीछे कुछ सरसराहट मालूम हुई, मुड़कर देखा तो ज़ैनब खड़ी थी। 14-15 वर्ष की यौवन की देहलीज पर खड़ी किशोरी—उसका गुलाबी मुख-मंडल गहरा गुलाबी हो गया था।

'आपको क्योंकर इल्म हुआ ?' बादशाह ने बेगमो से पूछा।

'हमसे खुद ज़ैनब ने ही शिकायत की।' यह साहिब महल थी।

'उफ, क्यो ज़ैनब, क्या यह सब सही है।' थोड़ा पीछे मुड़कर शाहशाह ने प्रश्न दागा।

ज़ैनब के गालो पर सफ़ेदी छा गयी, फिर पीलापन और फिर एकदम सुर्ख़ी। उसे आशा नही थी कि शाहंशाह खुद ही उससे सवाल कर लेंगे। दोनों बुजुर्ग बेगमे इस अप्रत्याशित पूछे गये सवाल को अपनी तौहीन समझकर चिढ़कर बोली, 'हाँ बोलती क्यो नही—एक मामूली लौंडी की तरह शहादत क्यों नही देती, शाहशाह के हुजूर मे।'

और ज़ैनब ने डरते और सकुचाते हुए कहा, 'जी आलीजाह।'

सम्राट आगबबूला हो गया। फ़ौरन इस्माइल बेग को हुक्म दिया कि उस ज़लील गुलाम क़ादिर को हमारे सामने पेश किया जाये।

दीवाने ख़ास में सम्राट के सामने काँपता हुआ गुलाम क़ादिर खड़ा था। उसे अपना कसूर ज्ञात था। दिल मे चोर था ही उसके 'लेकिन क्या शाहज़ादी का कोई कसूर नही था' उसने सोचा, उसकी दावत देती निगाहें[1] कितने दिनो से उसका पीछा कर रही थी, कब से वह पशोपेश में पड़ा था,

---

1. आमंत्रित करती नजरें

कितना ज़ब्त किया था उसने और आज सारा क़सूर उसी के सर मढ़ा जायेगा, यह भी वह बखूबी जानता था। जो भी हो वह हाथ बांधे खड़ा था। उसने सोचा था कि कुछ सवाल पूछेंगे शाहंशाह, जल्दी-जल्दी उसने कुछ जवाब भी सोच लिए थे, लेकिन यह तो मुग़लिया दरबार है, ज़रूरी नहीं कि दोनों फ़रीक़ैन[1] को सुना ही जाये।

लाल आँखें हो रही थी शाहंशाह की। 'इस हरामज़ादे को खुनसा बना दिया जाये, अभी इसी वक़्त।'

गुलाम कादिर रो पड़ा—'हुज़ूर रहम करें, जहांपनाह रहम' वह गिड़-गिड़ाया लेकिन बादशाह ने दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया था। आज क़ादिर को अनुभव हुआ कि जिस बादशाह को वह अपने बिलकुल क़रीब समझता था, जिसके साथ उसका मामला इतना माहिद[2] था, वही बादशाह उससे कितना अलग और दूर है। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

प्रकृति की पुरुष को दी हुई अनुपम देन सम्राट की ज़ुबान हिलते ही गुलाम क़ादिर से सदैव के लिए छीन ली गयी और ज़मानी बेगम, साहब महल रौशन महल वग़ैरह सभी की छाती ठंडी हो गयी और गुलाम कादिर यातना और क्रोध से दांत पीस-पीसकर रह गया।

अब गुलाम क़ादिर के हरम में जाने-आने पर कोई रोक-टोक नहीं रही लेकिन वह खुद ही उधर जाने से कतराता था। कुछ दिन यों ही गुज़र गये लेकिन बेगमों को तो कुछ काम चाहिए, बैठी ठाली करें क्या! मर्ज़ी आती तब कादिर को बुला भेजतीं और उसे लात घूंसों से मारतीं या ख़्वाजा सराओं से जूतियों से पिटवातीं।

'मुर्ग़ा बन जा, अबे ओ हीजड़े मुर्ग़ा बन ठीक से' खैरुन्निसा ने आज्ञा दी। गुलाम क़ादिर को तुरत आज्ञा माननी पड़ी—उसकी पीठ पर एक जूती रख दी गयी। 'ठीक से कान पकड़। जूती नहीं गिरनी चाहिए, समझा।'

आधा-आधा घंटे तक मुर्ग़ा बना रहता। कभी बेगमें उसके मुंह पर थूक देतीं तो कभी उसके बाल पकड़कर चारों तरफ़ घिसटवातीं। महल की

---

1. पक्षों 2. एक

कनीजें भी अब क़ादिर को ख़ौफ़नाक शैतान नज़र आती थी। सब उसकी खिल्ली उड़ाती। कान पकड़कर इधर-उधर घुमाती और शाहज़ादियाँ उस पर पान की पीक मार देती। जैसे गुलाम क़ादिर एक ही दिन मे आदमी से जानवर बना दिया गया हो और उनके मनोरजन की वस्तु हो।

काफी दिनो यही सिलसिला चलता रहा और क़ादिर खून के घूंट पीता रहा लेकिन थोड़े ही दिनो बाद जब उसका पिता ज़ाब्ता खाँ मीर बख़्शी बना तो उसकी जान मे जान आयी। अब उसे हरम मे तंग करने की किसी की हिम्मत नही पड़ती थी लेकिन पुरानी आदत जो पड़ी थी सबको। उसकी बुरी तरह खिल्ली उड़ायी जाती। ज़ाब्ता खाँ को बहुत सारी शिकायतें मिली लेकिन वह भी तो एकदम कुछ करने की स्थिति मे नही था। खून का घूंट पी लेता। उसे अनेकों समस्याओं से जूझना था—मौके की तलाश मे इतज़ार करता रहा। धीरे-धीरे सारे ख़ज़ाने, धन, दौलत और हुकूमत पर कब्ज़ा जमाता गया। और बादशाह की शक्ति को अधिक-से-अधिक कमज़ोर बनाता गया। सेनाएँ बादशाह से पैसा मांगती वेतन का, लेकिन यहाँ तो शाही खानदान को भूखों मरने की नौबत आ चुकी थी। अग्रेज़ ईस्ट इडिया कपनी को कई बार लिखा गया कि पेंशन को जारी रखकर पैसा भेजने की कृपा करें लेकिन वहाँ से अतिम उत्तर भी आ गया। चूंकि सम्राट अपनी इच्छा से मराठों के संरक्षण में चले गये हैं, इसलिए कपनी सरकार का उन्हे किसी भी प्रकार की सहायता देने का उत्तरदायित्व पूर्णतः समाप्त हो चुका है।

तभी महादजी सिंधिया वकील मुतलक़ (सरक्षक) बने और प्रशासन की बागडोर अपने हाथ मे ले ली। अब सम्राट के सभी काम सुविधापूर्वक चलने लगे। यह दौर थोड़े ही दिन चल सका क्योंकि सिंधिया को शीघ्र ही राजपूतों से लोहा लेने राजपूताना (राजस्थान) की ओर जाना पडा। कई राजपूत राजाओं ने उसे कर देने से इनकार कर दिया था। वे लड़ने के लिए तैयार थे और सब मिलकर जयपुर में एकत्रित हो गये थे। जयपुर नगर जैसे राज्य की राजधानी नही, एक विशाल फ़ौजी छावनी हो गया हो। जलेब चौक, सिरे ड्योढ़ी बाज़ार, रामगज त्रिपोलिया, किशनपोल, चाँदपोल और जोहरी बाज़ार सभी सैनिकों से ठसाठस भरे थे। नागरिकों के

लिए खाने-पीने की वस्तुओं की काफ़ी तंगी हो गयी थी फिर भी सभी पूरी तरह से सहयोग दे रहे थे क्योंकि मराठों से सब लोग काफ़ी त्रस्त थे।

इधर सिंधिया ने अपनी सेना के आधुनिकीकरण के लिए कई सुधार किये थे, जिसके फलस्वरूप बहुत से सेनापतियों की जागीरें जब्त कर ली गयी थीं। ख़ासतौर से इनमें से मुसलमान सेनानायक इस कार्रवाई से बहुत नाराज हुए और बहुत से सिंधिया की छावनी छोड़कर चले गये। कुछ राजपूतों से जा मिले तथा कुछ यद्यपि सिंधिया की फ़ौज में ही रहे तथापि उन्होंने राजपूतों से मिलने का गुप्त क़रार कर लिया। नतीजा यह हुआ कि जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तो इन सब मुसलमान सरदारों ने राजपूतों की सहायता की। सिंधिया की फ़ौज में जो मुसलमान अधिकारी अब भी थे, ऐन मौक़े पर उसकी ख़िलाफ़त करने लगे। अंत में मराठों को जयपुर की चहारदीवारी से इन सम्मिलित सेनाओं ने बुरी तरह खदेड़ दिया और दौसा होकर लालसोट तक खदेड़ते ले गये। वहाँ फिर एक बार सिंधिया ने प्रयत्न किया किंतु उसकी करारी हार हुई और मराठी सेना को बहुत नीचा देखना पड़ा। यहाँ सिंधिया का परम विश्वस्त सेनानायक मोहम्मद बेग और उसका भतीजा इस्माइल बेग विपक्ष से जा मिले थे। इस पराजय से सिंधिया का वर्चस्व अपमान में परिणत हो गया। सिंधिया ने अंत में ग्वालियर की ओर भागकर वहाँ पहुँचकर दम लिया। इसी अर्से में जब सिंधिया राजस्थान में बुरी तरह फँस रहा था दिल्ली के लाल क़िले में तरह-तरह के षड्यंत्र चल रहे थे। ग़ुलाम क़ादिर अपने पिता ज़ाब्ता ख़ाँ की जगह मीर बख़्शी का पद पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। उसने अपनी फ़ौजें जमा कर ली थी और कई क्षेत्रों पर छुटपुट हमले करता रहता था ताकि अपनी शक्ति बढ़ा ले।

सम्राट ने सुल्तान और उसके साथियों को मौत की सजा देने के बाद बाक़ी रहे एक मुल्ज़िम को भी तलाश करने का परवाना कोतवाल के नाम जारी कर दिया था। अतः जैसे ही दस दिन बाद नजीरुल हुसैन अकबराबाद से लौटा, उसे गिरफ़्तार करके सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसने

तुरंत अपना अपराध क़बूल कर लिया और बादशाह ने उसे भी ताजिंदगी क़ैद की सज़ा सुना दी।

उस दिन जब दीवाने ख़ास में नज़ीरुल हुसैन पर नग़मा की दृष्टि पड़ी तो वह बहुत ख़ुश हुई। आख़िर अपने महबूब के उसे दीदार मिले। उसे जब बादशाह ने क़ैद की सज़ा सुनायी तो नग़मा बहुत ख़ुश हुई। झरोखों के कोने-कोने में खड़ी रहकर वह नज़ीर को विभिन्न कोणों से निहारती रही। नज़ीर पहले से काफ़ी कृपकाय हो गया था फिर भी उसके विशाल वक्ष-स्थल, लम्बी भुजायें और रोबदार चेहरा किसी भी नारी को आकर्षित कर लेने के लिए पर्याप्त थे। नग़मा घंटों वही तसवीर अपनी स्मृति की तहों में से निकाल-निकालकर कई तरह से निहारती रही और विचारों में खोयी रही। सरफ़राज़ ख़्वाजा सरा उसका बहुत विश्वासपात्र था। नग़मा ने महल की सैकड़ों पोलों को जान लिया था और वहाँ के कर्मचारियों को किस तरह किसी भी काम के लिए तैयार किया जा सकता है, यह भी अच्छी तरह परख लिया था। उसने महल से लेकर जेल के रक्षकों तक अपना जाल फैला दिया था और एक दिन अर्द्ध रात्रि को वह नज़ीर से मिलने को निकली। जेलख़ाने के अहाते में ही एक कमरे में दोनों की मुलाक़ात का प्रबंध था। नज़ीर बड़े उत्साह से नग़मा की प्रतीक्षा में था कि वह जा पहुँची। जैसे ही नज़ीर उसे देखकर खड़ा हुआ वह उसके कदमों में पड़ गयी।

'नज़ीर मुझे माफ़ कर दो तुम इन्सान नहीं फ़रिश्ते हो।'

'किस कसूर की माफ़ी चाहती हो रशीदन ?'

'मैंने तुम्हारे प्यार का बदला नफ़रत से दिया।'

'क़ाबिले-नफ़रत इन्सान से कौन नफ़रत नहीं करेगा रशीदन, लेकिन अब तुम चाहती क्या हो ?' विरक्त भाव से वह बोला, 'अब तो बादशाही हरम में तुम एक बेगम हो, ख़ुशोख़ुर्रम हो—मैं जो चाहता था वह हो गया, तुम मुझे नहीं चाहती थी इसलिए मैं जिंदगी भर क़ैद भुगतने के लिए तैयार हूँ। रशीदन प्यार कोई तबर्रुक[1] नहीं कि हर किसी को बाँट दिया जाये।

---

1. प्रसाद

सच्चा प्यार तो एक ही बार होता है और उसके लिए जाँनिसारी भी कुछ मायने नहीं रखती। मैंने तुमसे प्यार किया···।'

'नजीर मैं तुम्हें कब से प्यार करती हूँ, मैंने शायद तुम्हे धोखा दिया था—तुम्हें ही क्या खुद को धोखा दिया था—जैसे ही तुमने डोली मे बिठाया वह धोखे की टट्टी जलकर खाक हो गयी और उसकी आग में मैं आज तक झुलस रही हूँ!'

'इस दुनिया मे नामुमकिन कुछ नहीं, नजीर, महज़ कोशिश की जरूरत है और सबसे पहले तुम्हारी रज़ामंदी की।'

'मेरी रज़ामंदी की? एक ताजीस्त सजा भुगत रहे क़ैदी की रज़ामंदी या गैर रज़ामंदी की क्या वकत है रशीदन!'

'नजीर तुम्हारी जुबान से निकले एक-एक हर्फ़, एक-एक लफ़्ज़ की वकत मेरी जिंदगी है···!'

'रशीदन, जज्बात मे बह गयी हो तुम···अब कुछ नहीं हो सकता!'

'नजीर, सब कुछ हो सकता है—अभी भी वक़्त है एक तुम्हारी हाँ की ज़रूरत है—नजीर क्या अब भी तुम मुझे अपना सकते हो—एक जूठन को, बादशाह की···।'

'रशीदन क्या पागल हो गयी हो। तुम तो मेरी हो ही—अपनाने का सवाल ही कहाँ उठता है! लेकिन, जो कुछ तुम सोच रही हो उसमे जान जोखिम है। मुझे अपनी जान की फ़िक्र नहीं, लेकिन तुम्हें मैं किसी भी जोखिम में नहीं डाल सकता। तुम यह ख़याल बिलकुल छोड़ दो, मुझे भूल जाओ···।'

'वाह, वाह, नजीर मैं तुम्हें भूल जाऊँ और तुम मुझे याद करते रहो, कितने खुदग़रज हो तुम, बोलो जल्द बोलो, मुझे कबूल करते हो···!'

'क्या कह रही हो रशीदो, तुम्हे मैं हजार-हजार दिलो से क़बूल करता हूँ, मेरी हजार-हजार जुबानें तुम्हें क़बूल करती है, मेरी रग-रग, जिस्म का जर्रा-जर्रा तुम्हारा आशिक है, रशीदा मैंने तुमसे—सिर्फ़ तुम्ही से मुहब्बत की है।' और उसने रशीदन को गले से लगा लिया। रशीदन ने भी अपनी बाँहें नजीर के गले में डाल दी और कहा, 'अच्छा अगली कार्रवाई का इन्तजार करना। वक़्त हो चुका है, मैं चली।' और किले मे हलकी-हलकी

पदचापें रात्रि की निस्तब्धता में विलीन हो गयी।

इसी तरह एक और मुलाकात हुई और नजीर को पूरी योजना बता दी गयी, नज़ीर तो जैसे एकदम नया जीवन पा गया था। प्रत्येक आदेश को उसने पूरे ध्यान से सुना और उस पर अमल किया।

रशीदन ने अपने और नज़ीर के लिए किले और कैद से निकलने का पूरा-पूरा प्रबंध कर लिया था और वह तिलकधारी सिपाही के साथ काश्मीरी दरवाजे आ पहुँची थी। किले से निकलकर वह एक दिन शहर में तैयारी करती रही और एक युवक के वेष में काश्मीरी दरवाजे से नजीर से जा मिली थी। चलते-चलते दोनों भोपाल आकर एक सराय मे ठहर गये।

भोपाल के नवाब हयात मुहम्मद खाँ से नज़ीर का काफ़ी पुराना परिचय था। वे उसकी मां के चचेरे भाई थे। सराय में पहुँचकर नज़ीर ने नवाब साहब से मुलाकात की कोशिश शुरू की और एक दिन अवसर मिल ही गया। नवाब साहब काफ़ी मिलनसार थे, जैसे ही नजीर की खबर मिली, उन्होंने सराय में बग्घी भेज दी और नजीर को महलों में बुला लिया। नजीर ने नवाब साहब का रुख देखकर सारी दास्ताँ बयान कर दी और कहा कि अब उसने दिल्ली हमेशा के लिए छोड दी है और भोपाल मे पनाह का ख़्वाहा[1] है।

नवाब साहब ने बिना किसी सकोच के नजीर को सुरक्षा का वचन दिया और कोई स्थाई नौकरी देने से पहले पाँच सौ रुपये माहवार भत्ते के बतौर बाँध दिये और एक हवेली नज़ीर हुसैन के निवास के लिए दे दी।

रशीदन ने एक नयी ज़िंदगी की शुरुआत की। सुनहरे दिन और रगीन रातें गुज़रने लगी। नज़ीर के सपने सच हो गये थे। एक दिन नज़ीर ने रशीदन को अंक में भरते हुए पूछा, 'रशीदो, बादशाही हरम के ऐशो आराम और शानो शौकत को छोड़कर तुम्हे यहाँ कैसा लगता होगा। कहाँ शाह-शाह हिंदोस्ताँ, कहाँ यह नाचीज़ नजीर!'

'नज़ीर, हर औरत एक घर चाहती है, अपना घर! हरम में चाहे कुछ भी हो अपना कुछ नही, कुछ बुढिया बेगमों की तानाशाही, बाकी सब

---

1. शरण का इच्छुक

गुलाम हैं, मुलाजिम हैं, कैदी हैं। तुम ऐशो इशरत की बात कहते हो! वहाँ कल की बेगम आज कुत्तों के सामने डाल दी जाती है। हर वक़्त जहाँ तलवार सिर पर लटकती रहती हो, वहाँ भी कोई ज़िंदगी है, जहाँ कुछ भी अपना नहीं हो वहाँ भी कोई जीने में जीना है। औरत को एक घर चाहिए, चाहे झोंपड़ा ही क्यों न हो, उसे अपना शौहर चाहिए, अगर अपना नहीं तो शाहंशाह भी उसके लिए कोई वकत नहीं रखता। लेकिन शाहंशाह भी कभी किसी का हुआ है।' वह एक साँस में बोल गयी। नज़ीर ने उसे बाँहों में और कस लिया। रशीदन एक अलौकिक सुखानुभूति कर रही थी।

'रशीदन, मेरी रशीदन', नज़ीर फुसफुसाया—'नज़ीर, मेरे नज़ीर, मेरे महबूब!' यह रशीदन थी। 'नज़ीर मैंने तुम्हें सज़ा-ए-ज़िंदगी दे दी है। मैं अपने मंसूबों में कामयाब हो गयी हूँ।'

'नहीं शमशाद बेगम (हसीना) हरम से बाहर नहीं जा सकती तुम।' मलका-ए-ज़मानी ने हुक्म सुनाया।

'दादी जान मेरी इल्तिजा है, करम फरमायें और किसी कदर मुझे चला जाने दें, मेरे मामू, मुमानी और दोनों भाई अजमेर शरीफ़ जा रहे हैं और इसरार कर रहे है।'

'शाहंशाह की बेगमें ऐरों गैरों नत्थू खैरों के साथ नहीं भेजी जाती, समझी। अब ख़ामोश होकर अपने कमरे में जाओ, ज़ुबानदराज़ी हमें बिलकुल पसंद नहीं।'

'कौन कर रहा है ज़ुबानदराज़ी मोहतरमा दादी जान से?' यह शाहंशाह थे। वह अचानक बिना ख़बर हरम में दाख़िल हो गया था।

'किसके साथ जाना है आख़िर, कहाँ जाना चाहती हो हसीना?'

'जी, जहाँपनाह, कनीज अपने भाइयों और मामू मुमानी के साथ अजमेर शरीफ़ जाने की इजाज़त की ख्वाहाँ थी।' हसीना डरते-डरते बोल गयी।

'यही तो मैं भी कह रहा हूँ कि हिंदोस्तान के शाहंशाह की बेगमों के कोई रिश्तेदार नहीं हुआ करते, मिलना हुआ महल में आकर मिल गये और

चले गये। हर ऐरे गैरे नत्थू खैरे के साथ···।'

'मगर दादी जान, मामू मुमानी और भाई तो ऐरे गैरे नत्थू खैरे नहीं होते—कभी खून के रिश्ते भी दरगुजर किये जा सकते हैं?' शाहंशाह ने कहा।

'लेकिन हुजूर-ए-वाला, शाहंशाह, जहाँपनाह,···क्या इस मामले में मेरा फ़ैसला काबिले कबूल नहीं है—हरम के मामले में—।' जमानी बेगम ताअने के साथ बोल रही थी।

'मगर दादी जान, यह भी कोई इंसाफ़ है, बेचारी थोड़े दिन खुली हवा का लुत्फ उठा लेगी—अपने अजीजों के साथ कुछ दिन गुजार लेगी। हमीना हम इजाजत देते हैं, तुम तैयारी करो।' शाहंशाह ने बहुत गंभीरता से कहा और जमानी बेगम खून का घूँट पीकर रह गयी।

हमीना अजमेर शरीफ़ चली गयी थी।

'नमकहराम, तुझे आज मजा चखाती हूँ लापरवाई का!' साहब महल एक कनीज को डाँट रही थी। कनीज थर-थर काँप रही थी, 'रहम कीजियेगा मलका-ए-आलिया! रहम, गलती हो गयी।'

'अभी करती हूँ रहम कंबख्त तुझ पर, कमीनी, पंखा खींचते-खींचते सो जाती है। कितनी बार कहा है तुझसे?' साहब महल ने लड़की के बाल पकड़ रखे थे। वहीं एक ख्वाजासरा आया ही था कि साहब महल ने तुरंत आज्ञा दी, 'रज्जाक इसके दस कोड़े लगा, अभी इसी वक़्त!'

कनीज जमीन पर सर रखे मुआफी माँग रही थी मगर साहब महल ने एक न सुनी। इसी मौक़े पर सम्राट वहाँ आ निकले। 'क्या गज़ब की गर्मी पड़ रही है जैसे जान ही ले लेगी!' कनीज को ख्वाजासरा पकड़कर घसीट रहा था, वह चीखे जा रही थी कि सम्राट ने आज्ञा दी।

'रज्जाक ठहर, क्या बात है?'

'हरामखोरी करती है, इसलिए दस कोड़े लगाने हैं इस कमीनी के।' यह साहब महल थी।

'क्या किया इसने?' सम्राट ने पूछा।

'पखा खींचने के बजाय सो जाती है, शाहजादी की तरह आराम करने लगती है—'

'उफ्फ दादी जान क्या ग़ज़ब की गर्मी है, मासूम बच्ची है कभी नींद भी आ जाती होगी। मगर इसे ये घसीटे कहाँ ले जा रहा है?'

'ले कहाँ जा रहा है, उस तिखटी से बाँधकर इसके दस कोड़े लगाये जायेंगे। मैंने सज़ा जो दी है।'

'दादी जान यह सजा इस मासूम बच्ची के लिए बहुत सख्त होगी। नहीं दादी जान, इसे मुआफ कर दो—रज्जाक छोड़ दे इसे!' और लड़की की तरफ़ मुख़ातिब होकर 'ऐ छोकरी, जरा होशियारी से पंखा खींचती रहा कर!'

मलका-ए-साहब महल ने बहुत अपमानित महसूस किया स्वयं को और बुदबुदाने लगी, 'थोड़े दिनों में तो ये लौंडियें हमारे मुँह पर थूकने लगेंगी!'

इसी तरह की आये दिन घटनाएँ होतीं। शाहंशाह अपनी रहमदिली की वजह से अकसर जमानी बेगम और साहब महल बेगम के एक छत्र साम्राज्य मे दखल देते रहते और बेगमें आपस मे सलाह मशविरा करतीं। वे दोनों सम्राट से नफरत करने लगी थीं। उनकी तानाशाही जो नहीं चल पाती थी, अब हरम में।

दोनों बेगमों ने अपना एक गुट तैयार कर लिया था और शहर के कई बड़े-बड़े लोगो तक भी इनके संदेश बड़े आराम से पहुँचते थे। वे अकबराबाद, कोल, बुलंदशहर, मेरठ वगैरह आस-पास के कई शहरों में भी कई महत्वपूर्ण लोगो से संपर्क बनाये थीं। षड्यन्त्र के लिए यह सबसे सुअवसर था यानी सम्राट का हिमायती सिंधिया राजपूताने में जा उलझा था, इधर मियाँ मंजूर अली खाँ, नाज़िर भी कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से इन षड्यन्त्रकारियों को शह देता था।

गुलाम कादिर ने आगरे के आस-पास के कई इलाकों को विजय कर लिया था और अंत में जाट और सिंधिया की सम्मिलित फ़ौजो से लोहा लेने के लिए फ़तेहपुर सीकरी के पास रूपवास में डटा हुआ था। पूरी तैयारियाँ थीं। गुलाम कादिर फ्रांसीसी सेनानायक लैस्तीनो से बहुत घबराया

हुआ था। इन गोरे सिपहमालारों की फौज काफी अनुशासित और आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित होती थी।

जब ग़ुलाम कादिर रूपबास के किले में तालाब के किनारे सैर कर रहा था तो उसके ग़ुलाम ने ख़बर दी कि दिल्ली से आये हुए दो सवार उससे मिलना चाहते हैं। कोई खास खरीता लाये हैं।'

'उन्हें महल खास में हमारे कमरे में भेज दो। हम अभी आते हैं।'

और फौरन बड़े हॉल को पार करता हुआ वह महल खास में अपने कमरे में पहुंचा।

ग़ुलाम को हुक्म दिया दोनों को अंदर भेजो। दोनों आये। एक हिंदू और एक मुसलमान था। अदबो-आदाब के बाद हिंदू ने जेब से एक लिफाफ़ा निकालते हुए कहा, 'हुज़ूर-ए-वाला यह ख़त लाल क़िले से जनाब की खिदमत में इरसाल हुआ है।'

'किसने भेजा ?' कादिर ने उत्सुकता से पूछा।

'यह तो हुज़ूर को ख़त पढ़ते ही इल्म हो जायेगा।'

ग़ुलाम क़ादिर मुस्कराकर ख़त खोलने लगा और ख़त पूरा भी नहीं हुआ था कि उसके चेहरे के कई रंग बदले कभी पीला, कभी एकदम लाल, कभी काला और कभी फिर वही सुर्ख लाल। उसने कई बार पढ़ा यह ख़त। इस पर मलका-ए-ज़मानी बेगम और साहब महल बेगम की बाकायदा मुहरें लगी थीं। किले में इतने दिन रहा था वह दोनों की मुहरों को अच्छी तरह पहचानता था। नहीं कोई दग़ा नहीं! उन्हीं की मुहर है—असल मुहर!

और फिर उसने एक बार ख़त का मजमून पढ़ा, लिखा था :

अजीज़ नवाब ग़ुलाम क़ादिर,

बाद तसलीमात तहरीर है कि किले व हरम की फ़िलहाल हालत बहुत नाज़ुक चल रही है। बादशाह हम बुजुर्ग बेगमों से भी गुस्ताख़ी से पेश आने लगे हैं। अगर तुम अपनी फौजों की कुव्वत से किले पर कब्जा करके शाह-आलम सानी को घसीटकर तख़्त से हटा दो और कैदी अहमदशाह के बेटे बेदारबख़्त को तख़्तनशी कर दो तो हम तुम्हारा अहसान नहीं भूलेंगी। साथ ही बारह लाख रुपहली सिक्के तुम्हें इनाम के बतौर अदा करेंगी। काम पूरा

करो और इनाम ठनाठन गिन लो। इसके अलावा हम लोगों को अपने हमराह ही समझो और किले तक पहुँचने के बाद जो कुछ तुम्हारी मदद हम और हमारे वफ़ादार नौकर कर सकेंगे, जरूर करेंगे।

और उसी दिन से कादिर को दिल्ली के लाल किले के ख़्वाब आने लगे। किस तरह वह कब्जा करेगा। किस तरह शाहआलम को तख़्त से उतारेगा। किस तरह एक-एक बेगम या शाहज़ादी से अपने अपमानों का बदला लेगा, वह मंसूबे बनाता रहा। लेकिन क्या वह क़िले पर कब्जा कर पायेगा!

उसे खबर लगी कि जाट सेना हमला करने वाली है। तुरंत उसने कूच का डंका बजवाया और फतेहपुर सीकरी की तरफ़ बढ़ने लगा। फतेहपुर सीकरी पर एक तरफ गुलाम कादिर और दूसरी तरफ़ फ्रांसीसी लैस्तीनो आमने-सामने मुकाबिले को तैयार हुए। बहुत घमासान युद्ध हुआ किंतु तुरंत लैस्तीनो का पासा पलट गया। उसकी बुरी तरह हार हुई।

इस विजय से गुलाम क़ादिर का हौसला बहुत बढ़ गया और अब वह देहली विजय की योजना बनाने लगा। उसकी फौजों ने दिल्ली की तरफ़ कूच किया और तुरंत यमुना नदी के उस पार आ डटा। उसने नाज़िर मंजूर अली को गुप्त रूप से कई सौगातें भिजवायीं और इस्माइल बेग, जो बादशाह का मुसाहिब था और दिल्ली में काफी प्रभावशाली व्यक्ति माना जाता था, से भी संपर्क साधा और वे उससे गुप्त रूप से कई बार मिलते-जुलते रहते। धीरे-धीरे तैयारियाँ चलती रहीं और गुलाम कादिर अजदाह की तरह दिल्ली को अपनी लपेट में लेता गया। रोज़ाना कोई-न-कोई किले का कर्मचारी उससे मिलता रहता, यहाँ तक कि एक दिन नाज़िर मजूर अली ने उससे वायदा कर दिया कि किले से अच्छी मात्रा में बारूद भी उसकी छावनी में भिजवा दी जायेगी।

नाज़िर मंजूर अली बारूद भेजने का वायदा तो कर आया लेकिन भेजने के साधन भी तो उपलब्ध हों। तभी उसे एक व्यक्ति का खयाल आया। मोदी रामरतन दिल्ली का बहुत बड़ा किराना व्यापारी था। उसका माल छकड़ों और बैलगाड़ियों से दिल्ली के बाहर आता-जाता रहता था। एक दिन वह उसकी गद्दी पर पहुँचा। नाज़िर मजूर को देखकर रामरतन तुरंत उठ खड़ा हुआ और दुकान के नीचे उतरकर पेशवाई की। नाज़िर

अंदर जाकर गावतकिये के सहारे बैठ गया।

रामरतन सरकारी आदमियों से काफ़ी चौंकता था। आये दिन ये लोग उससे कुछ मांग करते रहते और मोदी यथाशक्ति पूरी भी करता। आज भी इसी तरह का कोई बवाल होगा। उसने सोचा। अपनी मूंछो को नीचे की तरफ़ गिराकर वह मंजूर अली की तरफ़ देखने लगा और बडी विनम्रता से बोला, 'आज जनाब नाज़िर साहब ने बज़ात ख़ास[1] कैसे तकलीफ़ फर्मायी, हुज़ूर हुक्म भिजवा देते तो बदा ख़ुद हाज़िर हो जाता।'

'भई सेठ साहब वह तो आप हमेशा से हम लोगों का ख़याल करते रहे हैं और वक्तन-फ़क्तन हर तरह की मदद मुहैय्या करते रहे हैं, इसीलिए तो हम सदके जाते हैं आप पर' बड़े ख़ुशामदी अंदाज़ मे नाज़िर ने कहा।

'जी यह तो हुज़ूर की गरीब परवरी है, बदा किस काबिल है !'

'दिल्ली का अरबपती सेठ रामरतन किसी क़ाबिल नही तो दीगर हस्ती दिल्ली में है ही कौन-सी।'

सुनते ही मोदी घबरा गया—अरबपती का नाम सुनते ही वह समझ गया कि ज़रूर यह कुछ रुपया ऐंठने आया है—देखा जायेगा। और प्रकट मे बोला, 'हुज़ूर हुक्म दीजिये कैसे तकलीफ़ की इस नाचीज़ को याद करने की।'

'सेठ साहब यहाँ नही आपसे अलहदा कमरे में गुफ्तगू करनी है' मजूर ने कहा और दोनों सेठ की दुकान के अदर के कक्ष में जा पहुँचे।

'सेठजी हम आपको रुपयों के लिए हमेशा तकलीफ देते रहते हैं' मजूर ने भूमिका बाँधी।

'उसमें क्या है गुलाम हैं आपके, ये लेना-देना तो चलता ही रहता है।'

'नही मैं कुछ दीगर बात कह रहा था।'

'जी फरमाइये।'

'यानी इस दफ़ा मैं जनाब को कुछ फ़ायदा कराने हाज़िर हुआ हूँ।'

'मुग़लिया मुसाहिब और फ़ायदा ! दोनों बेमेल हैं एक-दूसरे मे', रामरतन ने सोचा।

'ज़रूर कुछ दाल में काला है !' फिर वह बोला, 'हुज़ूर वह कैसे ?'

---

1. स्वयं

'हमें तुम्हारे बैल छकड़ों की जरूरत है…!'

'कब, हुजूर कितने, किसलिए…' एक साँस में रामरतन बोल गया।

'जी हमें जल्द-अज-जल्द करीब दो-ढाई सौ छकडों की जरूरत होगी। आज रात या कल रात को।'

'जी सरकार!'

'तो कब दे सकते हो।'

'कल ही दे दूंगा—।'

'लेकिन रात को।'

'रात को ही सही। जब आप हुक्म दें तब ही।'

'लेकिन काम जोखिम का है।'

'आपके रहते मुझे जोखिम किस बात का मालिक, क़िले के लिए रसद मँगानी होगी।'

'नही सेठजी, रसद नही, यह बारूद ले जाने का काम है।'

'बारूद? बारूद? कहाँ, कैसे', सेठ चौकन्ना हो गया था।

'किले के जमुना पार! और इसके बदले दस हजार रुपये आपकी नजर!'

'हुजूर यह तो बहुत मुश्किल काम है, कहाँ पहुँचानी है बारूद!'

'गुलाम क़ादिर की छावनी में जमुना-पार!' बहुत धीरे से नाजिर फुसफुसाया, गोया कही दीवारें न सुन लें।

'हुजूर यह तो बादशाह से बगावत होगी! पकड़े गये तो फाँसी की सजा!'

'मोदीजी तुम 20 हजार रुपया ले लेना।' नाज़िर बखूबी जानता था कि मोदी ऐसे काम लालच मे आकर फ़ौरन कर देता है। अभी नखरे कर रहा है।

'नही हुजूर, पौसायेगा नही। फिर एक-दो छकड़े की बात होती तो हो जाता, आप तो ढाई सौ…।'

'सेठजी, चलो पचास हजार मे फैसला कर लो।'

'हुजूर बहुत कम रहेगा, एक लाख से कम में पड़ता नही पड़ेगा।'

'सेठ! इसमें पड़ते की क्या बात है, तुम्हारी कोई लागत तो लगेगी

नहीं।'

'सरकार एक लाख से कौडी भी कम नही !' सेठ थड़ गया।

मंजूर अली ने कुछ देर सोचा, हिसाब लगाया, बात पक्की कर दी, 'अच्छा सेठ एक लाख सही।'

नाज़िर को कादिर ने तीन लाख देने का वायदा किया था, जिसमे एक लाख पेशगी दे दिया था।

'हुजूर कुछ पेशगी भी बख्शा दें तो मेहरबानी हो जाये।' सेठ ने कहा।

'पेशगी, हाँ पच्चीस हज़ार पेशगी भेज दूंगा शाम तक।'

'जी मालिक, शुक्रिया।'

और मंजूर अली किले की तरफ़ बढ लिया।

दूसरे दिन जब गुलाम कादिर ने बारूद भरे ढाई सौ छकड़े अपनी छावनी मे देखे तो वह नाच उठा और उसे अपनी विजय निश्चित प्रतीत होने लगी। 'इस्माइल बेग और मंजूर अली तो जैसे लाल किले की कुंजी हैं। दोनों हमारे इशारों पर काम कर रहे है, फिर क्या और बाकी रहा—बस ठहरिये जहाँपनाह, और थोड़े दिन ठहर जाइये, फिर कबूल कीजियेगा इस नाचीज़ गुलाम कादिर की इताअत—और यह इताअत बर्दाश्त करने को कलेजा चाहिए कलेजा। अभी से मजबूत करके रखिये आलमपनाह' वह व्यंग्य मे शाहआलम को लक्ष्य कर यह सब सोचता रहा। इधर मनबहार सिंह की सिख फ़ौज उसका कवच थी। उसने आसपास के क्षेत्रो पर उसी फ़ौज के बलबूते पर विजय पायी थी वर्ना लैस्तीनो जैसे फ्रांसीसी योद्धा की सेनाओ पर विजय पाना क्या कोई हँसी-खेल था? इधर दिल्ली शहर को जीतना क्या बडी बात थी जबकि वहाँ के आधे से अधिक प्रतिष्ठित लोग गुलाम कादिर की मुट्ठी मे थे। रामरतन मोदी को ही लीजिये। वह क्या कुछ नही कर सकता था। आज दिल्ली पर काली छायाओ का अबार इकट्ठा हो रहा था। दिल्ली विजय क्या है? जैसे बच्चो के द्वारा बनाया हुआ मिट्टी का घरौंदा तोड-मरोड डाला जाये। पैसा फेंको और काम बनाओ। पैसा, पैसा, पैसा। जैसे हर किसी का पैसा ही माँ-बाप हो गया हो। रिश्ते समाप्त, स्वामिभक्ति समाप्त, नगर तथा देशप्रेम का बलिदान पैसे का साम्राज्य है आज दिल्ली मे। लेकिन गुलाम क़ादिर के पास पैसा-

ही-पैसा है। उसने अकबराबाद, कोल, सादाबाद, फिरोजाबाद कहाँ लूटमार नहीं मचायी और आज वह दिल्ली को लूटने के लिए उस पैसे का बड़ी चतुराई से उपयोग करना चाहता है।

बादशाह के यौवन-काल के हज़ारों राजो के राजदान, लाल क़िले के नाज़िर, अत्यंत विश्वासपात्र मुसाहिब, ख़्वाजा मजूर अली खाँ की स्वामिभक्ति डगमगा रही थी। सिक्को की चमक जो देख ली थी उसने गुलाम कादिर के पास। कहते हैं सोने में कलियुग का निवास है तभी तो आज मजूर अली खाँ की बुद्धि पर छा गया था यह कलियुग अपने संपूर्ण वेग सहित। मलका-ए-ज़मानी, साहिब महल और उनकी दूसरी सहयोगिनी बेगमें? उन्होंने भी अपने सारे रिश्ते भुलाकर उसी गुलाम क़ादिर को अपना माध्यम बनाया, जिसके साथ वे कुत्ते-बिल्ली का-सा सलूक करती थी। उन्होंने भी पैसे का जाल फेंक मारा था क़ादिर पर—एक बार फँसा तो उसी मे उलझा रहा। पैसा, पैसा, पैसा। जैसे यकायक पैसे की हैसियत इन्सान की हैसियत से हज़ार गुना बढ़ गयी हो। आज दिल्ली का शासक कोई इन्सान नहीं, पैसा था केवल पैसा।

'ठक, ठक, ठक, ठका-ठक,' यही इशारा तय हुआ था। सम्राट सुरा-पान मे डूबा एक रुबाई पूरी कर रहा था। वह हिंदी, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, तुर्की और संस्कृत आदि कई भाषाओं का विद्वान था। हिंदी में वह शाहआलम नाम से और उर्दू मे आफ़ताब[1] के तखल्लुस[2] से कविता व शाइरी करता था। निस्तब्धता मे उसकी काग़ज़ पर चलती क़लम भी जैसे चिखचिख की ध्वनि करती रो पड़ना चाहती हो—अभी-अभी एक रुबाई ही लिखी और सुनने के लिए आतुर-प्रतीक्षा मे बैठे अपने दोस्त और विश्वास-पात्र मजूर अली को सुना डाली :

सुबह तो जाम से गुजरती है।
शब दिल आराम से गुजरती है।

1. सूर्य 2. उपनाम—कविता का नाम

आकिबत की ख़बर खुदा जाने,
अब तो आराम से गुजरती है।

मजूर अली एक-एक मिसरा सुनता जाता और 'वाह, वाह, वाह आलीजाह, क्या खूब। पूरी रुबाई सुनकर उछल पड़ा। वाह हुजूर क्या बंदिश है सुभानल्लाह, मुकर्रर इर्शाद[1] आलमपनाह !' और सम्राट ने अपनी रुबाई फिर सुनायी। दिल खोलकर दाद दी मजूर अली ने और ज़मीबोस करते हुए रुख़सत ली। सम्राट हरम की तरफ आराम करने तशरीफ़ ले गये। मंजूर दबी मुस्कराहट लिए सोच रहा था 'आराम से गुजरने वाले दिनों की तो जल्द ही लाश बनने वाली है जहाँपनाह। एक आधा रुबाई लिखकर और दिल बहला लीजिये !'

दीवाने ख़ास में शमादान बहुत मद्धिम-सा प्रकाश दे रहे थे, यहीं गुलाम कादिर इंतिज़ार कर रहा था, बेचैनी से मंजूर अली का। मंजूर अली की आशा से ही तो किले के दरवाजे खोल दिये गये थे, गुलाम कादिर के लिए। वह अपने कुछ विश्वासपात्र साथियों को लेकर किले में घुस पड़ा था और जहाँ-तहाँ उन्हें नियुक्त कर दिया था। क़िले के चप्पे-चप्पे से जो परिचित था वह। इधर जो कमी रह गयी वह मंजूर और इस्माइल बेग के मार्गदर्शन में पूरी हो रही थी।

'इन शैतान मराठों को सबक सिखाना जरूरी है।' गुलाम कादिर ने कहा।

'मराठों से तो शाहशाह खुद भी बहुत परीशान हैं। वे फौरन रज़ामद हो जायेंगे, हुजूर।' नाज़िर मजूर अली ने कहा।

'मराठों से कौन नफ़रत नहीं करता ! इतनी हरामख़ोर कौम है यह...।' इस्माइल बेग कह रहा था।

'हरामख़ोर, दग़ाबाज लुटेरे हैं ये, आज ये शाहशाह के ख़ैरख़्वाह नजर आते हैं, ये ही धीरे-धीरे मुगलिया तख़्त पर अपना हक जमा लेंगे, गजब के मक्कार हैं ये, मुझे तो इनसे सख़्त नफ़रत है नवाब साहब' मजूर बोला।

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं, हम जानते हैं दिल्ली का बच्चा-बच्चा इस कौम से

1. एक बार और सुनायें

नफ़रत करता है—इसीलिए तो हम इनका फन काटकर फेंक देना चाहते हैं ताकि ज़हर उगलने की कोई गुंजाइश ही न रहे।' यह ग़ुलाम कादिर था।

'नाज़िर मियाँ आप तो इसी तरह देर कर देंगे और मामला उलझा-का-उलझा रह जायेगा। जल्द ही एक दस्तावेज तैयार कर लीजिये ताकि आगे की कार्रवाई शुरू हो।'

'हुज़ूर क्या-क्या मुद्दे लिए जायें इस दस्तावेज में?' मंज़ूर ने पूछा।

'पहिला तो यही खास मुद्दा लीजिये कि मराठों से निजात पाने के लिए शाहंशाह अपना नुमाइंदा मुकर्रर करें।' ग़ुलाम कादिर बोला।

'जी हुज़ूर!' कहते हुए मंज़ूर ने लिख लिया।

'दूसरे नवाब साहिब को फ़ौरन किले की हिफ़ाज़त का जिम्मा सौंपा जाये।' यह इस्माइल बेग था।

मंज़ूर ने क़ादिर की ओर स्वीकृति के लिए देखा और इशारे से स्वीकृति पाकर यह भी लिख लिया। फिर खुद ही बोला, 'और हुज़ूर को ख़िताब भी अता फ़रमाया जाये।'

'हाँ, हाँ, मंज़ूर अली, बिलकुल दुरुस्त, हमें बख़्शी-उल-मुमालिक और अमीर-उल-उमरा का ख़िताब दिया जाये जिस पर हमारा पुश्तैनी हक़ है। हमारे अब्बा हुज़ूर, मरहूम को भी ये ख़िताब इन्हीं शाहशाह ने अता किये थे।' क़ादिर ने कहा।

और इसी तरह की कई महत्वपर्ण बातें उस रुक्के में सम्मिलित करने के लिए लिख ली गयी और जल्द ही रुक्का तैयार कर लिया गया।

लाला शीतलदास, किले के ख़ज़ाची अपना हिसाब-किताब बंद करके जाने ही वाले थे कि उन्हें कई तरह के लोगों के आने-जाने का आभास हुआ। उन्होंने घूरे को दौड़ाया कि इधर-उधर पता करके बताये कि क्या माजरा है। घूरेलाल जो लाला का खादिम खास था हर समय उनकी अर्दली में रहता था। बहुत चुस्त और चतुर था वह। किले की गतिविधियों से पूरी तरह परिचित था, क़रीब बीस वर्ष जो हो गये थे उसे यहाँ काम करते। जब से उसने मंज़ूर अली की गतिविधियों में तेज़ी आते देखी और इस्माइल और दूसरे लोगों से खुसर-फुसर करते देखा, तभी से माथा ठनका था उसका। एक-दो दिन मंज़ूर को शहर में जाते-आते, रामरतन मोदी की

गद्दी पर चक्कर लगाते भी उसने देखा तो वह लाला शीतलदास के पास जाकर अपना संदेह उगल बैठा। तब से लाला शीतलदास बड़ी द्विविधा में थे। उन्होंने मुग़लिया ख़ानदान का नमक खाया था अत: वे किसी भी मूल्य पर सम्राट् के कवच बन जाना चाहते थे क़दम-क़दम पर लेकिन आज जब घूरेलाल ने बताया कि मजूर अली का नवाब गुलाम क़ादिर रुहेला के साथ कुछ सलाह-मशविरा चल रहा है तो वे सर पकड़कर बैठ गये।

'घूरे यह लक्षण अच्छे नहीं हैं, यह रुहेला बहुत कमीना है।'

'हाँ हुजूर, यही मैं के रहा हूँ, यह तो ऐसी गुसर-फुसर चल री है कै दाल मे काला दीख रहा है मुझ कूँ तो।'

'हाँ, हाँ, मजूर का खादिम इलाहीबख्श बता रा था कि कुछ बादशाह से इक़रार करायेंगे—उसका काग़द तैयार कर रे है, सिरकार।'

'उफ्फ, बादशाह से इक़रार! वह भी गुलाम क़ादिर के साथ। घूरे यह तो बड़ी भारी चाल है कोई, ये तो गजब हो जायेगा।'

'हुजूर गजब तो हो गयो, लेकिन आपके रहते कौन की हिम्मत है जे करने की। आप बादशाह के हुजूर में सब फरमा दें, बादशाह चेत जायेंगे फिर क्या कर सकेंगे जे लोग।'

लाला शीतलदास का दिमाग़ सरपट दौड़ रहा था, झट उन्होंने एक काग़ज निकाला जिस पर सम्राट के हस्ताक्षर होना आवश्यक था और दीवान ख़ास की ओर बढ़ लिए तभी रास्ते मे गुलाम क़ादिर और मजूर अली मिल गये।

'आदाब अर्ज है लालाजी।' गुलाम क़ादिर ने कहा।

'आदाब अर्ज नवाब साहब, आदाब अर्ज।' चौंककर लालाजी ठिठक गये थे।

'आपको ताज्जुब हो रहा होगा, लालाजी मुझे इस वक़्त यहाँ देखकर।'

'नहीं, नहीं ताज्जुब क्यों होगा हुजूर, शाही क़िले मे राजा रईस नहीं आयेंगे तो और कौन आयेगा नवाब साहब।' वे भरसक अपना आश्चर्य और निराशा को दबाते हुए बोले जैसे उन्होंने गुलाम कादिर का आना एक सामान्य घटना समझी हो।

आश्वस्त होकर क़ादिर ने कहा, 'लालाजी मुबारिक हो, उम्र तो

आपको बहुत लम्बी है—हम लोग आपके पास आ ही रहे थे कि आप यहीं मिल गये। अगर गुस्ताख़ी न समझें तो क्या मैं जान सकता हूँ कि आप किधर जा रहे थे।'

'नहीं गुस्ताख़ी की क्या बात है, हुज़ूर मैं तो एक ख़ास काग़ज़ लेकर जहाँपनाह के पास जा रहा था—आज दस्तख़त होने जरूरी थे।'

'ओ हो, बहुत ही अच्छा इत्तफ़ाक़ हुआ। हम लोग भी इसी के लिए जनाब की मदद के ख्वाहाँ थे। बात यह है कि आलमपनाह तो हरम में तशरीफ़ ले जा चुके हैं और हमें भी एक ज़रूरी दस्तावेज़ पर उनके दस्तख़त लेने थे। लालाजी इस वक़्त आप ही एक ऐसी हस्ती हैं जो बादशाह सलामत को सही मशविरा दे सकते हैं। आप उधर तशरीफ़ तो ले ही जा रहे हैं, ज़रा हमारे इस दस्तावेज़ पर भी दस्तख़त कराते लायें। ये उन्हीं के हक़ में होगा...।'

लाला शीतलदास पहले टालने की सोचने लगे लेकिन फिर सोचा कि सारा रहस्य मालूम हो जायेगा और शाहंशाह को माकूल सलाह देकर शायद वे आफ़त टालने में मददगार हो सकें। अतः तुरत बोले, 'ज़रूर, ज़रूर नवाब साहब, इसमें क्या दिक़्क़त है लाइये दे दीजिये।' और लालाजी ने दस्तावेज़ हथिया लिया। हरम के दरवाज़े पर पहुँचकर कंदील की रोशनी में उन्होंने दस्तावेज़ पढ़ा तो पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी, 'हाय, यह रुहेला तो अजदहा की तरह लपेट रहा है किले को, निगल जायेगा बादशाह को, बर्बाद कर देगा सारी दिल्ली को ! उफ़, शाहंशाह को फ़ौरन आगाह कर देना चाहिए।' और उन्होंने फ़ौरन बादशाह को सूचना करा दी।

बादशाह पलंग पर लेटे थे, जुही, बेला, और मोगरे के फूल और कलियों के हारों से पलंग चारों ओर से ढँका था और पूरा कक्ष महक रहा था। सितंबर का महीना था, थोड़ी-थोड़ी रिमझिम चल ही रही थी, सारा वातावरण हवा में तरी के कारण बोझिल-सा हो गया था तभी एक टिट-हरी किले पर से निकली। 'टिहो, टिहो, टिहो।' के आर्तनाद से रात की निस्तब्धता टूटी। कनीज़ ने बादशाह के निकट पहुँचकर गुज़ारिश की, 'आलीजाह गुस्ताख़ी मुआफ़ हो, लाला शीतलदास हुज़ूर से कुछ

इल्तजा[1] करने के मुतज़िर[2] हैं।'

'लाला शीतलदास ! अच्छा हम अभी आते हैं।' बादशाह के दिमाग़ मे शीतलदास के हज़ार-हज़ार गुण घूमने लगे। 'यह भी एक कारकुन है न रात देखता है न दिन, बस सरकारी काम मे मसरूफ़ रहता है। ज़रूर कोई मसलहत[3] होगी वर्ना इस वक़्त हमारे आराम मे ख़लल न डालता।' और सम्राट बाहर की तरफ़ गया।

हरम के सदर दरवाज़े पर लाला शीतलदास खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे।

'कहिये लालाजी, कैसे आना हुआ इस वक़्त ?' बादशाह ने कहा।

'जहाँपनाह गुस्ताख़ी मुआफ़ करें, वर्ना वैसे इस वक़्त हुज़ूर को कतई जेहमत नही देता मगर ज़रूरत कुछ ऐसी आन पड़ी कि कल तक इंतिज़ार भी नही कर सकता था।'

'कहिये-कहिये क्या बात है ?'

'हुज़ूर नवाब गुलाम क़ादिर ने एक काग़ज़ भेजा है।'

'गुलाम कादिर ने ? हाँ, हाँ वह हमसे मिल चुका है इस सिलसिले मे।'

'जी जहाँपनाह।'

'मगर क्या काग़ज़ है ?'

'आलमपनाह एक रुक्का है जिस पर हुज़ूर के दस्तख़त कराना चाहता है। मैंने इसे हुज़ूर के दस्तख़त कराने से पेश्तर पढ़ने की गुस्ताख़ी ज़रूर की है।'

'ठीक है, ठीक है, लालाजी, गुस्ताखी की क्या बात है तुमने पढ़ लिया तो अच्छा ही हुआ, लेकिन तुम इतने परीशान क्यों नज़र आ रहे हो ?'

'आलीजाह, मुझे तो इसमे दग़ा का अंदेशा हो रहा है।'

'दग़ा कैसा दग़ा ?' दस्तावेज़ शीतलदास के हाथ से लेते हुए बादशाह ने पढ़ना शुरू किया।

'लेकिन इसमे दग़ा क्या हो सकता है ? यह सब बात तो वह पहले ही हमसे तय कर चुका है। लालाजी अगर सुबह का भूला शाम को भी घर आ जाये तो उसे भूला नही कहते। हालाँकि क़ादिर ने गुज़िश्ता वक़्त[4] में

1. निवेदन 2. प्रतीक्षा मे 3. महत्वपूर्ण बात 4. गत समय मे

कई तरह की गुस्ताखियाँ की हैं और हमसे लड़ाई के लिए भी आमादा[1] हो रहा था मगर अब उसकी अक़्ल ठिकाने आ गयी है और हमारे हुज़ूर में वह अफ़्क़सूर[2] के लिए भी पेश हो चुका है—हमने उसे मुआफ़ भी कर दिया है।'

लाला शीतलदास के दिमाग पर बादशाह का एक-एक शब्द हथौड़े की तरह चोट कर रहा था। 'हाय तो क्या सब-कुछ बर्बाद हो जायेगा, नहीं, नहीं, मैंने नमक जो खाया है तैमूरिया ख़ानदान का—एक बार और कोशिश करता हूँ, बस आख़िरी कोशिश।' लालाजी ने सोचा।

'हुज़ूर सोच लीजियेगा, इस नाचीज की समझ में तो इसमें साफ़-साफ़ दग़ा नज़र आ रहा है।'

'मगर लालाजी, अब हो भी क्या सकता है, क़ादिर और उसके कुछ आदमी क़िले में दाख़िल हो चुके हैं और हमने उससे वायदा भी कर लिया है।'

'आलीजाह, वायदे का तो मैं कुछ नहीं कह सकता मगर हो तो अब भी बहुत कुछ सकता है। अभी हमारी लाल पल्टन क़िले में मौजूद है और इस रुहेले के सिर्फ़ 20-25 आदमी होंगे। हुज़ूर के हुक्म की देर है, अभी इसके टुकड़े-टुकड़े उड़वा दूँ और इसके तमाम शैतान साथियों को गिरफ़्तार करके···।'

'शीतलदास, ये हमारी तरफ़ से दग़ा होगा। इस दग़ा को तवारीख़ मुआफ़ नहीं करेगी। शाहंशाहे हिंदोस्तान की तरफ़ से क़ादिर जैसे नाचीज के साथ दग़ा। तवारीख़ के सफ़्हे लहू से रंगीन हो जायेंगे और हज़ार-हज़ार ज़ुबानों से हमें आने वाली पीढ़ियाँ लानत देंगी।' कहकर फ़ौरन सम्राट ने दस्तावेज़ पर दस्तख़त कर दिये और लाला शीतलदास शून्य में ताकते रह गये।

एक मशीन की तरह लालाजी ने रुक्का लाकर गुलाम कादिर को पकड़ा दिया और घर की राह ली।

बादशाह ने आज पहली बार लालाजी के मशविरे की उपेक्षा की थी।

---

1. तैयार 2. अपराध-क्षमा

लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। गुलाम कादिर ने पहले ही ऐसा जाल फैलाया था कि किसी को कानोंकान ख़बर न लगी और बादशाह से अपना क़सूर मुआफ़ करा लिया, साथ ही आगे की कार्रवाई के लिए वायदा करा लिया था।

लाला शीतलदास जो अंकों के माहिर खिलाड़ी थे, राजनीति के दाँव-पेंचों से अनभिज्ञ, आज बाज़ी हार गये थे और रह-रहकर इस अप्रत्याशित घटना के बारे मे सोच रहे थे। उन्हें आज असीम दुःख था।

नौकर ने सूचना दी, 'हुज़ूर खाना तैयार है! लगवा दिया जाये?'

'नही चुन्नी आज भूख नही है।'

कई दिनों तक लालाजी की मनोदशा ऐसी रही कि कभी खाना खा लेते कभी भूखे रहकर ही अपने आप में कुढ़ते रहते। लेकिन तीर था कि हाथ से निकल चुका था।

सम्राट ने दस्तावेज पर हस्ताक्षर तो कर दिये लेकिन उसे भी काली छायाओं ने घेर रखा था। शीतलदास के चले जाने के बाद उसकी एक-एक बात सम्राट को याद आने लगी। वह पलँग पर इधर से उधर करवट बदलता रहा लेकिन नींद कोसों दूर थी। 'अगर शीतलदास का शक दुरुस्त हुआ तो यह रुहेला क्या नही कर सकता' वह सोच रहा था। लेकिन उसने कुरान मजीद को गवाह करके वफ़ादारी और फ़र्माबर्दारी की कसम खायी है। सब कुछ ठीक है। सम्राट को दिन की संपूर्ण घटना ज्यों की त्यों याद आ गयी।

मंज़ूर अली ने कहा था, 'आलमपनाह, गुलाम कादिर अपने अफ़्व क़सूर के वास्ते इल्तिजा करके हुज़ूर में पेश होना चाहता है।'

'गुलाम क़ादिर, कहाँ है गुलाम क़ादिर?'

'हुज़ूर, यही, क़िले के अंदर।'

'किले के अंदर? उसे दाख़िला कैसे मिला किले मे?'

'हुज़ूर यह तो मुझे भी इल्म नही, लेकिन सुबह से वह मुझसे इसरार कर रहा है और अपने कसूर के लिए बहुत पशेमान है।'

'अच्छा, तो दिमाग ठिकाने आ गये उसके? पेश करो उसे हमारे हुजूर में।'

हाथ बाँधे हुए गुलाम कादिर हुजूर में पेश हुआ और बादशाह के कदमों के पास सिर टिका दिया। 'जहांपनाह, यह नाचीज़ आलीजाह के कदमों में पनाह का ख्वाहाँ है।' कादिर ने कहा।

सम्राट ने सीना फुलाया, अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरा और बुलंद आवाज़ में बोला, 'लेकिन तुमने मुगलिया तख्त के खिलाफ़ बगावत जो की है, तुम तो हमसे लड़ाई पर आमादा हो!'

'जपौपनाह मैं बहुत नादिम[1] हूँ अपने बतीरे पर, मुझे कुछ बदज़ात लोगों ने बरगला[2] दिया था, लेकिन अल्लाहताला और हुजूर के फ़ज़ल से मुझे अब समझ में आ गया है कि मैं एक बड़े नाकिस रास्ते पर चल रहा था। आलमपनाह, शाहंशाह से मुखालिफत के लिए तो खुदा भी नहीं बख्शता। लाख-लाख शुक्र है, खुदा बंदे करीम का, कि मेरा दिमाग सही जगह पर आ गया है। यह नाचीज गुलाम हुजूर से अपने कसूरों की मुआफ़ी की दरख्वास्त करता है।'

'कादिर तुम्हें मुआफ़ किया जायेगा, बशर्ते कि तुम वफादारी की कसम लो और आइंदा अपनी हरकतों से बाज आओ।'

'जहांपनाह मैं कुरान मजीद को हाजिर नाजिर करके कसम लेने को तैयार हूँ कि हुजूर के हक में हमेशा वफादारी व फ़र्माबर्दारी का सबूत पेश करता रहूँगा।'

'मंजूर अली, नवाब के हाथ खोल दो' और मंजूर ने रुमाल से बंधे हुए हाथ तुरंत खोल दिये और एक कनीज़ को हुक्म दिया कि कुरान शरीफ़ लेकर आये। थोड़ी देर में साटन के चमकते हरे कपड़े में लिपटा क़ुरान मजीद गुलाम कादिर के हाथ में थमा दिया गया और उसने क़सम ली।

'मैं खुदाताला को हाजिर-नाजिर मानकर इस क़ुरान मजीद की रू से कसम लेता हूँ कि जहांपनाह और मुगलिया तख्त के लिए हमेशा वफादार और फ़र्माबर्दार रहूँगा।'

---

1. शर्मिंदा (पश्चाताप करना) 2. बहका दिया

'बहुत अच्छा गुलाम कादिर, तुम्हारे सब क़सूर मुआफ़ किये जाते हैं।' बादशाह ने बहुत गंभीरता से कहा, 'ख़याल रखो कि अगर तुमने कहीं भी बग़ावत का रुख इख़्तियार किया तो सख़्त से सख़्त सजा दी जायेगी।'

'जी आलीजाह, बंदा आपका बहुत मशकूर है और ताज़िंदगी यह अहसान नहीं भूलेगा। एक गुज़ारिश और पेश करनी थी हुज़ूर में···।'

'हाँ, हाँ बोलो, क्या चाहते हो?'

'आलमपनाह मेरे वालिद मरहूम को जो ख़िताब किब्ला ने अता फ़रमाये थे वह मुझे भी अता फ़रमाये जायें।'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं, क्यों नहीं, वह तो हम ख़ुद ही सोच रहे थे।' सम्राट ने कहा।

'और जहाँपनाह, इन मराठों से जल्द अज़ जल्द निजात पाने के लिए मंसूबा तैयार किया जाये क्योंकि ये बहुत ख़ुदगरज़ हैं—।'

'हाँ, हाँ, हमें ख़ुद इन लोगों से नफ़रत है, गुलाम क़ादिर, मगर फ़िज़ा कुछ ऐसी तैयार हो गयी कि इनका दबदबा बढ़ता ही जाता है—ठीक है अब तुम भी आ गये हो, जल्द कोई तदबीर की जायेगी।'

'जी आलमपनाह, इसके लिए हुज़ूर ख़ुद ही किसी शख़्स को नामज़द फ़रमा दें, अपनी पसंद के किसी अमीर को।'

'हाँ, हाँ हम किसी नुमाइंदे को जल्द ही मुक़र्रर कर देंगे।'

'जहाँपनाह, अब नवाब साहब आ ही गये हैं—बख़्शी उल-मुमालिक का ख़िताब अता करने के बाद किले की हिफ़ाज़त का जिम्मा नवाब साहब को सौंप दिया जाये।' यह मंजूर था।

बादशाह आँख बंद करके कुछ सोचने लगा कि हरम की तरफ़ से एक कनीज दौड़ी आयी और बादशाह के पास पहुँच कर कुछ फुसफुसाकर कह गयी। साहिब महल और मलका जमानी बेगम ने कहला भेजा था कि गुलाम कादिर जब अपनी हरकतों पर इतना नादिम[1] है तो बिला शक़ क़िले की हिफ़ाज़त इसी के सुपुर्द करना मुनासिब है हमें इसकी फ़ौज की भी मदद रहेगी।

---

1. शर्मिंदा

बादशाह ने मंजूर की तरफ़ देखा फिर नवाब की, और नवाब से पूछा, 'क्यों नवाब तुम बखूबी क़िले की हिफ़ाजत का इंतिज़ाम कर लोगे?'

'जी आलीजाह, जो भी हुक्म होगा उसकी बंदा तामील करने में कमी कोताही[1] नहीं करेगा।'

'अच्छा मंजूर,' बादशाह ने कहा, 'क़िले की हिफ़ाजत गुलाम क़ादिर के सिपुर्द कर दी जाये।'

'आलीजाह, जबानी हुक्म तो फ़रमा दिया गया है, अगर इस सिलसिले में हुजूर का दस्तख़ती दस्तावेज अता फरमा दिया जाये तो ऐन नवाजिश[2] होगी।' गुलाम कादिर ने हाथ बाँधकर कहा।

'हाँ, हाँ गुलाम क़ादिर, कोई मुजाइका[3] नहीं, मंजूर अली और तुम मिलकर दस्तावेज तैयार कर लो और मावदौलत के दस्तख़त के लिए पेश कर दो।' और सम्राट उठ गया।

मंजूर और गुलाम कादिर दोनों चले आये और दिनभर मंसूबे बनाते रहे। यही तय हुआ था कि जल्द से जल्द यह काम पूरा हो जाना चाहिए। इस्माइल बेग भी इनके साथ सम्मिलित हो गया और षड्यंत्र को काट-छाँटकर, अत्यंत सुहावना स्वरूप दे दिया गया। वे दस्तावेज तैयार करने बैठे ही थे कि सम्राट ने मंजूर को अपने पास बुला लिया। मंजूर शाइरी की दाद जो देता था। हालांकि सबको जल्दी थी कि कहीं बादशाह अपने विचार बदल न दे, फिर भी मंजूर शाहंशाह की रुबाई सुनने के बाद ही फ़ुरसत पा सका और तीनों के तिगड्डे ने दस्तावेज तैयार करके लाला शीतलदास के हाथ दस्तख़त के लिए पेश करा ही दिया। दस्तावेज हाथ में आते ही नवाब गुलाम कादिर ने मंजूर और इस्माइल बेग को एक-एक हज़ार अशर्फ़ियाँ इनाम के बतौर अता फर्माईं और भविष्य में भी बहुत कुछ देने का वचन दिया। उसने ख़्वाजासराओं के द्वारा अब बुज़ुर्ग बेगमों से भी साँठ-गाँठ करना प्रारंभ कर दिया।

---

1. कमी 2. बहुत कृपा 3. आपत्ति

दो-तीन दिन बाद ही दरबार-ए-आम में गुलाम कादिर को अमीर-उल-उमरा और बख़्शी-उल-मुमालिक के खिताब अता फ़रमाये गये और किले की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी भी उसे सौंप दी गयी। गुलाम क़ादिर की फौज के महत्वपूर्ण लोग क़िले में आते गये और धीरे-धीरे वहीं स्थायी रूप से रहने लगे। महादजी सिंधिया को वकील-मुतलक के पद से बरखास्त कर दिया गया। बादशाही लाल-पल्टन के सिपाही व अफ़सर यह देख-देख कुढ़ते लेकिन कर ही क्या सकते थे। धीरे-धीरे, कादिर ने लाल कुर्ती वालों का अपमान करना शुरू किया और बादशाह से शिकायत कर-करके कई स्वामिभक्त अधिकारियों को पदच्युत करा दिया। वह दिनोदिन अपनी फ़ौज की बढ़ोतरी करने लगा और कई अवैध साधनों से रुपया भी जमा करने लगा। इधर उसे बुजुर्ग बेगमों से भी तो 'बारह लाख रुपहली सिक्के' प्राप्त करने थे। इतनी बड़ी धनराशि प्राप्त करने के लिए वह अपना मार्ग प्रशस्त करने में जुट गया और कुछ ही महीने गुज़रे थे कि सम्राट की भी उपेक्षा करने लगा। सम्राट अफ़ीम या शराब में मस्त रहता या हरम की रंगरेलियों में उसका समय गुज़रता। जो कुछ समय बचता वह शाइरी में खपा देता। अतः उसे महल या क़िले की व्यवस्था, या निजी व्यय के लिए निश्चित इलाक़ों से धन की वसूली आदि की कोई चिंता नहीं थी। उसे तीन-तीन स्वामिभक्त सहायक जो मिल गये थे, मंजूर अली, गुलाम क़ादिर और इस्माइल बेग।

एक दिन बादशाह ने गुलाम क़ादिर को बुलाया और एक नौकर क़ादिर के दफ़्तर-ख़ास में गया और कहा, 'हुज़ूर को जहाँपनाह याद फ़रमा रहे हैं।'

'जहाँपनाह को तो कोई काम है नहीं, बस जब जी चाहा जिसे याद कर लिया, अबे जाकर कह दे अभी फ़ुरसत नहीं है।'

'जहाँपनाह, अभी फुर्सत नहीं है नवाब साहब को।' नौकर ने बादशाह को सूचना दी। बादशाह का माथा ठनका और कहा, 'जाकर खबर कर दे कि फ़ुरसत होते ही हाज़िर हो जाये।'

नौकर ने गुलाम क़ादिर को जाकर कहा तो जवाब मिला—

'अबे हरामज़ादे, जाता है कि अभी कोड़े लगवाऊँ।' और काँपता हुआ नौकर चला आया। सम्राट को भी उसने मारे डर के कुछ नहीं कहा। लेकिन

जब दूसरे दिन तक भी गुलाम क़ादिर ने बादशाह से मुलाकात नही की तो वह अपमानित हो बहुत नाराज हुआ। एक खादिम को भेजा, 'गुलाम क़ादिर को फौरन से पेश्तर खबर करो कि वह हमसे मिले।'

खादिम ने सूचना दी तो गुलाम क़ादिर उठकर बादशाह के पास पहुंचा और बिना आदाब बजाये सामने खड़ा हो गया। बादशाह आग-बबूला हो गया और बोला, 'गुलाम क़ादिर! हम देखते हैं कि तुम फिर दिन ब दिन गुस्ताखी पर उतरते आ रहे हो। शाही दरबार के रस्म व रिवाज़ तक का तुम्हें खयाल नही रहा।'

'जहांपनाह, यह रस्म व रिवाजें छोड़िये और अपना मक़सद फरमाइये।' लापरवाई से कादिर ने कहा। बादशाह का बायाँ गाल आँख के नीचे फड़कने लगा, उसकी दाढ़ी और मूँछें क्रोध से कांप रही थी, चेहरा लाल सुर्ख हो गया था और वह कड़ककर बोला, 'गुलाम कादिर! शायद तुम होश में नही हो!! तुम्हें आगाह किया जाता है कि तुम शाहशाहे हिंदोस्तान के हुजूर में खडे हो!'

'हुजूर मुझे इल्म है, मैं होश में भी हूँ, अब इर्शाद फ़रमाइये कि बंदा क्या ख़िदमत कर सकता है।' जरा नम्रता से गुलाम क़ादिर ने कहा। अभी वह एकदम बादशाह को अपने ख़िलाफ़ नही करना चाहता था।

'तुम हमारे सामने से फ़ौरन चले जाओ, तुम्हे इस गुस्ताखी की सजा मिलेगी।'

'जहांपनाह, बंदा मुआफ़ी का ख्वाहिस्तगार है।' कुछ और सँभलते हुए गुलाम क़ादिर ने कहा।

'गुलाम क़ादिर, इस वक़्त माबदौलत गुस्से में है इससे पेश्तर कि गुस्से मे तुम्हारे लिए कोई सजा तजवीज हो जाये, तुम चले जाओ।' सम्राट कांप रहा था।

गुलाम कादिर थोड़ा झुककर आदाब बजाता हुआ चला आया। अभी वह सम्राट से एकदम बिगाड़ना ठीक नही समझ रहा था। यद्यपि वह गुस्ताखी पर उतर आया था तथापि उसने अपनी स्थिति के विषय में अंदाजा लगाया तो पाया कि अभी भी सम्राट के स्वामिभक्त अधिकारियो का किले में अभाव नही है। अभी और भी इंतज़ार करना जरूरी है।

इधर सम्राट क्रोध से आग-बबूला हुआ आसन्न संकट से आशंकित हो रहा था, उसे नींद नही आ रही थी कि उसने मन बहलाव के लिए सकीना बेगम को तलब किया। सकीना बेगम ने उसकी क्रोध और आशंका से शिथिल रग-रग में जान फूंक दी और शाहंशाहे हिंदोस्तान ने एक बार फिर अपने यथार्थ जीवन से दूर किसी नये क्षितिज पर पहुँच, आज की घटना को भुला दिया।

गुलाम क़ादिर को क़िले मे प्रविष्ट हुए लगभग नौ मास हो गये थे। उसने धीरे-धीरे क़िले पर अपना शिकंजा अच्छी तरह कस दिया। सम्राट के स्वामिभक्त सेवकों को एक-एक करके निकाल दिया। कुछ को वह इतना अपमानित करता कि वे भय, त्रास और अपमान से स्वतः ही क़िले मे आना बंद कर देते। अब स्थिति यह थी कि चारों ओर गुलाम क़ादिर के ही सेवक भर गये थे। तभी एक दिन बादशाह ने दीवाने ख़ास मे गुलाम कादिर को तलब किया। गुलाम कादिर ने बादशाह के नाई खालिद के कोड़े लगवा दिये थे और उसने अपनी उधड़ी हुई चमड़ी दिखाकर सम्राट से शिकायत की थी। कसूर उसका यही था कि गुलाम क़ादिर की तरफ़ उसकी नजर न होने की वजह से उसने आदाब नही बजाया था। बादशाह ने उसकी पीठ देखी तो बहुत नाराज हुआ और हमदर्दी ज़ाहिर करते हुए कहा कि अभी उस बदजात को मजा चखाता हूँ।

गुलाम कादिर दीवाने ख़ास मे आया और बिना अभिवादन किये खड़ा हो गया।

पहिले से ही क्रोधित सम्राट क्रोध से आपे मे नही रहा और कड़ककर बोला, 'क़ादिर हमे तुमसे उम्मीद नही थी कि तुम इतने गुस्ताख़ निकलोगे, शाही दरबार के सलीके तो जैसे तुमने बाला-ए-ताक रख दिये हैं...।'

सम्राट समाप्त भी न कर पाया था कि गुलाम क़ादिर बात काटकर बोला, 'हुजूर अभी गुस्ताखी से जनाब का साबका* पड़ा ही कहाँ है ? गुस्ताख़ी का तो अब मुलाहिजा कीजियेगा' सम्राट के पैरों तले से जमीन खिसक गयी—उसे अपने कानों पर विश्वास नही हुआ और इसलिए शायद

---

* वास्ता

एक बार और भी कड़ककर बोला, 'क्या कहा ?'

'हुजूर गुलाम कहने मे नही बल्कि करने में ऐतिकाद[1] रखता है।' और बादशाह के पास जाकर उसकी बाँह पकड़कर दीवाने ख़ास से बाहर की तरफ़ घसीट लाया। पाँच-छः ख़ादिम जो आसपास खड़े थे, सब गुलाम कादिर के थे, क़ादिर ने उन्हें आदेश दिया, 'देख क्या रहे हो इस बदबख्त बादशाह को पकड़कर किसी कमरे में बंद कर दो' फिर कुछ सोचकर, 'ज़रा ठहरो इसे भी बेदारबख़्त की तख़्तनशीनी का चश्मदीद गवाह बन जाने दो' और तुरंत बेदारबख़्त को बुलवाया गया। वह पहले से ही तैयार किया जा चुका था। गुलाम कादिर ने आते ही उसका हाथ पकड़कर तख़्त पर बिठा दिया और बादशाह शाहआलम को किसी कमरे में बंद करने और उस पर सख़्त पहरा रखने का आदेश देकर चला गया। नंगी तलवारों से घिरा शाह-आलम एक मुलज़िम की तरह क़ादिर के सिपाहियों के साथ चल दिया। यह सब कुछ पलक झपकते ही हो गया था। गुलाम क़ादिर ने जब शाह-आलम को घसीटा तो वह अवाक् रह गया था क्योंकि उसे क़ादिर के इस रौद्र रूप और अप्रत्याशित व्यवहार का स्वप्न मे भी गुमान नही था। वह अपने भाग्य को कोसता हुआ सिपाहियो के पहरे मे महल के एक भाग में पहुँचा और वही छोड दिया गया। जून की कड़ी धूप और गरम हवा ने दिल्ली मे त्राहि-त्राहि मचा रखी थी। लाल किले की ईंट-ईंट तपकर आग उगल रही थी और खस की टट्टियों मे रहने वाला सम्राट आज गर्मी से तड़प रहा था। उसने एक पहरेदार से जाकर पानी लाने के लिए प्रार्थना की लेकिन गुलाम क़ादिर ने पानी पिलाने की सख़्त मुमानियत कर रखी थी अतः बादशाह भूखा-प्यासा गर्मी में तड़पता रहा। आज रह-रहकर उसे लाला शीतलदास याद आ रहे थे। लालाजी ने कितनी आत्मीयता और साहस से कहा था, 'हुजूर के हुक्म की देर है अभी इस रुहेले के टुकड़े-टुकड़े उड़वा दूं।' लाला ने बिल्कुल धोखा नही खाया था और वह गुलाम कादिर के इरादे तभी समझ गया था। लेकिन अब तो वक़्त ही निकल गया—अब हो भी क्या सकता है।

---

1. विश्वास

गुलाम कादिर ने हरम में भी खाना और पानी ले जाये जाने पर पाबंदी लगा दी। इससे पहले उसने दोनों बुजुर्ग बुढ़िया बेगमों से बारह लाख चाँदी के सिक्के ऐंठ लिए थे। वायदा जो किया था उन्होंने। गर्मी में प्यास से बच्चे, शाहजादियाँ और बेगमें त्राहि-त्राहि करने लगे। भूख के मारे व्याकुल हो गये और जमानी बेगम कनीज़ों पर गुस्सा उतारने लगी। ये कनीज़ें भी तो भूखी-प्यासी तड़प रही थीं—इस संकट काल में कोई छोटा-बड़ा नहीं रहा था। सब भेद मिट गये थे और कनीज़ें जिन मलकाओं से थर-थर काँपती थी, उन्हीं के सामने लापरवाई से जवाब दे रही थीं।

सरदार मनबहारसिंह को नवाब जाब्ता खाँ अपने बेटे क़ादिर का हाथ पकड़ा गया था, 'सरदार, देखो यह तुम्हारा भतीजा है, इसे तुम्हारे सिपुर्द किये जाता हूँ, इसकी हर तरह से हिफ़ाज़त करना और यही मेहरबानी बनाये रखना जो मुझ पर रखी है।' और तभी से मनबहारसिंह गुलाम कादिर का अंगरक्षक बन गया था। अपनी 50-60 आदमियों की खालसा फौज के साथ वह हर समय गुलाम कादिर के साथ रहता। कई बार वह उसे नेक सलाह भी देता। सरदार खुद बहुत ही पाकसाफ़ था और किसी दुर्व्यसन में नहीं था। यद्यपि गुलाम कादिर की बहुत-सी गतिविधियाँ सरदार को नहीं भाती थी किंतु फिर भी वह उसकी सहायता के लिए वचनबद्ध था, अतः हर तरह सहायता करने का प्रयत्न करता। सरदार मनबहारसिंह गुलाम क़ादिर के लिए एक फ़रिश्ते की तरह था। वह चाहे कुछ करता या न करता किंतु गुलाम कादिर के लिए उसकी उपस्थिति मात्र ही असीम बल था।

जब गुलाम कादिर ने महलों में भोजन तथा पानी तक बंद कर दिया तो लाला शीतलदास यह सब सुन-सुनकर कुढ़-कुढ़कर रह जाते। आज घूरे ने उन्हें बताया कि महल के दो मासूम बच्चे बिना रोटी-पानी के भयंकर गर्मी में तड़प-तड़पकर मर गये तो लालाजी के अंग-प्रत्यंग में समाया मुगलिया खानदान का नमक जोर मारने लगा। जिस खानदान की टेढ़ी नजर से ही देश-विदेशों के बड़े-बड़े सिंहासन दहलाते थे, वही आज भूख की त्रासदी में बिलबिला रहा था—कैसी विडंबना!

शीतलदास से नहीं रहा गया। उसने अपना दिमाग दौड़ाया तो उन्हें

सिवा मनवहारसिंह के कोई आसरा नजर नहीं आया। वे तुरंत उसके कक्ष में जा पहुँचे और जाते ही बोले, 'सत श्री अकाल सरदार साहिब !'

'सत सिरी अकाल, लालाजी, आओ, कैसे तकलीफ़ की जी आज ?'

'सरदारजी आपको तो पता ही है कि महल की क्या हालत है।'

'हाँनजी वो तो सब पता है, लेकिन गुलाम क़ादिर के साथ भी, सुना है, काफ़ी ज्यादती हुई थी इसी महल में, ये तो धूप और छाया है, लालाजी, कभी कोई चित तो कभी पुट्ट, बोलोजी तुसी कैसे आये हो ?'

'जी सरदार साहब, कुछ खाना-पानी तो महल में भिजवा दें वर्ना इस गर्मी में सब जान दे देंगे।'

'जी इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? ये तो गुलाम क़ादिर जाने।'

'सरदारजी आपको कोई बात वह टाल नहीं सकते—आप कहेंगे तो वह जरूर मानेंगे।'

'जी मैं ठहरा बाहर का आदमी, वैसे मैं इस मामले में पड़ता नहीं—आपसी रंजिश का स्वाल है, मगर आप आये हो तो कुछ करूँगा।'

'हाँ सरदार साहिब, आपका बहुत अहसान मानूँगा।'

और लालाजी को बिदा कर सरदार तुरंत गुलाम क़ादिर के पास जा पहुँचे।

गुलाम क़ादिर ने खड़े होकर आदाब अर्ज किया और आश्चर्य से कहने लगा, 'चच्चा जान आज यहाँ कैसे तकलीफ़ की, मुझे ही बुला भेजते।'

'ठीक है, ठीक है, कोई गल नी जी, तुसी भी कोई एक काम नहीं करते, स्वाडी जान दे वास्ते भी तो हजारा इल्लतें हैं।'

क़ादिर मुस्कराकर बोला, 'हाँ इल्लत तो हजारों हैं मगर चाचा जान आपके लिए बंदा चौबीस घंटे हाजिर है। हुक्म करिये।'

'जी, मैं सुनी है कि महल दा खाना-पीना सब रोक रक्खा है तुसी !'

'हाँ, रोक तो दिया है चाचा जान, मैंने आपको बताया था न कि इन लोगों ने मेरे साथ बहुत सितम किये हैं, उसका बदला ले रहा हूँ।'

'हाँ वह तो ठीक है जी, लेकिन सब भूखे मर ही गये तो तुसी किस्से बदला लोगे ?'

'चाचा जान आप हुक्म कीजिये, क्या चाहते हैं।'

'मेरे भाई थोड़ा खाना-पानी तो वहाँ भिजवा दो।'

'अच्छा चाचा जान, आपके हुक्म की तामील जरूर होगी।'

'वाह, वाह, यह तो मुझे उम्मीद थी, बच्चा।'

'तो चाचा जान कितनी रोटी कितना पानी ठीक रहेगा।'

'जी वो तो मैंने भिजवाणी है, ये ही कोई बीस-पचीस रोटी और एक बेहगी पानी!'

'चाचा जान, ये तो बहुत हो जायेगा।' कुटिलता से कादिर बोला।

'जी अब तुसी मत बोलो, एक बार...।'

'हाँ चाचा जान सिर्फ़ एक बार ही भिजवाना आप।'

'हाँनजी, रोज कौन बेगार करेगा।'

और भोले बहादुर ने यह सोचकर कि काफ़ी हो जायेगा, 30 रोटियाँ और एक बेहगी पानी भिजवा दिया और उसे एक भलाई का काम कर पाने का भारी संतोष हुआ। मनबहारसिंह को क्या पता कि हरम की आबादी कितनी है। वहाँ पहुँचकर एक-एक टुकड़ा और चुल्लू भर पानी भी एक-एक के हिस्से में नहीं आया। उसने लाला शीतलदास को भी ख़बर भेज दी कि खाना-पानी पहुँच गया है।

लेकिन यहाँ एक दिन की बात तो थी ही नहीं—बड़ी परेशानी से एक-एक घड़ी निकल रही थी कि तभी नवाब मेंढू को पता लगा कि शाही परिवार भूखों मर रहा है। उसने गुप्त रूप से एक नौकर को भेजा कि किसी क़दर 15-20 रोटी और एक कलश भर पानी पहुँचा दे। लेकिन यहाँ तो बड़ा सख़्त पहरा था। बेचारा नौकर पकड़ लिया गया। रोटी-पानी सब फेंक दिये गये और गुलाम क़ादिर ने उस नौकर की तरफ़ इशारा करते हुए हुक्म सुनाया, 'इस चालबाज को शिकारी कुत्तों के सामने डाल दो।' कुत्तों ने उसकी बोटी-बोटी चबा डाली।

लाल किले पर चारों ओर किसी प्रेत की काली छाया मंडरा रही थी। 'रुपया-रुपया-रुपया'—अब क़ादिर का मूल-मंत्र रुपया था।

'तो आइये पहले शाहज़ादे मिर्ज़ा अकबर शाह की ही तलाशी ली जाये।'

इस्माइल बेग ने सलाह दी।

'हाँ, हाँ, बिलकुल ठीक, मैं ख़ुद भी यही सोच रहा था।' भूखे-प्यासे शाहज़ादे को कड़ककर गुलाम क़ादिर ने पूछा, 'अबे कबूतर की औलाद, बता माल-मता कहाँ छुपा रखा है।' शाहज़ादा मिन्नतें करने लगा कि 'मेरे पास क्या रखा है।'

'अच्छा, तो जनाब हमारा बिस्मिल्ला[1] ही ग़लत किया चाहते हैं, कंधारी ख़ाँ, इस मक्कार की मुश्कें बाँध लो और उल्टा लटका दो।' क़ादिर ने आज्ञा दी। जब मुश्कें बाँधकर उल्टा लटकाने लगे तो मिर्ज़ा अकबर घबरा गया और फ़ौरन चिल्लाया, 'ठहरो, अभी बताता हूँ।'

'हाँ ये कुछ बात हुई, बताओ और फ़ुरसत पाओ, लेकिन मक्कारी की तो समझ लो कोड़ों का मज़ा चखना पड़ेगा।'

और शाहज़ादे ने एक-एक खिड़की, एक-एक पत्थर, एक-एक दीवार में छुपा अपना पूरा धन बता दिया। बेलदारों ने चारों तरफ़ खोद डाला था उसका महल। क़रीब चार हज़ार अशर्फ़ियाँ, एक मन सोने के बर्तन, पंद्रह हज़ार रुपये, चार-पाँच मन चाँदी के बर्तन, दुशालों के कई तख़्ते, बीस गठरियाँ किम्ख़ाब[2] की, बहुत से ताँबे के बर्तन इकट्ठे करके इकाम अली ने नौकरों की पीठ पर लदवा दिये थे।

और अब बेगमों की बारी थी—नवाब शाहाबादी बेगम थर-थर काँप रही थी जब गुलाम कादिर उसके महल में मय अपनी चांडाल चौकड़ी के पहुँचा। चारों तरफ़ तलाशी ली और खुदाई शुरू हो गयी। दो संदूक भर के मोहरें और दस हज़ार अशर्फ़ियाँ क़ादिर के हाथ लगीं। एक छोटा संदूक जवाहिरात निकली। चार-पाँच मन सोने-चाँदी के बर्तन और कई बक्से स्वर्णाभूषण गुलाम क़ादिर ने अपने कब्ज़े में कर लिए।

यह है जयपुरी रानी। सुना था इसके मैके में राजा मानसिंह और जयसिंह के पास बेशुमार दौलत थी क्योंकि उन्होंने दूर-दूर के देशों में जाकर विजय प्राप्त की थी और असीम धनराशि लूटकर लाये थे। उसका बहुत बड़ा भाग रानी जयपुर के पास है। इसीलिए उसके मकान की चारों

---

1. श्री गणेश 2. एक कीमती कपड़ा

ओर से खुदाई कर डाली गयी लेकिन फिर भी कुछ अधिक हाथ नही लगा सिर्फ़ 2-3 हजार अशर्फ़ियां और तीस हजार रुपये।

नवाब ताजमहल, शाद महल और शमशाद महल, सबके महलो की दीवारें व फर्श तोड़-फोड़ डाले गये—काफ़ी धन-दौलत मिली। हसीना (शमशाद महल) तो पहले ही अपने मामा, मुमानी के घली गयी थी, मगर उसका महल भी लूट लिया गया। अब बारी थी मलका जमानी और साहिब महल वग़ैरह बुढ़िया बेगमो की।

ठहरो मलका-ए-आलिया—अभी देखती जाओ—शुरुआत तो आपकी ही तरफ़ से हुई थी। दावत तो आपने ही दी थी गुलाम क़ादिर को लाल किले में आने को। अब आप अपना फ़र्ज़ अदा कीजिये। निकालिये सब गड़ा-दबा। जी, यह आपके किस काम आयेगा। चप्पा-चप्पा खोद लेने दीजिये—यह वही गुलाम कादिर है जो आपकी आवाज पर थर-थर कांपता था। अब इसके बिना आवाज किये ही—सिर्फ इसके इशारे से लाल किले मे ज़लज़ला आ गया है—पत्थर-पत्थर थर-थर कांप रहा है।

क़िले पर चील-कौवो का अड्डा-सा बन गया है। चमगादड़ें इधर से उधर चिमचिमाती फिर रही है। दिल्ली अभी सब्र करो—अभी तो कुछ नही हुआ—और न जाने क्या-क्या हो जाये। ऐ लाल किले ! अपने सीने मे से धड़कते दिल को निकालकर उसकी जगह पत्थर रख लो। लेकिन पत्थर के भी तो टुकड़े-टुकड़े हो जाते है।

अब लाला शीतलदास ने अपना सारा चित्त सम्राट को इस महान सकट से उभारने की युक्ति खोजने मे लगा दिया। कुछ समझ मे आता ही नही था कि क्या किया जाये। तभी उन्हे अंग्रेजो का ध्यान आया—सुना था फ़ोर्ट विलियम के ये व्योपारी लोग राजा बादशाहो की कई तरह से मदद करते है। उन्हें मालूम था कि खुद सम्राट शाहआलम को उन्होने जब इलाहाबाद मे रखा था तो 26 लाख की पेंशन बांध दी थी और पूरा बादशाही सम्मान भी यथावत रखा था। अत. तुरत शीतलदास ने एक मर्म-स्पर्शी पत्र का प्रारूप बनाया और उसे अतिम रूप देकर पत्र तैयार कर लिया फ़ोर्ट विलियम कलकत्ता के गवर्नर के नाम। पूर्व मे इस तरह की कई ख़तो-किताबत अंग्रेजो के लिए उनकी नजर से गुजर चुकी थी अत:

वेदारबख़्त ने आज्ञा दी, 'इन्हें तिखटियों से बाँध दो।'

कई ख़ादिमों ने उन्हें बाँध दिया और कोड़े मारने की आज्ञा पाते ही उन पर कोड़े बरसाने लगे। सारा महल उनके रोने-चीखने से दहला गया। इन क़नीजों से जो कुछ मिला ले लिया और नंगे सिर किले से बाहर निकाल दिया।

इसके बाद उसने अपने बाप की सेविकाओं को भी ख़ूब यातनाएँ दीं, सोने-चाँदी और जवाहिरात का पता लगाकर काफ़ी माल हथिया लिया।

शाहआलम यह सब देखता-सुनता और अपने दुर्भाग्य से मुकाबिला करने के लिए साहस जुटाता, वह दुर्भाग्य जिसने एक क्षण मे उसे शाहंशाह से भिखमंगा बना दिया—भिखमगा ही नही, क्योंकि भिखमंगा स्वतंत्र तो होता है, उसे बलि का बकरा बना दिया—करुण, दयनीय, कोई भी दारुण से दारुण अत्याचार का लक्ष्य बनने की सतत आशंका से पीड़ित! 'क़ुर्बानी का बकरा भी मुझसे हज़ार गुना बेहतर है।' वह सोचता, 'गले पर छुरा फिरा और हलकी-सी मिमियाहट के साथ सब-कुछ ख़त्म। यहाँ तो घड़ी-घड़ी पल-पल उत्पीड़न है'—और बादशाह कभी-कभी गुनगुना उठता—

निगाहे इब्रत[1] से किसने देखा मिला कहाँ गम गुसार[2] कोई,
हुए हवाले हैं इस कफ़स[3] के वजूद[4] अपना भुला दिया है।

और फिर उसकी स्मृतियों के असह्य बिच्छू उसे डंक मारते। पत्थर-गढ़ (नजीबाबाद) की विजय के बाद जाब्ता खाँ के हरम की युवतियों का क्रंदन, उनके प्रति की गयी क्रूरता, फिर गुलाम क़ादिर के साथ वह रूमानियत का माहौल, फिर एक ही क्षण में उसे आसमान से लाकर जमीन के गहरे गर्त में पटक देना। उफ कितना गिड़गिड़ाया था वह। लेकिन उस वक़्त शाहआलम के शरीर में शाहंशाहे हिंदोस्तान जो घुमा बैठा था। छि: यह 'शाहशाह' लफ़्ज ही एक नशा है! इस नशे मे इन्सानियत का होश जो भुला बैठता है आदमी! क़ादिर लो, गिन-गिन के बदला लो, अब तुम्हारा पलड़ा भारी है! कौन रोक सकता है तुम्हें! लेकिन तुम्हारा मुजरिम[5] तो

---

1. करुणा की दृष्टि 2. दुख का हाल पूछने वाला 3. पिंजड़ा
4. अस्तित्व 5. अपराधी

मैं हूँ, इनके बेचारे शाहजादे, बेगमों, शाहज़ादियों और क़नीज़ों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, ये तो बेगुनाह हैं ! फिर सम्राट की आत्मा से आवाज़ उठती, 'तो क्या पत्थरगढ में औरतें व बच्चे बेगुनाह नहीं थे ?' सम्राट को उत्तर मिल जाता और उसकी आँखें अश्रुपूरित हो जाती। आज तख़्त से हटाये पंद्रह दिन हो गये लेकिन अभी क्या पता कितने पखवाड़े और निकलें। ऐशो-आराम के दिनों में हम समय को कोई महत्व नहीं देते किंतु यातना की अवधि का अनुमान लगाने में हमारी उत्सुकता सदैव आशा और निराशा में डूबती-उतराती रहती है।

शाहंशाह एक-एक दिन गिनता, घड़ी-घड़ी पल-पल का हिसाब लगाता। कभी किसी शाहज़ादी की चीत्कार तो कभी किसी बेगम या कनीज़ का क्रंदन। कभी किसी बालिका का भूख से छटपटाकर अंतिम साँसें गिनना तो कभी किसी बुढिया या बालक का प्यास से बिलबिला जाना। यह शाही महल थोड़े से समय मे ही जैसे कुलबुलाते कीड़ों का निवास हो गया हो, जैसे इन्सानियत यहाँ से कोसों दूर हो।

सूरज-चाँद पर ग्रहण लगा करता है—उसकी भी एक ज्ञात अवधि होती है मगर यह कैसा ग्रहण है—गहराती स्याह काली छाया—कोई अवधि नहीं। आज अठारह दिन हो गये यातनाएँ सहते और तभी ग़ुलाम कादिर ने फ़रमान निकाला कि मोती महल मे शाहआलम को मय शाहज़ादों के पेश किया जाये। सम्राट के दिल मे जैसे नंगी कटार, बर्फ़-सी ठंडी भौंक दी हो किसी ने। अगस्त का मध्य है किंतु वर्षा भी जाने कहाँ अटक गयी। चारों ओर जानलेवा गरमी—इस गर्मी मे भी सम्राट काँप रहा था—आशंकाओं में डूबता-उतराता—शाहज़ादे काँप रहे थे, पीपल के पत्ते की तरह। ग़ुलाम कादिर शराब के नशे में मदहोश अट्टहास कर रहा था, 'उतार लो इनके बदन से कपड़े और तीनों को गरम-गरम ईंटों पर खड़ा कर दो। यह थे सम्राट, शाहज़ादे मिर्ज़ा अकबर और सुलेमान शिकोह। शुष्क होंठ और लड़खड़ाती ज़ुबान से बादशाह फ़रियाद करने लगा, 'जो कुछ क़सूर किया है मैंने किया है, इन बेचारे बेगुनाहों ने क्या बिगाड़ा है।' लेकिन सुनने वालो के कानों मे तो रुई ठुसी थी।

अकबरशाह और सुलेमान शिकोह को तिखटियों से बाँध दिया गया

और उन पर कोड़े बरसाये जाने लगे। उधर बेगमें चीख रही थी—चारों तरफ़ हाहाकार मचा हुआ था, तभी गुलाम क़ादिर ने आज्ञा दी, 'इस बदबख़्त, बदज़ात शाहआलम की आँखों में सलाई फेर दो!'

सुनते ही कई ख़ादिम बादशाह से चिपट गये और ज़मीन पर गिरा लिया। गरम की हुई सलाइयाँ दोनों आँखों में फेर दी गयी—बादशाह छटपटा-छटपटाकर चीख़ता रहा। कुछ देर बाद गुलाम क़ादिर ने बादशाह से पूछा, 'कहिये जहाँपनाह! कुछ नज़र आता है?'

बादशाह को मार-मारकर खड़ा कर दिया गया था।

'सिवा उस क़ुरान-मजीद के जो हमारे-तुम्हारे दरमियान था कुछ भी नज़र नहीं आता।' बादशाह ने कराहते हुए कहा।

गुलाम क़ादिर ने पूरे ज़ोर से एक लात शाहआलम के सीने मे मारी, वह ज़मीन पर गिर पड़ा। गुलाम कादिर तुरंत उसकी छाती पर चढ़ बैठा। कंदहारी ख़ाँ ने इशारा पाकर सम्राट के हाथ पकड़ लिए और दूसरे लोगों ने पैर। कादिर ने तुरंत छुरे से सम्राट की बायीं आँख निकाल ली और कंदहारी ख़ाँ ने दायीं। बादशाह के चीत्कार से पूरा महल दहला गया, तभी गुलाम क़ादिर ने आदेश दिया, 'फ़ौरन मुसव्विर[1] को बुलाया जाये।'

मुसव्विर पहले ही से तैयार था, झट से आ पहुँचा। गुलाम क़ादिर ने उसे आज्ञा दी, 'हमारी इसी तरह तस्वीर बना दे कि हम शाहआलम के सीने पर चढ़े छुरे से इसकी आँख निकाल रहे हैं, हू-ब-हू ऐसी ही।'

'जो हुक्म हुज़ूर' और तस्वीर बनायी जाने लगी।

महल से रोने-चीख़ने की आवाज़ें आने लगी तो गुलाम क़ादिर ने भौंहें चढ़ाकर पूछा, 'यह क्या हंगामा है?'

नौकरों ने बताया कि शाहआलम की हालत पर औरतें रो रही हैं।

'जो कोई रोयेगा उसे शाहआलम की तरह अंधा कर दिया जायेगा।' आज्ञा सुना दी गयी थी।

---

1. चित्रकार

किसी अक्षत कुमारिका के बलात्कार में लुटे कौमार्य की तरह अपना समस्त ऐश्वर्य लुटाकर लाल किला कसमसा रहा था। काली छायाएं प्रेत की परछाइयाँ, गिद्धों के फड़फड़ाते डैने, चमगादड़ों के चिमचिमाते परों ने किले को अँधेरे भुतहा खंडहरों में परिणत कर दिया हो जैसे।

लेकिन अभी गुलाम कादिर को संतोष कहाँ ! चारों तरफ़ से धन बटोर लिया, सम्राट की आँखें निकाल लीं ! और क्या चाहते हैं जनाब बख्शी-उल-मुमालिक ! अमीर-उल-उमरा ! अच्छा, अच्छा अभी तो रँगरेलियाँ बाक़ी हैं ! तभी तो हुक्म हुआ है, 'हरम की सब शाहजादियों को मोतीमहल में पेश किया जाये।'

लाला शीतलदास छटपटा रहे थे। 'यह तो ग़जब हो जायेगा, गजब ! नहीं तैमूरिया हरम की अस्मत यों नहीं लुटने दूँगा। शीतलदास कुछ करो, फौरन, अभी ! और तुरंत वे मनबहारसिंह के पास हाँफते हुए पहुँचे, 'सरदार साहब, दुहाई है आपकी !'

'की गल है लालाजी, साडी दुहाई ? क्या हो गया ?'

'सरदार साहब गजब होने वाला है। गुलाम क़ादिर ने मदहोश रुहेले सरदारों के सामने सारी मुग़ल शाहजादियों को बुलाया है।'

'मुग़ल शाहजादियों को बुलाया है ? किस वास्ते ?' ज़रा आँखें सिकोड़ते हुए, सरदार ने समझने की कोशिश की।

'आप खुद समझ सकते हैं सरदार साहब, जो कुछ लड़ाई-झगड़ा है मर्दों से है, औरतों की इज्जत पर आँच तो नहीं आनी चाहिए।'

'नईं जी लालाजी नईं, औरतों से क्या मतलब जी, बहादुर लोग औरतों की खुद इज्जत बचाते हैं, लूटते नहीं ! कहाँ बुलाया है जी !'

'जी मोती महल में, वहीं सब इकट्ठे हैं।'

मनबहार सिंह जो बहादुरों के लिए साक्षात महाकाल था वही औरतों और बच्चों के लिए देवता था—उसका खून खौलने लगा। 'नईं मनबहार ऐ नईं हो सकदा।'

वह तुरंत मोती महल में पहुँचकर महफ़िल में सम्मिलित हो गया। गुलाम क़ादिर तो पहले थोड़ा अचकचाया लेकिन शराब का नशा जो चढ़ा था उस पर। अपनी आदत के अनुसार सरदार को सम्मान से बिठाकर वह

उपस्थिति भूल गया। सामने काँपती हुई मुग़लिया हरम की मुरझायी-कुम्हलायी शाहज़ादियाँ अगले आदेश की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। तभी गुलाम क़ादिर दहाड़ा, 'रुहेले सरदारो, लूट लो इनकी इज्ज़त, पकड़ ले जाओ एक-एक···।' बिजली-सी कौंध गयी राजकुमारियों के दिल में लेकिन तभी तूफ़ान की तरह गहराती एक आवाज़ सुनायी दी, 'नही, पुत्तर ऐ नही हो सकदा! मैं यह क़तई बर्दाश्त नही कर सकता, समझे!' यह मनबहार सिंह की कड़कती आवाज़ थी। आग उगलती आँखों से गुलाम क़ादिर ने सरदार की तरफ़ देखा, शराब में मदहोश एकदम चीख़ा, 'मैं इन्हें रुहेलों की गुलाम बना दूंगा, लौंडी, रखैल बना दूंगा चच्चा जान!'

सरदार ने बड़े संयत स्वर में कहा, 'गुलाम कादिर, यह नशा उतार फेंको और साडी इस सुफ़ेद दाढी दी तरफ देखो जी, मेरे जीते जी यह नहीं हो सकदा!' क़ादिर ने अप्रतिभ होकर मनबहारसिंह की तरफ़ देखा। उसकी दाढ़ी क्रोधित सिंह के बालों की तरह थरथरा रही थी और सारा मुख-मंडल था गंभीर—एकदम शांत। कादिर स्तब्ध रह गया। चच्चा जान ने एक जगह नही कई मौक़ों पर अपनी ढाल और तलवार के बल पर क़ादिर की जान बचायी थी।

'भेज दो हरम में इन कुत्तियों को, रुहेले शेर और इन हरामजादी कुत्तियों का क्या जोड़।' कादिर ने हुक्म दिया। और इसी तरह गाली-गलौज करके उन्हें हरम में भेजने का आदेश दे दिया। सरदार मनबहार सिंह बड़े संतोष से अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था, मुग़ल शाहज़ादियाँ उसकी तरफ़ देखकर मन-ही-मन इबादत[1] कर रही थीं! 'इन कमीने गुंडों में यह फ़रिश्ता! हाय रसूल, यह भी तेरा ही करिश्मा है!' इज्ज़त और जान बचाकर सब हरम की ओर चली आयीं। मनबहार का शांत, तेजस्वी चेहरा वे जीवन-भर नहीं भूलेंगी।

अभी गुलाम कादिर को तसल्ली नही हुई थी। वह तो किसी-न-किसी तरह शाही ख़ानदान को अप्रतिभ कर, मात्र मनोरंजन का साधन बनाना चाहता था। उसने अकबर शाह और दूसरे शाहज़ादों को तलब किया और

1. पूजा

हुक्म दिया कि सब नाचो। बेचारे मरते-गिरते भूखे-प्यासे उलटे-सीधे हाथ-पैर पटकने लगे। कादिर और उसके साथी रुहेले सरदार उन्हें देख-देखकर मज़ा लेते रहे।

जब एक ख़्वाजासरा गुलाम क़ादिर के पास ख़बर लाया कि एक दस वर्ष की शाहज़ादी भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मर गयी है तो उसने आज्ञा दी, 'वहीं दफना दो, उन्हीं कपड़ों में, किसी क़फ़न वग़ैरह की ज़रूरत नहीं है।' लड़की वहीं दफ़ना दी गयी और एक दिन जब बेदारबख़्त ने कहलाया, 'हरम में अहमदशाह की मलका-ए-आलिया (पटरानी) का इन्तकाल हो गया है, क्या किया जाये ?'

'उस हरामखोर बदज़ात कुत्ती को वहीं पड़ा रहने दो, कोई ज़रूरत नहीं दफ़नाने की।' क़ादिर ने आज्ञा दी। जब कई दिनों लाश पड़ी रही तो चारों तरफ़ दुर्गंध फैल गयी। ख़्वाजासराओं ने काफ़ी मिन्नतें कीं तब कहीं दफनाने का हुक्म दिया गया।

कादिर ने लाल क़िले को खोखला करने के बाद धन-दौलत के लिए नये-नये स्रोत ढूंढना शुरू किया और सबसे पहले उसने पकड़ा मंज़ूर अली को। ख़्वाजा मंज़ूर अली की ज़ुल्फें पकड़कर उसे दीवार से दे मारा और छुरा निकालकर कहा, 'अबे गिरगिट की औलाद, निकाल जो कुछ तूने इस नुत्फ़े-हराम[1] की नौकरी कर करके लूटा है। देखता है यह छुरा...।' मंज़ूर अली का कलेजा काँप गया। अरे वह तो समझ रहा था कि उसे दिल्ली का राज दे देगा गुलाम क़ादिर—राज नहीं तो, मालामाल तो कर ही देगा, लेकिन यहाँ तो उलटे बाँस बरेली को जाने लगे। जान बचे किसी तरह! और उसकी 4-5 हज़ार अशर्फ़ियाँ, करीब 50 हज़ार रुपये, क़ीमती कपड़ों के थानों के ढेर, सबके-सब हथिया लिए क़ादिर ने।

अब दिल्ली नगर की बारी थी। दिल्ली! तुम भी एक जादूगर से कम नहीं। आज लुटती हो कल फिर वैभवशालिनी। श्राप और वरदान दोनों साथ ही साथ पाये हैं तुमने। क़िले से अवकाश पाकर गुलाम कादिर ने अपनी पल्टन को आज्ञा दी 'लूट लो सोना, जाओ जहाँ भी धन-दौलत मिले

---

1. दोग़ला

जमा कर लो।' रुहेले सिपाही दिल्ली की हवेलियों की तरफ़ बढ़े। फिर वही लूटमार, मारधाड़! एक बार फिर दिल्ली तड़प उठी, उसकी चीत्कार से चारों दिशाएँ गूँजने लगीं। तभी धनलोलुप क़ादिर को जामा मस्जिद के गुम्बद दिखायी दिये। तीनों गुम्बदों के स्वर्ण-मंडित कलश जो चाँदी के ठोस विशाल कटोरों पर टिके थे। गुलाम क़ादिर ने तनिक भी संकोच न किया। इबादतगाह में सोने-चाँदी का क्या काम? यह तो राजा-नवाबों के काम की चीज़ है।

'तहव्वर और रज़ा, जाओ, पत्तर उजाड़ डालो और चाँदी के कटोरे क़ब्ज़े में कर लो।' दोनों सेनानायक चल दिये और सिपाहियों को सोना उतारने के लिए ऊपर चढ़ा दिया। दिल्ली में त्राहि-त्राहि मच गयी। 'हाय यह इबादतगाह भी नहीं बचेगी? जब इसका यह हाल हो रहा है तो घर कौन-सा महफ़ूज़ बच सकेगा।'

लाला शीतलदास निरीह आँखों से यह सब देख रहे थे। वे एक बार फिर सरदार मनबहार सिंह के पास जा पहुँचे। मनबहारसिंह पहले ही नाराज़ थे मस्जिद के लूटे जाने से। लालाजी को देखते ही समझ गये। तुरंत दिलासा देते हुए बोले, 'तुसी फिकर ना करो लालाजी असी पहले ही इसका इंतज़ाम सोच रहे हैं।' शीतलदास की छाती ठंडी हो गयी। मनबहार ने गुलाम क़ादिर को बुला भेजा। कादिर पहले तो अचकचाया लेकिन चच्चा जान का बुलावा टाल न सका। आते ही झुककर आदाब बजाया और बोला, 'चच्चा जान कैसे याद फ़रमाया?' उसका माथा ठनक रहा था।

'पुत्तर, तुसी ये बताओ कि त्वाडे कितने सोने-चाँदी दी ज़रूरत है?'

'क्या मतलब चचा?'

'जी मतलब दी गल बाद में, पहिले साडे स्वाल दा ज्वाब दो।'

'सोने-चाँदी से चच्चा जान कभी किसी का पेट भरा है?'

'तो तुसी बूखे हो बूखे! भगवान दे घर दे विच तोड़-फोड़ करके अपनी बूख मिटाओगे!'

'चच्चा जान साफ़ कहिये क्या चाहते हैं?' क़ादिर समझ गया था।

'पुत्तर जामा मस्जिद दा सोना-चाँदी नहीं लुट सकदा, समझे—बंद करो ये सब। ज़रा शरम खाओ, सारी दिल्ली में बल्वा हो जायेगा—फिर

तुमी अल्लाह का घर ही लूट लोगे तो तुम को कौन बचायेगा ?' सरदार गंभीरता से बोला, 'जिसदे तुसी बंदे हो उसी दा घर !'

'चच्चा जान, मुझे अफ़सोस है। मस्जिद नही लुटेगी।'

केवल एक गुम्बद का सोना ही उतारकर बेच पाये थे कि हुक्म हो गया कि मस्जिद नही लुटेगी। सब सिपाही नीचे उतर आये थे।

शाहआलम, जी तो रहा था, लेकिन एक जिंदा लाश की तरह। वह नित्य आशा करता कि कोई मददगार आये और इस मुसीबत से निजात दिलाये या फिर गुलाम क़ादिर ही इतना क्रूर बन जाये कि उसका काम तमाम कर दे। गुलाम कादिर कई कारणो से शाहआलम को केवल यातना ही देते रहना चाहता था। मनवहारसिंह और कादिर के अन्य सलाहकार शाहआलम को मारने के पक्ष मे नही थे। जो भी हो प्रकृति में हर रात के बाद सवेरा होता है। अभी क़ादिर कुछ और अत्याचारों की योजना बना रहा था। उसका इरादा था शाहज़ादो को कई तरह से यातनाएँ देकर तड़पा-तड़पाकर मार डालने का। उसने समस्त शाहज़ादों को अपने सामने बुलाया और बहुत-सी गालियाँ देकर उन्हे अपमानित किया। उसी समय एक गुप्तचर हाँफता हुआ गुलाम क़ादिर के पास पहुँचा और कान मे फुसफुसाया—

'हुजूर सिंधिया की फ़ौजें फरीदाबाद तक आ पहुँची है।' बात समाप्त भी नही हुई थी कि गुलाम क़ादिर को बिजली का झटका-सा लगा।

'फ़रीदाबाद तक !'

'जी हुजूर इधर फरीदाबाद तक और कुछ पल्टन उधर गुड़गाँव से आगे तक आ पहुँची है।' बदहवास से गुप्तचर ने अपनी बात पूरी की।

'हमे पहिले से ख़बर क्यों नही दी गयी ?'

'हुजूर अभी दस पंद्रह जासूस किले मे आये हैं उन्होंने अभी-अभी बताया है। पहले यह अंदाजा नही लग सका था उन्हें कि ये फ़ौजें दिल्ली के क़स्द[1] से आ रही हैं लेकिन अब यह तहकीक हुआ कि इधर ही बढ़ रही हैं।'

---

1. इरादे

गुलाम क़ादिर हक्का-बक्का रह गया।

उसने तुरत अपनी धन-दौलत बटोरना शुरू किया। कुछ क़ीमती जवाहिरात, मोहरें वग़ैरह घोड़े की काठी में जमायी और बाकी धन-दौलत को पत्थरगढ़ की ओर रवाना करने का हुक्म दिया। और अपनी पल्टन के साथ मेरठ की ओर चल दिया। शाहज़ादों को भी उसने क़ैदियों की तरह साथ ले लिया। कुछ मराठी फ़ौजें देहली मे आ पहुँची थी—छुटपुट मुकाबिले हुए मगर मनबहारसिंह और उसके खालसा साथियों ने एक बार फिर गुलाम क़ादिर को बचा लिया। भागते-भागते गुलाम क़ादिर ने आज्ञा दी कि सब मुग़ल शाहज़ादों के सर धड़ से अलग कर दिये जायें, लेकिन तभी सरदार मनबहार सिंह अपनी चमचमाती तलवार और ढाल लेकर सामने आया और उसने हुक्म सुनाया, 'नई ये नई होगा—इन सबको छोड़ दो। एकदम रिहा कर दो।' सरदार शीतलदास को वचन देकर आया था कि शाहज़ादो की जीवन-रक्षा करूँगा, उनका बाल भी बाँका नही होगा। गुलाम क़ादिर ने सरदार की ओर देखा लेकिन जैसे ही सरदार की आँखों से आँख मिली वह नीची निगाहें कर उसकी आज्ञा की अनुपालना देखता रहा। एक-एक शाहज़ादा मुक्त कर दिया गया था।

गुलाम क़ादिर ज्यादा नही चला होगा कि सिंधिया की फ़ौजों के दल के दल नज़र आने लगे। उसके अनेक सिपाही इनसे मुकाबिले मे मारे गये और अब कादिर अकेला ही सरपट चाल से भाग रहा था। मनबहारसिंह और उसके खालसा दिल्ली के आसपास ही मराठी सेना से जूझते रहे। उधर गुलाम कादिर सर पर पैर रखकर भाग रहा था, भागता जा रहा था, कहाँ किधर! उसे कुछ ध्यान न था। वह मेरठ की ओर दौड़ लगा रहा था, लेकिन मुख्य सड़क से थोड़ा हटकर। सड़क पर जानजोखिम अधिक था। लगभग 30-35 मील वह भागता ही गया। अँधेरी रात की ओट मे उसे अपनी जान बचानी थी—सब साथी छूट गये थे। घोड़ा भी ऊबड़-खाबड़ रास्ते मे भागते-भागते पस्त हो गया था। एक गाँव बमनौली के पास रास्ते पर कोई बड़ा शिलाखंड पड़ा था, इधर-उधर कोई जगह नही थी, अँधेरे मे तेज़ी से दौड़ता हुआ घोड़ा शिलाखंड से बुरी तरह टकराया। क़ादिर एक तरफ़ लुढ़का तो उसकी टाँग नुकीले पत्थर से रगड़ खाकर बुरी तरह ज़ख़्मी

हो गयीं। घोड़े की दो टाँगें घायल हो गयी तो वह भी एकबारगी वहीं पसर गया। बेहोश क़ादिर वहीं पड़ा रहा और जब उसे थोड़ा होश आया तो मिक्खीराम किसान उसके सामने खड़ा था।

'हुजूर सलाम।' मिक्खीराम ने कहा।

'सलाम भाई सलाम।' कादिर ने कहा।

'हुज़ूर, रात को इस पत्थर से कई बार लोग टकरा जाते हैं, बड़ा इतना है कि हम लोग हटाने की कई बार कोशिश कर चुके हैं मगर टस-से-मस नहीं होता। यह तो जैसे ज़मीन में गड़ गया है।'

'हाँ, भाई, यह तो बड़ा ख़तरनाक है।' गुलाम क़ादिर ने कहा।

'अरे हुजूर यह क्या, आपके आसपास तो ख़ून-ही-ख़ून बिखरा है!'

'उफ़ ओ!' कादिर ने वहाँ से उठने की कोशिश की मगर खड़ा न हो सका। मिक्खीराम ने ही उसे जैसे-तैसे लँगड़े घोड़े की पीठ पर डाला और अपने घर शामली गाँव में ले आया।

'हुजूर आप कहाँ जायेंगे?' मिक्खीराम ने पूछा।

'भाई मुझे गौसगढ़ जाना है, तुम्हें वहाँ पहुँचकर मालामाल कर दूँगा, किसी तरह मुझे वहाँ तक पहुँचा दो।' उसने मिक्खीराम से कहा।

गौसगढ़ का नाम सुनकर मिक्खी के कान खड़े हुए। उसने कल ही एक ऐलान सुना था कि एक रुहेला पठान सिंधिया की फ़ौज के हवाले करो और 500 रु० इनाम पाओ। गौसगढ़ पहुँचाने के बजाय मिक्खी ने 500 रु० का यह इनाम पाना ज्यादा आसान समझा। ज़रूर यह रुहेला है।

सोच-साचकर वह कुछ योजना बना रहा था कि एक-डेढ़ महीना निकल गया। तभी उसके बड़े भाई ने बताया कि करीब एक मील पर एक फिरंगी अफ़सर की फ़ौज पड़ी है, फ़ौज के लोग दखिनी हैं। तुरंत मिक्खीराम उल्लास के साथ उसी तरफ़ चल दिया। उसने कहा सबसे बड़े अफसर से मिलना है।

जब लैंस्तीनो साहब खेमे से बाहर निकलकर उसके सामने आया तो उसकी घिग्घी बँध गयी। लैंस्तीनो सिंधिया की फ़ौज में काफ़ी दिनों से हिंदुस्तान में था—यहाँ के लोगों की आदत, रीति-रिवाज और संकोची स्वभाव से वह भलीभाँति परिचित था। अत. जैसे ही उसने मिक्खीराम

को देखा, वह समझ गया कि यह भोलाभाला किसान जरूर कुछ महत्वपूर्ण खबर लाया होगा। उसने उसे दिलासा देते हुए समझाया, 'घबराओ नईं, बोलो क्या कहना चाहते हो?'

मिक्खी ने कहा, 'हुजूर एक रुहेला···मेरे···घर।'

'तुम्हारे घर रुहेला है—अभी वहाँ बैठा है?'

'हाँ हुजूर, चोट आ गयी है पैर में।'

'चोट आ गया है, हम चलता है।'

और फ्रांसीसी कमांडर कुछ सिपाहियों को लेकर जब मिक्खी के घर पहुँचा तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने तुरंत पाँच सौ चाँदी के सिक्के मिक्खीराम को गिना दिये और गुलाम क़ादिर को मय उसके घोड़े के फ़ौजी छावनी में ले आया। लैस्तीनो ने गुलाम कादिर को अच्छी तरह पहचान लिया था। एक कैदियों के खेमे में कादिर की तलाशी हुई और उसे गिरफ़्तार कर लिया गया। उसी रात लैस्तीनो ने घोड़े की काठी अपने निजी खेमे में रखवा ली और जो कुछ उसमें था सब निजी सामान का हिस्सा बना लिया।

करीब एक माह के बाद गुलाम क़ादिर को जनरल राना के सिपुर्द कर दिया गया। राना ने सिंधिया को सूचना भेज दी और सिंधिया ने मुग़ल सम्राट को लिख भेजा कि गुलाम क़ादिर पकड़ लिया गया है, उसके साथ कैसा सलूक करना है।

शाह आलम ने आज्ञा भेजी कि उसे तुरंत क़त्ल कर देना चाहिए वर्ना वह किसी तरह क़ैद से निकलकर मक्का चला जायेगा और अपने जुल्मों की सजा पाने से बच जायेगा। शायद वह फिर बगावत पर भी उतर आये।

जैसे ही सिंधिया दिल्ली की ओर बढ़ रहा था उसके नाम से ही गुलाम क़ादिर के होश उड़ गये थे और वह अपनी जान बचाकर मेरठ की ओर भागा था। उसके दिल्ली छोड़ते ही रुहेले सरदारों और उनकी फ़ौज में खलबली मच गयी। छुटपुट मुकाबिले करते हुए जहाँ जिसे सूझा वहीं भाग गया। सिंधिया की फौजों ने चारों तरफ़ पीछा भी किया और अनेक सैनिकों

को तलवार के घाट उतार दिया। इस तरह मराठों की फ़ौज को दिल्ली पर अधिकार करने में कोई कठिनाई नही आयी और मराठे सरदार तुरंत लाल किले में प्रविष्ट हुए—महादजी सिंधिया सबसे पहले शाहआलम के पास पहुँचा। जैसे ही सम्राट को पता लगा वह बड़े उत्साह से उछलकर खड़ा हुआ और सिंधिया को गले लगा लिया।

'बड़े दिन लगा दिये मेरे फ़रिश्ते। लेकिन देर आयद दुरुस्त आयद।'

सम्राट की आँखों के सूने गड्ढों में हर्ष के अश्रु छलक रहे थे और महादजी उसके नेत्र-विहीन मुखमंडल को देखकर, न चाहते भी भाव-विह्वल होकर रो पड़ा।

'जहाँपनाह, वाक़ई कहर बरपा दिया उस कंबख़्त ने। लेकिन जल्द ही पकड़ा जायेगा और माकूल सजा दी जायेगी उसे।'

क़िले में खुशियाँ मनायी जाने लगीं—खाने-पीने का सामान व कपड़ों का प्रबंध किया गया और कांतिविहीन विधवा-सा लाल किला पुनः आशा और निराशा के मध्य डूबने-उतराने लगा।

सिंधिया ने पूरे महल के लिए नये सिरे से व्यवस्था करायी और शाह-आलम के लिए नौ लाख रुपये वार्षिक पेंशन भी निश्चित कर दी।

इन कामों को जल्दी-जल्दी निपटाकर सिंधिया तुरत फ़ौज के साथ गुलाम क़ादिर और अन्य महत्वपूर्ण भगोड़ों का पीछा करने निकला। उसने जनरल राना को पहले ही उधर की तरफ़ रवाना कर दिया था। दो-तीन महीने में ही जनरल राना की पल्टन विजयपताका फहराती हुई उसी की तरफ़ आती दिखायी दी।

पास आते ही राना ने घोड़े से उतरकर सिंधिया का झुककर अभि-वादन किया और बड़ी विनम्रता से कहने लगा, 'श्रीमंत आपका सबसे भयंकर अपराधी पकड़ लिया गया है।'

'सबसे भयंकर अपराधी! यानी गुलाम कादिर? क्या कह रहे हो? पकड़ में आ गया वह!' सिंधिया ने रोमांचित होकर कहा।

'हाँ श्रीमंत।' और उसने एक सेनानायक को इशारा किया।

महादजी सिंधिया ने हर्ष से राना को गले लगा लिया और जब गुलाम क़ादिर को हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़ा हुआ उसके सम्मुख पेश किया

गया तो उसने घृणा से कहा, 'इस बेहया नमक हराम लुटेरे को मेरे सामने से ले जाओ, इसका मुँह देखना भी पाप है।'

उसने तुरंत सम्राट को लिख भेजा कि इसके साथ कैसा सलूक करना चाहिए। सम्राट का उत्तर आप पढ़ ही चुके हैं।

उत्तर पाते ही महादजी सिंधिया ने अपनी छावनी में ही एक दरबार लगाया। दरबार की तैयारियाँ हो ही रही थीं कि बीसाजी सिंधिया ने उपस्थित होकर महादजी के चरण-स्पर्श किये और बताया कि नाजिर मजूर अली ख्वाजा पकड़ लिया गया है।

'वाह, वाह, चारों तरफ़ फ़तह हो रही है। उस कमीने बदजात नमकहराम को पकड़कर सावधानी से रखना बीसाजी, उसे तो शाहंशाह हिंदोस्तान से ही माकूल सजा दिलानी होगी।' महादजी ने कहा।

'जो हुकुम श्रीमंत, आप बेफ़िक्र रहें, शेर के पंजे से यह खरगोश बचकर कहीं नहीं जा सकता।' बीसाजी ने आश्वासन दिया।

दरबार लगा तो चारों ओर सेनापतियों ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया। जनरल राना महादजी के बायीं तरफ़ और बीसाजी दायीं तरफ़ बैठे।

ग़ुलाम क़ादिर को दरबार में पेश किया गया। जनरल राना ने उसे पकड़े जाने का पूरा हाल सुनाया और बीसाजी ने उस पर शाहंशाह से बग़ावत, शाही हरम को भूखा-प्यासा तड़पाना और भाँति-भाँति की यातनाएँ देना तथा सम्राट के साथ अपमानजनक व्यवहार और उसको अंधा कर देने के आरोप सुनाये और निवेदन किया, 'श्रीमंत ऐसे अत्याचारी, क्रूर और निर्दयी व्यक्ति को क्रूर से क्रूर तथा कठोर से कठोर सजा मिलनी चाहिए।'

महादजी सिंधिया ने बुलंद आवाज में निर्णय सुनाया, 'इस बदजात, नमकहराम को जो भी दंड दिया जाये वह कम है।'

'मुझे मौत की सजा दे दी जाये, वैसे मैंने अपने ऊपर हुए जुल्मों का सिर्फ़ इंतकाम[1] लिया था। मैं बेगुनाह हूँ।' क़ादिर ने कहा।

एक सरदार जो पास ही बैठा था अपना कोड़ा लहराने लगा कि

---

1. बदला

महादजी ने इशारे से रोक दिया, और दंड की इस तरह घोषणा की—

'इस कादिर को एक तिखटी से बांध दिया जाये, सारे कपडे खोलकर, एकदम मादरजात नंगा, और कोडे लगाये जायें। जब बेहोश हो जाये तो इसको फिर होश में लाया जाये और फिर कोड़े लगाये जायें। जब यह बिलकुल निर्जीव हो जाये तो इसके कान, नाक व होठ काट लिए जायें और आँखें निकाल ली जायें, जिन्हे शाहंशाह को तोहफे के बतौर भेजा जायेगा। आखिर मे इसे क़त्ल कर दिया जाये।'

गुलाम कादिर रो पड़ा, 'हुजूर यह तो बहुत सख्त सजा होगी।'

'कमीने, बेशर्म, तू इसी सजा के काबिल है, इससे कम कुछ नही।'

'हुजूर रहम—रहम कीजिये, मैंने तो महज इंतकाम लिया था अपने ऊपर हुए जुल्मो का।' गुलाम क़ादिर थर-थर कांप रहा था।

सिंधिया ने कोई उत्तर नही दिया। तुरत गुलाम कादिर के कपड़े उतार दिये गये, उसे एक तिखटी पर बांध दिया गया मजबूती से और उसके ऊपर कोड़े बरसाये जाने लगे। एक, दो, तीन! शटाक्, शटाक्। हर कोड़ा नाग-फन-सा लिपट जाता क़ादिर के बदन पर और चमड़ी उतारकर ही वापिस होता। क़ादिर पहले ज़ोर से चीखता, फिर उसकी आवाज धीमी पड़ गयी और अंत मे बेहोश हो गया। उसके मुँह में पानी डाला गया, कुछ पानी के छीटे डाले गये बदन पर और उसे होश आ गया। फिर कोड़े बरसाये जाने लगे। इस तरह चार बार उसे होश में लाया गया और चौथी बार उसका बदन बिलकुल निढाल हो गया था। एक बहुत तेज छुरे से उसके कान, नाक और होंठ बहुत सफ़ाई से काटे गये। वह बुरी तरह छटपटाता रहा और अंत मे उसकी आँखें निकाल ली गयी। अभी उसे थोड़ा-बहुत होश था कि उसकी गर्दन धड़ से अलग कर दी गयी।

अभी सिंधिया को आसपास के इलाक़ो पर अधिकार करना था अतः आवश्यक निर्देश देकर उसने अपने सेनानायकों को इधर-उधर भेजा और स्वयं भी कूच करने लगा। उसी समय एक फ़ौजी अफसर फड़के मय अपनी फ़ौज के तेजी से उसी ओर आता दिखायी दिया। आते ही उसने सिंधिया को बताया कि गुलाम क़ादिर का ख़ासा चहेता और मुँहबोला चाचा मनयहार सिंह और बादशाह का गद्दार मुनाह्ति इस्माइल बेग पकड़ लिए गये हैं।

सिंधिया हाथी पर सवार हो चुका था तुरंत नीचे उतरा और फड़के को शाबाशी देते हुए दोनों मुलज़िमों को पेश करने को कहा। बेड़ी और हथकड़ियों से जकड़े दोनों मुलज़िम सामने लाये गये। सिंधिया ने यही ठीक समझा कि तीनों मुलज़िम और क़ादिर के नाक, कान वग़ैरह यहीं से फ़ौरन बादशाह की ख़िदमत में भेज दिये जायें। अतः तुरंत एक पिटारा तैयार करायी गयी कि जिसमें नाक, कान, आँखें और होंठ बहुत यत्न से संभालकर रखे गये। एक पत्र भी सम्राट को लिखा गया जिसमें बताया गया, 'मंजूर अली, नाज़िर, इस्माइल बेग और मनबहारसिंह जो कि आपके ख़ास मुजरिम हैं तोहफ़े के बतौर ख़िदमत में भेजे जाते हैं जिन्हें जहाँपनाह माकूल सज़ा का हुक्म फरमावें और सबसे ख़ास तोहफ़ा है इस पिटारे में जिसमें गुस्ताख़, बदज़ात, गुलाम कादिर के नाक..।' उसी समय सरदार इंगले के साथ एक पल्टन रवाना कर दी गयी बादशाह के पास मय इस पिटारे और तीनों अपराधियों के। और सिंधिया दूसरी ओर रवाना हो गया।

दो-तीन दिन में ही सिंधिया को फ्रांसीसी फ़ौजी अफ़सर लैंस्तीनो का एक पत्र मिला जिसमें लैंस्तीनो ने सिंधिया की फ़ौज से त्याग-पत्र भेजा था। त्याग-पत्र स्वीकृत हो गया और लैंस्तीनो शीघ्रता से फ्रांस को रवाना हो गया। उसने गुलाम क़ादिर के घोड़े की काठी से मुग़ल शाही परिवार से लूटे हुए जवाहिरात सब हथिया लिए थे। ये अनुपम भारतीय रत्न लैंस्तीनो ने पेरिस के बाज़ारों में बेचकर अपार धन प्राप्त किया और सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगा।

विगत वैभव—लाल किला पुनः चहल-पहल से भरने लगा था। शाहंशाह, बेगमें व शाहज़ादे-शाहज़ादियाँ उत्पीड़क त्रासदी से निकलकर खुली हवा में साँस ले रहे थे, शाहंशाह की रक्षा के लिए मराठी सेना भी क़िले में सतर्कता से ग़श्त कर रही थी। कुछ मुग़ल सैनिक व सरदार जो गुलाम क़ादिर के कारण भाग गये थे, पुनः शाहंशाह के पास एकत्रित हुए। यद्यपि पिछली त्रासदी में इतना नुकसान व तोड़-फोड़ हुई थी कि थोड़े से समय में उसकी पूर्ति करना संभव नहीं थी तथापि जहाँ-तहाँ पैबंद लगाकर कामचलाऊ शान-

कहना चाहते हो !'

'जहाँपनाह, मैंने शाहज़ादियों की इज़्ज़त बचायी उन भेड़ियों से, जामा मस्जिद को लुटने से बचाया, शाहज़ादों की ज़िंदगी बचायी'''।'

'हाँ, हाँ, जरूर-जरूर लाला शीतलदास, हम जानते हैं कि तुम जैसे नेक-नीयत और फर्माबर्दार मुसाहिब खुशकिस्मती से ही मिलते हैं, बोलो, बोलो क्या इनाम चाहते हो ?' सम्राट बीच ही में बोल पड़ा।

'हुज़ूर यह सब करने में सरदार मनबहारसिंह ने ही मेरी मदद की। मैं जब-जब इनके पास फ़रियाद लेकर पहुँचा, तब-तब इन्होंने मेरी बात सुनी और गुलाम क़ादिर को समझा-बुझाकर या डाँट-डपटकर फ़ौरन रोक दिया।' शीतलदास एक साँस में बोल गया।

तभी शाहज़ादियों की तरफ़ कुछ फुसफुसाहट हुई और उन्होंने सम्राट को बताया कि इसी फ़रिश्ते ने मोती महल में हमारी इज़्ज़त बचायी थी।

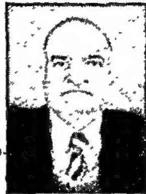
शाहज़ादों ने भी इस बात की पुष्टि की कि जाते-जाते क़ादिर हम सबको क़त्ल करने लगा तो यही सरदार हमारी ढाल बनकर खड़ा हो गया था, वर्ना हम लोग कभी के फ़ना[1] हो गये होते।

बादशाह की आँखों के गड्ढों में से दो आँसू गालों पर लुढ़क पड़े। तुरंत भरे गले से आज्ञा दी, 'मनबहारसिंह को रिहा किया जाता है। इसे हज़ार मोहरें और एक अरबी घोड़ा दिया जाये ताकि यह अपने मुल्क पंजाब तक बखैरियत पहुँच सके।'

दरबार बरख़ास्त हुआ और दो कनीज़ों का सहारा लिए सम्राट रंग-महल की तरफ़ चल दिया।

दिल्ली और लाल किले में होली की तैयारियाँ चल रही थी। चारों ओर डफ, ढोल-ताशे और मृदंग की ध्वनि वायुमंडल में रंग उछाल रही थी। गली-गली, कूचे-कूचे में होली के रसिया गाये जा रहे थे और लाल किले में टेसू के फूलों को देगों में औटाकर कसूमी रंग तैयार किया जा रहा था।

1. नष्ट



सुरेन्द्र कान्त

जन्म : ६ जुलाई, १६२७

लेखन : प्रारम्भ से ही हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषाओं में व्यंग्य, कविता, कहानी लेखन में रुचि। अनेक रचनाएँ देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों में प्रकाशित।

प्रकाशन : "मुखौटे और मुखौटे" नाम का व्यंग्य संकलन